पत्र-क्षेत्र ... पत्रिकामें कहा
...मंत्रीने ऐसी
...के पदकी

नागरिक जीवन

15.3

...के बारम
...च की जा रही हैं।

...काण्डमें
...ने महलत मांगी

..., २० अप्रैल (वा., भा.)। दिल्ली ...कीलोंकी हड़तालके संबंधमें ...कनामा और गवाहोंकी सूची पेश ... गोस्वामी-बधवा जांच समितिसे ... मुहलत मांगी है। समिति ...सुनवाई २२ अप्रैलसे शुरू ...सचिव श्री पी. के. जैनने ...तिरिक्त समयकी मांगकी ...रको विचार होगा।

सभामें वी.पी.सिंहने कहा कि भ्रष्टाचारके विरुद्ध छेड़ा गया मेरा संघर्ष काफी लम्बा है और समाजके सभी वर्गोंको इसमें सहयोग ...हुए। अपने भाषणसे पूर्व उन्होंने ... धरतीको प्रणाम किया। वी.पी.ने ...लाव तो आते-जाते रहते हैं लेकिन ...में मैंने जन्म लिया है, उसकी मर्यादा ...चाहिए। यही सोचकर मैंने ...के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा है। भावुक ...न्होंने कहा कि जीवनके अंतमें 'राख' ...न नदीमें आये और फिर टोंसके ... गंगामें मिल जाय, बस यही सोचकर ...लीकी सत्तासे संघर्ष किया है।

...में यमुना पार क्षेत्रमें डंका जनोंकी ... और मुख्य मंत्रीके दौरेपर टिप्पणी ...ए उन्होंने कहा कि इसी बहाने थैलीका मुंह खोला जा रहा है लेकिन वे लोग भूल गये कि क्षेत्रके लोग गरीब जरूर हैं पर देश भक्तिमें तनिक भी कमी नहीं है। धनकी लालच इस देशकी जनताको होती तो लोग अंग्रेजोंकी थैलीके आगे डोल गये होते। वी.पी.के इस सभामें पूरा चुनावी माहौल देखा गया। खुद वी.पी.ने भी पनडुब्बी और बोफोर्स तोप सौदेकी दलालीका जिक्र करनेके साथ कुछ ऐसे क्षेत्रीय मामले उठाये, जो अक्सर चुनावी सभामें उठाये जाते हैं। सभामें सर्वश्री सत्य प्रकाश मालवीय, जनेश्वर मिश्र, राम पूजन पटेल, गोपाल दास यादव, महेन्द्र सिंह, रेवती रमण सिंह, डाक्टर संजय सिंह, राजेन्द्र त्रिपाठी, सुरेन्द्र सिंह आदिने संबोधित किया।

रियासतों का एकीकरण

भारतीय रियासतों के एकीकरण का आंदोलन उस समय आरम्भ हुआ जब सरदार पटेल के नेतृत्व में भारत सरकार के अन्तर्गत जुलाई सन् १९४७ में एक रियासती विभाग खोला गया। सर्व प्रथम इस विभाग ने भारतीय रियासतों से अपील की कि वह भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिए प्रवेशपत्र पर हस्ताक्षर कर दें। आरम्भ में इस प्रवेश पत्र में रियासत की सरकारों को केवल तीन विषयों अर्थात् विदेश नीति, रक्षा तथा यातायात का नियंत्रण संघ सरकार को सौंपना था। परन्तु कुछ ही दिन पश्चात् भारत सरकार को अनुभव हुआ कि देश की नव प्राप्त स्वतंत्रता को दृढ़ बनाने के लिये आवश्यक है कि रियासतों तथा प्रांतों के अधिकार कम किये जाँय और भारत में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना की जाय। इस उद्देश्य से एक ऐसे नये समझौते पर हस्ताक्षर कराये गये जिसके द्वारा संघ सरकार को रियासतों के ऊपर उन सभी विषयों पर प्रभुत्व प्राप्त हो गया जिनका वर्णन हमारे नव संविधान की संघ तथा समवर्ती सूची में किया गया है।

भारतीय संघ में सम्मिलित होने के पश्चात् देश की छोटी-छोटी रियासतों से प्रार्थना की गई कि वह भारत को एक शक्तिशाली अविछिन्न राष्ट्र में संगठित करने के लिये अपने पड़ोसी प्रांत में मिल जाँय अथवा अपना कोई अलग संघ बना लें। इस नीति के आधीन बहुत शीघ्रता से काम लिया गया और सर्व प्रथम पहली जनवरी सन् १९४८ को यह घोषणा की गई कि उड़ीसा प्रान्त की २३ रियासतें उसी प्रान्त में विलीन कर दी गई हैं। इसके पश्चात् मध्य प्रांत, पंजाब, बम्बई, तथा बिहार राज्यों की छोटी-छोटी रियासतों का समाहार किया गया और उन राज्यों के नरेशों को वार्षिक पेंशन के रूप में एक निश्चित रकम देकर बिदा कर दिया गया। अन्तिम रियासत कूच बिहार पहली जनवरी सन् १९५० को बंगाल राज्य में विलीन कर दी गई। बहुत सी बड़ी-बड़ी रियासतों के संघ बना दिये गये और इस प्रकार दो वर्ष से भी कम समय में भारत की छाती पर स्थित सामन्तशाही के ५०० गढ़ समाप्त हो गये।

रियासतों के भारत में प्रवेश उनके विलीनीकरण तथा संघीयकरण का क्रान्तिकारी परिणाम इस प्रकार हुआ :—

भारत की २१६ रियासतें प्रांतों में विलीन कर दी गई हैं। इन रियासतों का कुल क्षेत्रफल १,०८,७३९ वर्गमील तथा जन संख्या १,९१,५८,००० है।

भारत की ६१ रियासतें केन्द्र के आधीन ७ चीफ कमिश्नरों के प्रांतों में संगठित कर दी गई हैं। इन रियासतों में भोपाल, कच्छ, बिलासपुर, त्रिपुरा, मनीपुर, हिमाचल तथा विंध्य प्रदेश की रियासतें हैं। इनका कुल क्षेत्रफल ६३,७०४ वर्गमील तथा जन संख्या ६९ लाख है।

अन्त में भारत की २७५ रियासतों को ५ संघों मे संगठित किया गया है। इन संघों के नाम इस प्रकार है—सौराष्ट्र, पेप्सू, मध्य भारत, राजस्थान तथा ट्रावनकोर-कोचीन। इन संगों में सम्मिलित रियासतों का क्षेत्रफल २,१५,४५० वर्गमील तथा जन संख्या ३४७ लाख है।

एकीकरण के क्रम से प्रभावित न होने वाले राज्य केवल ३ हैं अर्थात् मैसूर, हैदराबाद और जम्मू-काश्मीर। इन तीनों रियासतों का भविष्य अभी अनिश्चित है। काश्मीर का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ के विचाराधीन है। मैसूर तथा हैदराबाद रियासत का भविष्य महाकर्नाटक तथा प्रान्त राज्य के निर्माण के साथ जुड़ा हुआ है।

इस प्रकार भारत की ५०० से अधिक रियासतों की केवल १५ इकाइयाँ रह गई हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) सौराष्ट्र, (२) पैप्सू, (३) मध्यभारत, (४) राज्यस्थान, (५) ट्रावनकोर-कोचीन।

(६) हिमाचल प्रदेश, (७) कच्छ, (८) बिलासपुर, (९) भोपाल, (१०) त्रिपुरा, (११) मनीपुर, (१२) बिन्ध्य प्रदेश।

(१३) मैसूर, (१४) हैदराबाद और (१५) जम्मू-काश्मीर।

रियासती नरेशों की 'प्रिवी पर्स' का निश्चय

भारत सरकार ने एक निश्चित गति के आधीन देश की समस्त रियासतों से इस प्रकार का समझौता किया है जिसके आधीन उनके नरेशों को अपनी

समस्त राजसत्ता जनता के हाथों में सौंप देने के बदले में, अपने व्यय के लिए, एक निश्चित राशि, निम्न प्रकार, प्रति वर्ष मिलती रहेगी।

उन रियासतों को जिनकी वार्षिक आय १ लाख या इससे कम है, आय का १५ प्रतिशत भाग 'प्रिवी पर्स' के रूप में दिया जायगा। इसके बाद, एक लाख से ५ लाख तक की आय पर १० प्रतिशत और ५ लाख से १० लाख तक की आय पर ७॥ प्रतिशत भाग प्रिवी पर्स के रूप में दिया जायगा। किसी एक नरेश को अधिक से अधिक १० लाख रुपया वार्षिक दिया जा सकेगा। कुछ थोड़ी सी बड़ी बड़ी रियासतों के साथ इस नियम का पालन नहीं किया गया है, उदाहरणार्थ हैदराबाद के निजाम के लिये, 'प्रिवी पर्स' की रकम ५० लाख रुपया वार्षिक निश्चित की गई है, बड़ौदा महाराज को २६॥ लाख रुपया दिया गया है, मैसूर के महाराज को २६ लाख, ग्वालियर महाराज को २६ लाख, जैपुर व ट्रावनकोर के महाराज को १८ लाख, बीकानेर व पटियाला महराज को १७ लाख, जोधपुर महाराज को १७॥ लाख तथा इन्दौर महाराज को १५ लाख रुपया वार्षिक दिया गया है। परंतु यह बढ़ी हुई राशि इन रियासतों के नरेशों को केवल उनके जीवन काल में ही दी जायगी। सब रियासतों को मिलाकर भारत सरकार को ५ करोड़ ६५ लाख रुपया प्रति वर्ष 'प्रिवी पर्स' के रूप में देना होगा। प्रिवी पर्स की सब से कम राशि १६२) रुपया वार्षिक कटोदिया (सौराष्ट्र) नरेश को दी गई है।

नरेशों की निजी सम्पत्ति के विषय में भी भारत सरकार ने विशिष्ट नियम बनाये हैं। इन नियमों के आधीन प्रत्येक नरेश के रहने के लिये दो महल दिये गये हैं—एक महल उसकी अपनी राजधानी में दूसरा किसी पहाड़ या समुद्र तट पर। नरेशों की दिल्ली में स्थित कोठियों के विषय में अभी अंतिम निश्चय नहीं हुआ है। इस विषय में अभी तक वार्ता जारी है। कृषि भूमि के सम्बन्ध में यह निश्चय किया गया है कि जो नरेश स्वयं कृषि करने में रुचि रखते हैं उन्हें कुछ भूमि दे दी जाय परंतु इस भूमि पर लगान इत्यादि के वही नियम लागू होंगे जो दूसरी प्रजा पर लागू होते हैं। पारिवारिक आभूषण तथा हीरे जवाहिरात नरेशों के संरक्षण में रक्खे गये हैं। वह उनका विशेष उत्सवों पर उपयोग कर सकेंगे। परंतु इन वस्तुओं को बेचने अथवा

इधर उधर करने का उन्हें अधिकार नहीं होगा। अधिकांश जागीरें नरेशों के हाथ से छीन ली गई हैं परंतु उनके कम्पनियों इत्यादि में इस प्रकार के शेयर जो उन्होंने अपनी निजी आय से खरीदे थे, उन्हीं के हाथों में छोड़ दिये गये हैं।

बहुत सी रियासतों में राज्यकोष तथा नरेशों के निजी कोष में किसी प्रकार का अंतर नहीं रक्खा जाता था। इन रियासतों के सम्पत्ति वितरण में भारी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। हमारे देश की कितनी ही ऐसी रियासतें थीं जिनके नरेशों ने यह समझ कर कि अब उनकी राजसत्ता समाप्त होने वाली है, अपनी अतुल धन सम्पत्ति विदेशों को भेज दी, और जिस समय उनके खजानों की जाँच पड़ताल की गई तो उनमें कुछ ही आने या रुपये देखने को मिले। इसी प्रकार की एक रोचक घटना नाभा रियासत में हुई जहाँ उस राज्य के पैप्सू संघ में समाहार के पश्चात्, खजाने में केवल ६ पैसे शेष मिले। नरेशों ने करोड़ों रुपया विदेश भेज कर दूसरे स्थानों पर बड़ी बड़ी जायदादें खरींदी तथा अनेक उद्योग धन्धों में अपना रुपया लगाया। जहाँ इस प्रकार की घटनाएँ, अत्यंत निंदनीय हैं और वह हमारे नरेशों के चरित्र पर समुचित प्रकाश डालती हैं, वहाँ हमें यह न भूलना चाहिये कि भारतीय जनता के लिये, इस प्रकार एक रक्तहीन क्रांति का मूल्य चुकाना स्वाभाविक ही था। यह सच है कि हमारे चरित्रहीन नरेशों ने अपनी प्रजा की गाढ़ी कमाई का करोड़ों रुपया अपने निजी ऐश व आराम के लिए हड़प कर लिया, परन्तु हमें यह समझ लेना चाहिये कि एक बार इस प्रकार का भारी बलिदान देकर, आगे आने वाले काल के लिये, अब हमारी प्रजा सुख और चैन का जीवन व्यतीत कर सकेगी, और उसका वह अमानुषिक शोषण समाप्त हो जायगा जिसके कारण वह कभी अपना सर ऊपर न उठा सकती थी। रियासतों के नरेशों के हाथों से तानाशाही शक्ति को छीन कर, सरदार पटेल ने सदा के लिये, भारतीय रियासतों की पीड़ित जनता के दुःखों का अन्त कर दिया है। वहाँ की जनता के बीच से अब शासक और शासित का भेद नष्ट हो गया है। आज हमारी देशी राज्यों की जनता को वही अधिकार प्राप्त हैं जो भारत के दूसरे प्रांतों की जनता को मिले हुए हैं।

भारतीय रियासतों की कुछ कठिन समस्याएँ

परन्तु देश के एकीकरण के पश्चात् हमें यह न समझ लेना चाहिये कि हमने भारत की देशी रियासतों की उपस्थिति से उत्पन्न सभी समस्याओं को सुलझा लिया है। यह सच है कि यह समस्याएँ अब इतनी जटिल नहीं रह गई हैं जितनी वह पहले थीं, और आशा है कि थोड़े ही समय में उनका कोई उचित हल निकल आयेगा। परन्तु इस कारण हमें अपने प्रयत्नों में किसी प्रकार की ढील नहीं छोड़नी चाहिये।

रियासतों के विलयीकरण एवं संघोकरण के कारण जो नई समस्याएँ हमारे देश में उत्पन्न हो गई हैं उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार हैं :—

(१) रियासतों की आय की समस्या—एकीकरण की नीति को अपनाने से पहिले रियासतें हर प्रकार के 'कर' लगाने के लिये स्वतन्त्र थीं। समुद्र तट पर स्थित कुछ रियासतें बाहर से आने वाले माल पर भी कर लगा सकती थीं। आय कर, नमक कर, रेल, डाकखाने तथा मिंट से होने वाली आय, रियासतों में बाहर से आने वाले माल पर कर, इत्यादि मदों से होने वाली आय रियासतों को मिलती थी। नव संविधान के अन्तर्गत रियासतों को केवल वही कर लगाने का अधिकार होगा जो भारत के दूसरे राज्यों में लगाये जायेंगे। इस कारण कुछ रियासती संघों की आय बहुत कम हो जायगी, और वह अपनी जनता के लिये वही सुविधाएँ उपलब्ध नहीं कर सकेंगी जिनकी उन क्षेत्रों की जनता को स्वतन्त्रता का अनुभव कराने के लिये आवश्यकता है। भारत सरकार ने रियासतों की इसी समस्या को सुलझाने के लिये सर वी० टी० कृष्णामाचारी के नेतृत्व में एक कमेटी बिठाई थी। इस कमेटी ने निम्न सिफारिशें कीं :—

(१) रियासतों को अपने क्षेत्र में भारत के विभिन्न प्रांतों से आने वाले माल पर चुंगी (International Customs Duties) नहीं लगानी चाहिये। इस प्रकार की चुंगी हैदराबाद, राजस्थान, मध्य भारत, सौराष्ट्र और विंध्य प्रदेश में लगाई जाती थी। विंध्य प्रदेश और सौराष्ट्र में इस प्रकार की चुंगी पहिली अप्रैल सन् १६५० से अवैध घोषित कर दी गई है। दूसरी रियासतों के लिए संघ सरकार ने ४ से ५ वर्ष तक की मौहलत दी है। इस

बीच में यह रियासतें चुंगी की प्रथा को समाप्त कर बिक्री टैक्स के द्वारा अपनी आर्थिक हानि को पूर्ण कर लेंगी।

(२) आय कर (Income tax) के सम्बन्ध कमेटी ने कहा है कि रियासतों को यह कर उसी दर से लगाना चाहिये जैसा वह भारत के विभिन्न प्रांतो में लगाया जाता है। इस कर से होने वाली आय केन्द्रीय सरकार को मिलती है परन्तु राज्य की सरकारों को उसमें ५० प्रतिशत भाग दिया जाता है। रियासतों को भी इसी अनुपात से आयकर का भाग दिया जायगा। आरंभ में कमेटी ने सिफारिश की है कि रियासतों को यह स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि वह अपने क्षेत्र में आय कर की दर धीरे-धीरे बढ़ाएँ, जिससे उनकी आर्थिक व्यवस्था पर एकदम बुरा प्रभाव न पड़े। भारत सरकार ने इस सम्बन्ध में रियासतों को २ से ६ वर्ष तक का समय दिया है। इसके पश्चात् सभी रियासतों में आय कर उसी प्रकार वसूल किया जायगा जैसे वह शेष भारत में किया जाता है, और रियासतों को आयकर से होने वाली आमदनी में समान रूप से भाग दिया जायगा।

(३) रेल, डाकखानें, करन्सी, मिंट, ऑडिट तथा ब्रॉडकास्टिंग विभागों पर रियासती सरकारों का आधिपत्य पहिली अप्रैल १६५० से समाप्त कर दिया गया है। कमेटी की सिफारिशों के आधीन यह सभी महकमे तथा इनसे होने वाली आय संघ सरकार को सौंप दी गई है।

(४) देश के आर्थिक एकीकरण से जिन रियासतों को विशेष आर्थिक हानि होगी और जिनमें हैदराबाद, मैसूर, ट्रावनकोर-कोचीन तथा सौराष्ट्र मुख्य हैं, उनके लिये कमेटी ने सिफारिश की है कि संघ सरकार ऐसी सभी रियासतों को पाँच वर्ष तक सहायता देगी। इसके पश्चात् रियासतों तथा भारत के दूसरे सभी राज्यों की आर्थिक स्थिति की जाँच एक 'राजस्व कमीशन' द्वारा कराई जायगी और संविधान में कहा गया है कि इस कमीशन की सिफारिशों के आधार पर आगे चल कर भारत का आर्थिक संगठन किया जायगा।

इस प्रकार यद्यपि कृष्णामाचारी कमेटी ने देश के एकीकरण से होने वाले आर्थिक कष्ट को निवारण करने का समुचित प्रयत्न किया है, परन्तु

आने वाले चार या पाँच वर्ष हमारे देश के लिये ऐसे होंगे जिसमें अत्यंत सावधानी से कार्य करने की आवश्यकता है, और जिस बीच केन्द्रीय सरकार को रियासती संघों की आर्थिक व्यवस्था पर विशेष नियन्त्रण रखने की आवश्यकता होगी।

(२) सैनिक समस्या—रियासतों की दूसरी गुत्थी सेना की समस्या है। अंग्रेजों के काल में प्रायः प्रत्येक रियासत अपनी अलग सेना रखती थी। यह सेना युद्ध या आंतरिक अशांति के समय अंग्रेजी सरकार का साथ देती थी। नव संविधान के अन्तर्गत देश की रक्षा व सेना के संगठन का पूर्ण कार्य संघ सरकार को सौंपा गया है। इसलिये रियासतों को आदेश दिया गया है कि वह अपने क्षेत्रों में केवल इतनी ही सेना रक्खें जितनी संघ सरकार द्वारा उनके लिये निश्चित की जाय। ऐसी सेना का समस्त व्यय संघ सरकार द्वारा दिया जायगा। रियासतों को अपनी शेष सेना कम करनी होगी। ऐसा करने से कुछ रियासतों में वेकारी की समस्या बढ़ जायगी, परन्तु संघ सरकार ने रियासतों से अपील की है कि वह छटनी में आने वाले सैनिकों को अपने राज्य की पुलिस में भर्ती करने का प्रयत्न करें।

(३) सुशासन की समस्या—देश के एकीकरण से उत्पन्न होने वाली समस्याओं में रियासतों की सब से जटिल समस्या कुशल सरकारी प्रबंध की समस्या है। अंग्रेजों के काल में हमारी रियासतों का शासन प्रबंध अत्यंत निकृष्ट कोटि का था। वहाँ सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति उनकी योग्यता के आधार पर नहीं वरन् उनकी चापलूसी के आधार पर की जाती थी। नरेश जब चाहते किसी सरकारी कर्मचारी को हटा सकते थे। जनता में शिक्षा का प्रचार अत्यन्त सीमित था। प्रतिनिधि संस्थाओं के कार्य व संचालन का उन्हें किसी प्रकार का अनुभव प्राप्त नहीं था। जनता में एक शिक्षित व जागृत लोकमत की भी भारी कमी थी। फिर भी रियासतों का शासन प्रबंध इस कारण निर्विघ्न रूप से चलता था कि जनता शासकों के कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करती थी, और वह हर प्रकार का दमन व अत्याचार सहने की आदी बन गई थी। परन्तु भारत को स्वाधीनता प्राप्त होने तथा रियासतों में लोकप्रिय मन्त्रिमंडलों के बन जाने के पश्चात् हमारी रियासतों

का शासन स्तर और भी नीचे गिर गया है। इसका मुख्य कारण हमारी रियासतों में अनुभव प्राप्त राजनीतिज्ञों की कमी तथा सरकारी कर्मचारियों की अयोग्यता है।

ब्रिटिश भारत में प्रतिनिधि संस्थाएँ बहुत काल से कार्य करती चली आ रही थीं। जनता के बहुत से नेताओं को शासन प्रबन्ध का समुचित ज्ञान प्राप्त था। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भारत में अंग्रेजों के काल का शासन प्रबंध अत्यंत उच्च कोटि का था। सरकारी कर्मचारी अत्यन्त योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति होते थे। इस कारण स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्, जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में शासन शक्ति के आ जाने से, जहाँ ब्रिटिश भारत के शासन प्रबन्ध में कोई विशेष शिथिलता नहीं आई वहाँ हमारी रियासतों का शासन प्रबन्ध अत्यंत ही दोषपूर्ण हो गया। रियासती संघों में लोकप्रिय मन्त्रिमंडल बन गये परन्तु मन्त्री ऐसे व्यक्ति बने जिन्हें शासन का किसी प्रकार का अनुभव प्राप्त नहीं था। वह केवल प्रजा मंडलों के साधारण कार्यकर्ता थे। इसके अतिरिक्त मन्त्रिमंडलों की सहायता व उनके मार्ग प्रदर्शन के लिए मैसूर, ट्रावनकोर-कोचीन व मध्य भारत को छोड़कर और किसी रियासत में विधान सभाएँ नहीं थीं। स्वभावतः ऐसी रियासतों में शासन का स्तर अत्यंत नीचे गिर गया, और रियासती प्रजा को यह अनुभव होने लगा कि इस प्रकार के शासन से नरेशों का शासन प्रबन्ध कहीं अच्छा था।

आजकल रियासतों की सबसे जटिल समस्या अच्छी सरकार की समस्या है। रियासतों में राजनैतिक साइनबोर्ड अवश्य बदल गया है, नरेशों के स्थान पर अब उन क्षेत्रों में लोकप्रिय सरकारें हैं, परन्तु ये सरकारें ऐसी हैं जो रियासती जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं। उनमें विधान सभाओं का संगठन नहीं किया गया है।

रियासती संघों को छोड़कर जो देशी राज्य चीफ़ कमिश्नर के प्रान्त बना दिये गये हैं वहाँ की प्रजा की दशा और भी अधिक चिंतनीय है। इन राज्यों में न लोकप्रिय मंत्रिमंडल है और न किसी प्रकार की प्रतिनिधि संस्थाएँ। शासन की समस्त शक्ति केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि चीफ़ कमिश्नरों के हाथ में है। नव संविधान के अन्तर्गत भी इन राज्यों को स्वायत्त शासन के अधि-

कार नहीं दिये गये हैं। उनकी जनता को राजनैतिक अधिकारों से वंचित रक्खा गया है। अधिक से अधिक हम यह कह सकते हैं कि उन्हें जो अधिकार प्राप्त हुए हैं वह १६१६ के गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट के आधीन अधिकारों के समान हैं।

रियासतों में अनुभव प्राप्त उच्च सरकारी कर्मचारियों की भी भारी कमी है। इस प्रकार के अधिकतर कर्मचारी केन्द्रीय सरकार द्वारा ही भेजे गये हैं। परन्तु जब तक रियासती जनता में से स्वयं इस प्रकार के अनुभव प्राप्त सरकारी कर्मचारियों का निर्माण नहीं होता तब तक उन क्षेत्रों का शासन प्रबन्ध नहीं सुधर सकता।

रियासतों के शासन प्रबन्ध को सुधारने के लिये आवश्यक है कि इन क्षेत्रों में शीघ्र ही (१) विधान सभाओं का संगठन किया जाय जिससे रियासती प्रजा को प्रजातन्त्रात्मक संस्थाओं की कार्य शैली का शीघ्र अनुभव प्राप्त हो सके, (२) जनता में शिक्षा के प्रसार के लिए शिक्षा संस्थाओं की व्यवस्था की जाय, (३) लोकमत को जाग्रत व सचेत बनाने के लिए ऐसे राजनैतिक दलों का निर्माण किया जाय जिनका आधार साम्प्रदायिकता की भावना का प्रचार न हो, (४) रियासती जनता में से प्रतियोगिता के आधार पर उच्च सरकारी कर्मचारियों की भरती का प्रबन्ध किया जाय, तथा अन्त में (५) रियासतों के न्याय विभाग को आधुनिक ढंग पर संगठित करने के लिए उनमें अत्यन्त योग्य एवं निष्पक्ष व्यक्तियों की नियुक्ति की जाय।

इन्हीं सब उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हमारे नव संविधान में प्रथम दस वर्षों के लिये, रियासती संघों को आदेश दिया गया है, कि वह रियासती मन्त्रालय के आधीन रह कर कार्य करें तथा उसकी आज्ञाओं को मानें। इस सम्बन्ध में संविधान की विस्तृत धाराओं का वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं।

(४) आर्थिक समस्या—रियासती संघ की चौथी समस्या उनकी प्रजा की गरीबी की समस्या है। अंग्रेजों के काल में रियासती जनता का जिस प्रकार उनके नरेशों तथा सामंतों द्वारा निर्दयतापूर्वक शोषण किया जाता था उसकी कहानी सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इन रियासतों में यदि एक ओर राजा और उसके कुछ निकट संबंधी जागीरदार अथाह धन और ऐश्वर्य

की आनन्दमयी सरिता में गोते लगाते थे, तो दूसरी ओर उनकी प्रजा निर्धनता जहालत, आश्रयहीनता तथा भूख और प्यास की अग्नि में धधक धधक कर अपने प्राणों की बलि देती थी। इन रियासतों में मध्यम वर्ग (Middle Class) जैसी जनता की कोई श्रेणी ही नहीं थी। या तो एक ओर बड़े-बड़े महलों या राजप्रसादों में रहने वाले कुछ मुट्ठी भर सामन्त थे या दूसरी ओर भूख प्यास से त्रस्त, टूटे फूटे झोपड़ों में रहने वाली, असंख्य जनता थी। जनता के यह भोले भाले घटक अपने नरेशों की धन पिपासा को शांत करने के लिये ही काम करते थे। उनकी कमाई का अधिकतर भाग अपने राजाओं के लिये भोग विलास की सामग्री एकत्रित करने के काम में ही आता था। अधिकतर रियासतों में न किसी प्रकार के आधुनिक उद्योग धन्धे थे, न बड़ी बड़ी व्यापार की मण्डियाँ। इन क्षेत्रों की ९५ प्रतिशत जनता कृषि के ही सहारे अपना निर्वाह करती थी। स्वभावतः जनता की आर्थिक दशा हीन थी। और वह सामन्तों के जुल्म और अत्याचार के नीचे इतनी दबी हुई रहती थी कि उसे कभी अपने चारों ओर देखकर अपनी दशा को सुधारने का विचार ही न आता था।

आज रियासतों के एकीकरण के पश्चात् उनके शासकों के सम्मुख अपनी प्रजा की आर्थिक दशा सुधारने की सबसे कठिन समस्या है। हमारी रियासती जनता को स्वतन्त्रता के वातावरण का उस समय तक कोई अहसास नहीं हो सकता जब तक उसे खाने के लिये दो समय भोजन तथा तन ढाँपने के लिये कपड़े न मिलें। हमारे लोकप्रिय रियासती मंत्रिमंडलों को इसलिए चाहिए कि वह अपनी जनता की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये आधुनिक कृषि, उद्योग, तथा व्यापार के तरीकों को प्रोत्साहन दें।

(५) प्रादेशिक भक्ति की समस्या—अंत में हमारे देशी राज्यों की प्रजा को अपने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना है। अभी तक रियासतों की जनता सहस्रों वर्षों से एक ही प्रकार के राजतन्त्रीय शासन प्रबन्ध के आधीन रह कर, यह न समझ पाई है कि प्रजातन्त्र शासन उनके अपने राज्य प्रबन्ध का नाम है। राजतन्त्रीय शासन कभी प्रजातन्त्र शासन से अच्छा नहीं हो सकता, कारण उसमें देश की असंख्य जनता को अपने

व्यक्तित्व के विकास का अवसर नहीं मिलता। आज कितने ही देशी राज्यों के व्यक्ति अपने पुराने नरेशों की याद करते और कहते हैं कि ऐसे जनराज्य से तो हमारा पहिला राज्य ही अच्छा था, वह यह भूल जाते हैं कि अच्छा शासन स्वशासन का स्थान नहीं ले सकता। आरंभ में प्रत्येक देश के लोग ही, नई नई राज्यसत्ता अपने हाथ में आने के समय, शासन प्रबन्ध में त्रुटियाँ किया करते हैं। परन्तु कुछ समय पश्चात् शिक्षित तथा जागरूक लोक मत उन्हें जनमत के हित में कार्य करने को बाध्य कर देता है।

एक और दशा में भी हमारी देशी राज्यों की जनता को अपना दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता है। वह यह है कि अभी तक इन क्षेत्रों की जनता अपने आपको एक बहुत छोटी रियासत का नागरिक समझती आई है। वह उस छोटे क्षेत्र के प्रति ही अपनी राजभक्ति का प्रदर्शन करती है। उदाहरणार्थ जोधपुर रियासत के व्यक्ति वृहद् राजस्थान संघ में सम्मिलित होने के बाद भी यही समझते हैं कि वह जोधपुरी हैं और जोधपुर तो उनका अपना है, परन्तु बीकानेर, या उदयपुर या जैपुर नहीं। इस प्रकार की प्रादेशिक संकुचित राजभक्ति की भावना राष्ट्रीय चेतना के विकास में बाधक सिद्ध होती है और देश में एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण नहीं होने देती। हमारे रियासती संघों की सरकारों को इसलिये चाहिये कि वह इस प्रकार की भावना का अंत करने के लिए कोई प्रयत्न बाकी न रक्खें। भारतीय जन जीवन से प्रादेशिकता के इस विष को हम जितना शीघ्र दूर कर सकें उतना अच्छा है।

भारत की ५०० रियासतों का एकीकरण करके, हमारे राष्ट्र निर्माता सरदार पटेल ने देश का जैसा हित साधन किया है, वैसा कोई एक व्यक्ति भारतीय इतिहास में आज तक नहीं कर सका। आज भारतीय राष्ट्र की मजबूत नींव रक्खी जाने का कार्य सम्पन्न हो चुका है। आवश्यकता अब इस बात की है कि हम इस सुदृढ़ नींव पर एक ऐसे नव समाज तथा राष्ट्र का निर्माण करें जिसकी कीर्ति विश्व के चारों कोनों में फैलती रहे और जो सदा उन्ही सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता रहे जिनके लिए हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपने सारे जीवन कार्य किया था तथा जिनका प्रचार करने के लिये अन्त में उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दे दी।

योग्यता प्रश्न

(१) स्वतंत्र भारत का सबसे महान् कार्य देश का एकीकरण है। इस कथन की यथार्थता को समझाइये।

(२) स्वतंत्रता से पहिले भारतीय रियासतों में प्रजा की क्या दशा थी। उस दशा में अब तक क्या सुधार हुआ है ?

(३) अंग्रेजों के काल में रियासतों का वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता था ? आजकल वह किस आधार पर किया जाता है ?

(४) रियासतों का वर्तमान शासन प्रवन्ध कैसे किया जाता हैं ? कुछ रियासतों को बी और कुछों को सी श्रेणी में क्यों रक्खा गया ?

(५) नये संविधान के अंतर्गत रियासतों में विधान सभा तथा मंत्रि-मंडल बनाने के संबंध में क्या व्यवस्था की गई है ?

(६) रियासतों के नरेशों के साथ प्रिवी पर्स का निश्चय किस आधार पर किया गया है ? क्या यह प्रबन्ध अनुचित है ?

(७) रियासतों की वर्तमान समस्याएँ क्या हैं ? वह किस प्रकार सुल-झाई जा सकती हैं ?

अध्याय ११

भारत में सरकारी नौकरियाँ

इस पुस्तक के पिछले अध्यायों में, नव संविधान के अन्तर्गत, हमने संघ तथा राज्यों की सरकारों के संगठन का अध्ययन किया है। परन्तु यह संगठन उस समय तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता जब तक हम सरकार के यन्त्र को चलाने वाली संस्था अर्थात् सरकारी नौकरों के संगठन का अध्ययन न करें।

स्थायी सरकारी नौकरों की प्रथा का महत्त्व

पिछले अध्यायों में हमने देखा है कि सरकार की नीति का संचालन करना मन्त्रियों का काम होता है। इसीलिये हम कहते हैं कि जब एक मन्त्रिमंडल के स्थान पर दूसरा मन्त्रिमण्डल बन जाता है तो सरकार बदल जाती है। परंतु मंत्रियों द्वारा निर्धारित नीति का संचालन करना सरकारी नौकरों का काम होता है। मन्त्री स्वयं सरकार के विशाल संगठन को नहीं चला सकते। वह केवल सरकारी संगठन का नेतृत्व कर सकते हैं। मन्त्रियों तथा विधान मंडल द्वारा निर्धारित नीति को कार्य रूप में परिणत करना उन सरकारी नौकरों का काम होता है जो मन्त्रिमंडल के बदलने पर अपने स्थान का त्याग नहीं करते, वरन् जो कोई भी मन्त्रिमंडल शासनारूढ़ हो, उसकी ही आज्ञानुसार सरकारी काम को चलाते हैं और देश के विभिन्न भागों में सरकारी आज्ञाओं का पालन करते हैं।

प्रजातंत्रीय सिद्धांत के अन्तर्गत सरकार का कार्य इसी कारण कुशलता-पूर्वक चलता है कि मन्त्रियों को उन सरकारी नौकरों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होता है जो अपना सारा जीवन एक ही प्रकार के कार्य में लगा कर उसमें पूर्ण रूप से दक्षता तथा अनुभव प्राप्त कर लेते हैं। यदि इस प्रकार के

सरकारी नौकरों के संगठन की व्यवस्था न होती, और मन्त्रिमंडल के परिवर्तन के साथ साथ, पुराने सरकारी नौकरों को भी अपना स्थान त्याग करना पड़ता, तो अनुभवहीन मन्त्री तथा नये सरकारी कर्मचारी देश का शासन नहीं चला सकते थे। आजकल प्रजातन्त्र शासनों के अन्तर्गत हम देखते हैं कि एक व्यक्ति जिसे शासन का कोई भी अनुभव प्राप्त नहीं होता, तथा जिसने पहिले कभी उस प्रकार का काम ही नहीं किया होता, वह भी जनता का विश्वास पात्र होने के कारण सरकार का मन्त्री बन सकता है। इंगलैंड की सरकार में कितने ही ऐसे व्यक्ति भारत मन्त्री बन जाते थे जिन्होंने कभी भारत को देखना तो क्या इसके विषय में कभी गूढ़ अध्ययन भी नहीं किया था। परंतु ऐसे मंत्री भी अपने कार्य में इस कारण पूर्ण सफलता प्राप्त करते थे कि उन्हें अपने आधीन, उन स्थायी सरकारी कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त होता था जो वर्षों तक एक ही प्रकार का कार्य करते रहने के कारण, उसमें पूर्ण रूप से दक्षता प्राप्त कर लेते थे। अच्छे, कुशल, परिश्रमी तथा ईमानदार सरकारी कर्मचारियों का संगठन, इसलिये, प्रजातंत्र शासन की सफलता के लिये अत्यंत आवश्यक है।

अङ्गरेजों के काल में भारत में सरकारी नौकरों का संगठन

प्रजातंत्र शासन के अंतर्गत ही नहीं, दूसरे हर प्रकार के सरकारी संगठनों के आधीन सरकारी नौकरों की कुशल व्यवस्था की आवश्यकता होती है। निरंकुश शासनों में सरकारी नौकर ही सारे देश का शासन चलाते हैं। ऐसे राज्यों में जनता को सरकारी काम में हस्तक्षेप करने का किसी प्रकार का अधिकार नहीं दिया जाता। उसका काम केवल राजाज्ञाओं का पालन करना होता है। इसलिये इस प्रकार की व्यवस्था में सरकारी नौकरों को अपने कार्य में और भी अधिक दक्ष होने की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु इस प्रकार का सरकारी संगठन जीवात्माहीन, निरंकुश, अत्याचारी तथा जनता से अत्यधिक दूर रहकर कार्य करता है। इसका एक मात्र उद्देश्य राज्य में शांति और सुव्यवस्था (Law and order) कायम रखना रह जाता है। वह जनता की सेवा तथा उत्थान का कार्य नहीं करता। जनता को किसी

प्रकार की राजनैतिक शिक्षा प्राप्त नहीं होती, उसमें आत्म-विश्वास का निर्माण नहीं होता तथा उसका नैतिक स्तर निरन्तर गिरता रहता है।

नौकरशाही (Bureaucracy)

अंग्रेजों के काल में इसी प्रकार का सरकारी संगठन हमारे देश में विद्यमान था। उस सरकारी संगठन को हम नौकरशाही या ब्यूरोक्रैसी के नाम से संबोधित करते थे। इस संगठन के अन्तर्गत सरकारी नौकर अपने आपको जनता का सेवक नहीं उसका स्वामी समझते थे। जनता स्वयं सरकारी अधिकारियों को अपना 'माई-बाप' कहकर सम्बोधित करती थी। सरकारी नौकर जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे। वह अंग्रेज शासकों की गुलामी करते थे परन्तु भारतीय जनता को हर प्रकार से कुचलते थे। इस प्रकार का सरकारी संगठन अत्यन्त अनुन्नतशील तथा भावशून्य होता था और वह एक लोहे की, जीवात्माहीन, मशीन के समान एक बन्धी हुई लकीर के आधार पर कार्य करता था। उसमें विचार शक्ति का अभाव था, वह जनता का हितचिंतन नहीं कर सकता था। वह अत्याचारपूर्ण उपायों से जनता का शोषण तथा उसका दमन करता था।

इंडियन सिविल सर्विस

अंग्रेजों के काल में इस प्रकार के भारतीय सरकारी संगठन की द्योतक हमारी 'इण्डियन सिविल सर्विस' थी। इस सर्विस के सदस्य भारत सरकार द्वारा नहीं वरन् इंगलैंड में 'भारत मंत्री' द्वारा भर्ती किये जाते थे। इस सर्विस के अधिकतर सदस्य अंग्रेज होते थे और उन्हीं को उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त किया जाता था। शिक्षा के दौरान में इन अधिकारियों को केवल यह बताया जाता था, कि वह किस प्रकार भारत में वहाँ की जनता से दूर रह कर देश में शान्ति व सुव्यवस्था बनाये रखने के कार्य में सफल हो सकते हैं। उन्हें इस बात की शिक्षा नहीं दी जाती थी कि वह जनता की किस प्रकार अधिक से अधिक सेवा कर सकते हैं। इसीलिये आज भी हम यह देखते हैं कि इस पुरानी सर्विस के जो लोग भी सरकारी नौकरियों में शेष हैं, वह भारत के परिवर्तित वातावरण में भी उसी प्रकार व्यवहार करते हैं जैसे वह जनता के सेवक नहीं उसके स्वामी हों। उनमें दंभ, घमंड तथा झूठे स्वाभिमान

के अधिक चिन्ह देखने को मिलते हैं। वह साधारण जनता के साथ रहना अथवा उनसे सम्पर्क बढ़ाना पसन्द नहीं करते। जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों यहाँ तक कि मंत्रियों को भी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वह समझते हैं कि देश का शासन चलाने की एकमात्र योग्यता केवल उनमें है और जनता के चुने हुए प्रतिनिधि मूर्ख, अनुभवहीन तथा अव्यवहारिक हैं।

जहाँ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'इंडियन सिविल सर्विस' के लोगों में उपरोक्त सभी बुराइयाँ हैं, वहाँ हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि शासन के कार्य में यह व्यक्ति अत्यंत ही निपुण तथा दक्ष हैं। अंग्रेजों के काल में इन लोगों को इस प्रकार की उच्च शिक्षा दी जाती थी कि वह अपने पाठ्य-क्रम को पूरा करने के पश्चात् सरकारी काम में हर प्रकार से कुशल हो जाते थे। उनकी भरती एक अत्यंत कठिन परीक्षा तथा प्रतियोगिता के आधार पर की जाती थी। इस परीक्षा में केवल वही व्यक्ति उत्तीर्ण हो पाते थे जो अत्यंत कुशाग्र-बुद्धि तथा परिश्रमी होते थे। इंगलैंड के अतिरिक्त सारे भारत-वर्ष से जिसमें उस समय पाकिस्तान भी सम्मिलित था, केवल तीन या चार व्यक्ति प्रति वर्ष इंडियन सिविल सर्विस के लिये चुने जाते थे। स्वभावतः यह व्यक्ति ऐसे होते थे जिनको सारे देश का मथा हुआ 'मस्तिष्क' कहा जा सकता था।

इंडियन सिविल सर्विस का इतिहास

कुछ अंशों में, भारत में राजनैतिक चेतना के सञ्चार का मूल कारण, हम इंडियन सिविल सर्विस के साथ जोड़ सकते हैं।

जिस समय, सन् १८८५ तक, भारत में राष्ट्रीय कॉंग्रेस की स्थापना भी नहीं हुई थी और जनता स्वराज्य के नाम से भी अनभिज्ञ थी, उस समय इंडियन सिविल सर्विस में भारतीयों की भर्ती का प्रश्न लेकर ही कुछ व्यक्तियों ने सारे देश में राजनैतिक चेतना का सञ्चार किया था। इस सर्विस का सङ्गठन ईस्ट इंडिया कम्पनी के काल में उस समय हुआ था जब अंग्रेजों को भारत का शासन चलाने के लिए अत्यंत योग्य तथा अनुभवी अधिकारियों की आवश्यकता थी। आरम्भ में 'कंपनी' के डाइरेक्टरों के रिश्तेदार अथवा कृपापात्र ही इस सर्विस में भर्ती किये जाते थे, परन्तु ब्रिटिश सरकार को आगे

चल कर जब यह अनुभव हुआ कि किसी दूसरे देश में शासन चलाने के लिए लालची, बेईमान तथा अयोग्य अधिकारियों से काम नहीं चलता, और इसके लिए अत्यंत ही योग्य तथा अनुभवी व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है, तो उसने सन् १८५८ में, प्रतियोगिता के आधार पर, इंडियन सिविल सर्विस में ब्रिटिश यूनिवर्सिटियों के विद्यार्थियों को भर्ती करने का निश्चय किया। इन विद्यार्थियों के शिक्षण के लिये 'हेलीबरी' में एक ट्रेनिंग कालेज भी खोल दिया गया।

आरंभ में भारतीय विद्यार्थियों को इस सर्विस में भर्ती होने से रोकने के लिये उनके मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित की गईं। कहा गया कि केवल इंगलैंड में पढ़ने वाले वही भारतीय इस सर्विस की परीक्षा में बैठ सकेंगे जिनकी आयु १९ वर्ष से कम होगी। उन्नीसवीं शताब्दी का भारत आज से बहुत भिन्न था। उस समय विदेशी यात्रा धर्म विरोधी समझी जाती थी। तिस पर, छोटी आयु में अपने बच्चों को समुद्र पार भेजने के लिये कोई भी परिवार तैयार नहीं होता था। परिणाम यह हुआ कि भारतीय विद्यार्थियों के अंगरेज विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक कुशाग्र बुद्धि होने पर भी, सन् १८७० तक केवल एक ही भारतीय इंडियन सिविल सर्विस में भर्ती हो सका।

भारतवासियों के इंडियन सिविल सर्विस में भर्ती किये जाने के इसी प्रश्न को लेकर, देश के नेताओं ने, ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आंदोलन किया। उनकी माँग थी कि भारतवासियों को बढ़ते हुए अनुपात से इस सर्विस में भर्ती किया जाय, उनके प्रवेश के लिये इंगलैंड के अतिरिक्त भारत में भी प्रतियोगिता परीक्षा ली जाय, तथा भर्ती के पश्चात उनको उच्च से उच्च सरकारी पद प्राप्त करने के योग्य समझा जाय। सन् १८८५ में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् यह आंदोलन और भी अधिक शक्तिशाली हो गया। कांग्रेस के तत्वावधान में कई प्रतिनिधि मंडल इंगलैंड भेजे गये। इन सब आंदोलनों का परिणाम यह हुआ कि यद्यपि सन् १९१९ के मौंटेग्यू-चैम्स-फोर्ड सुधारों के पश्चात् तक, ब्रिटिश सरकार ने भारत में इंडियन सिविल सर्विस की भर्ती के लिए अलग परीक्षा का आयोजन नहीं किया, परन्तु फिर भी उसने एक बढ़ते हुए अनुपात से इंडियन सिविल सर्विस में भारतवासियों की भरती

के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया। १६१६ के पश्चात् आई० सी० एस० की परीक्षा भी भारत में होने लगी, यद्यपि इस परीक्षा के परिणामों के फलस्वरूप बहुत थोड़े से ही व्यक्ति इस सर्विस में भरती किये जाते थे।

ली कमीशन की नियुक्ति—सन् १६२३ में ब्रिटिश सरकार ने इम्पीरियल सर्विस के समस्त सङ्गठन के विषय में विस्तृत रिपोर्ट देने के लिये, एक विशेष कमीशन की नियुक्ति की। इस कमीशन के सभापति लार्ड ली थे। कमीशन ने अपनी सिफारिशों में कहा कि इम्पीरियल सर्विसों अर्थात् आई० सी० एस०, आई० पी० एस० और आई० एम० एस० में भारतीयों का अनुपात कुछ वर्षों में, (१० से लगाकर २५ वर्षों में) धीरे धीरे बढ़ाकर ५० प्रति-शत कर दिया जाय, दूसरी सरकारी नौकरियों के विषय में भी कमीशन ने अपने सुझाव रक्खे। उसने कहा कि भारत की समस्त नौकरियों को केन्द्रीय तथा प्रांतीय भागों में बाँट दिया जाय। प्रत्येक विभाग की नौकरी के तीन भाग किये जाँय—(१) केन्द्रीय या प्रांतीय सुपीरियर सर्विस, (२) सबार्डिनेट सर्विस और (३) लोअर सबार्डिनेट सर्विस। इम्पीरियल सर्विसों अर्थात् आई० सी० एस०, आई० पी० एस०, तथा आई० एम० एस० के विषय में कमीशन ने कहा कि इसकी भर्ती भारत मन्त्री के ही द्वारा की जानी चाहिये तथा इनके ऊपर केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों का किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रहना चाहिये।

ली कमीशन की सिफारिशों ने भारत में अत्यधिक राजनैतिक असंतोष उत्पन्न कर दिया, कारण जनता तो समझती थी, कि मांटेग्यू-चैम्सफोर्ड सुधारों के पश्चात् ब्रिटिश सरकार उच्च सरकारी नौकरियों पर से भी अपना नियंत्रण हटा लेगी, और इम्पीरियल सर्विस के सदस्य जनता के चुने हुए मन्त्रियों के आधीन रह कर काम कर सकेंगे। परंतु ब्रिटिश सरकार जानती थी कि ब्रिटिश इम्पीरियल सर्विस के सदस्यों की राजभक्ति तथा सहयोग के कारण ही भारत में उसका शासन कायम है। इसलिये किसी मूल्य पर भी वह इन नौकरियों के ऊपर अपना नियन्त्रण छोड़ने के लिये प्रस्तुत नहीं थी।

सन् १६३५ के विधान में भी भारत मन्त्री ने इम्पीरियल सर्विस के ऊपर अपना ही अधिकार कायम रक्खा। कैसे आश्चर्य की बात थी कि

जनता के प्रतिनिधि मन्त्रियों की कुर्सियों पर बैठें और शासन की नीति का संचालन करें, परन्तु उनके नीचे कार्य करने वाले उच्च सरकारी कर्मचारी मन्त्रियों के प्रति नहीं वरन् एक विदेशी सरकार के प्रतिनिधि के प्रति उत्तरदायी हों। संसार के राजनैतिक इतिहास में इस प्रकार का प्रबंध अद्वितीय था। परंतु ब्रिटिश सरकार भारतवासियों के हाथ में वास्तविक शासन सत्ता सौंपना नहीं चाहती थी। वह तो केवल अन्तर्राष्ट्रीय लोकमत को अपने पक्ष में करने के लिये एक इस प्रकार का ढकोसला संसार के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहती थी जिसमें बाहर से यह प्रतीत हो कि भारतवर्ष में सरकार की समस्त सत्ता वहाँ की जनता के हाथ में हैं परंतु वास्तव में वह स्वयं उस देश की भाग्य विधाता हो।

अगस्त सन् १९४७ अर्थात् उस समय तक जब कि ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों के हाथ में समस्त शासन सत्ता को हस्तांतरित नहीं कर दिया हमारे देश में इम्पीरियल-सर्विसों के सम्बन्ध में यही व्यवस्था कायम रही। इस व्यवस्था में सबसे बड़ा दोष यह था कि इस इम्पीरियल-सर्विस के सदस्य मन्त्रियों द्वारा निर्धारित शासन की नीति का उचित रूप से पालन नहीं करते थे और उनकी इस अवज्ञा के लिये मंत्रीगण उनके विरुद्ध किसी प्रकार की अनुशासन सम्बंधी कार्यवाही भी नहीं कर सकते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इसीलिये सर्वप्रथम भारत सरकार ने, यह निश्चय किया कि इम्पीरियल सर्विसों के ऊपर उसका वही अनुशासन हो, जो उसे दूसरी सर्विसों के ऊपर प्राप्त है। बहुत से अंग्रेज, इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य, जो इस परिवर्तित वातावरण में कार्य करना नहीं चाहते थे, भारत सरकार ने उन्हें ब्रिटिश सरकार से एक समझौता करके, पेंशन तथा हानि पूर्ति (Compensation) की रकम देकर विदा कर दिया। इस प्रकार सन् १९४७ में लगभग ५०० अंग्रेज इम्पीरियल-सर्विसों से पृथक कर दिये गये। दूसरे सिविल सर्विस के सदस्यों से, भारत सरकार ने एक विशेष प्रबंध पत्र पर हस्ताक्षर करा लिये, जिसके अंतर्गत उन्होंने यह स्वीकार किया कि वह भारत मन्त्री के स्थान पर भारत सरकार के प्रति उत्तरदायी होंगे और उसके अनुशासन के नीचे रह कर कार्य करेंगे।

इस प्रकार भारतीय शासन की सबसे दूषित प्रथा, जिसके अंतर्गत सरकार के कुछ नौकर भारतीय जनता का नमक खाकर भी एक दूसरी सरकार के प्रति उत्तरदायी थे, तथा उसी की नीति को भारत में कार्यान्वित करते थे, का अंत कर दिया, और देश के समस्त सरकारी कर्मचारियों को एक से ही नियमों के आधीन, भारत सरकार के अनुशासन में ले लिया गया।

१. असैनिक नौकरियाँ (Civil Services)

भारत सरकार के आधीन नौकरियों का संगठन

अखिल भारतीय नौकरियाँ—इंडियन सिविल सर्विस के स्थान पर अब भारत में एक दूसरी अखिल भारतीय सर्विस का संगठन किया गया है जिसका नाम 'इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस' है। इस सर्विस के सदस्य उसी प्रकार के पद प्राप्त करते हैं जैसे पहले इंडियन सिविल सर्विस के सदस्यों को मिलते थे। इंडियन पुलिस सर्विस का संगठन पहले जैसा ही रक्खा गया है। इन दोनों सर्विसों के सदस्य केन्द्रीय सरकार के आधीन 'यूनियन पब्लिक सर्विस-कमीशन' द्वारा भरती किये जाते हैं, परन्तु वह प्रान्तों में रह कर उनकी सरकारों के आधीन काम करते हैं। इस प्रकार का आयोजन इस दृष्टि से किया गया है जिससे भारत में शासन प्रबन्ध की दृष्टि से एकता बनी रहे और राज्यों में कार्य करने वाले बड़े-बड़े उच्च सरकारी कर्मचारी केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में रहें तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करें। एक तीसरी नई अखिल भारतीय सर्विस इण्डियन फोरेन सर्विस के नाम से संगठित की गई है जिसके सदस्य भारत के विदेशों में स्थित दूतावासों में काम करते हैं।

उपरोक्त तीनों अखिल भारतीय सर्विसों के अतिरिक्त निम्न सर्विसों के सदस्य भी केन्द्रीय सरकार द्वारा ही भरती किये जाते हैं तथा उन्हें भी देश के किसी भी भाग में कार्य करने के लिये बाध्य किया जा सकता है :—

(1) Indian Audit and Accounts Service
(2) The Military Accounts Department
(3) The Indian Railway Accounts Service
(4) The Indian Customs and Excise Service

(5) The Income Tax Officers (Class I, Grade II) Service

(6) The Transportation (Traffic) and Commercial Departments of the Superior Revenue Establishment of State Railways

इन सभी नौकरियों में भरती के लिये केन्द्रीय सरकार के आधीन यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन, एक संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन करती है। इस परीक्षा के परिणामों के फलस्वरूप उपरोक्त सभी नौकरियों के लिये सदस्य छाँटे जाते हैं तथा उन्हें देश के विभिन्न भागों में कार्य करने के लिये भेज दिया जाता है।

केन्द्रीय सरकार के आधीन दूसरी नौकरियाँ—उपरोक्त नौकरियों के अतिरिक्त सरकार के आधीन विभिन्न महकमों में काम करने के लिये चार प्रकार के सरकारी नौकर रक्खे जाते हैं। इन सरकारी नौकरों को क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी के सरकारी नौकर (Class I, II, III, or IV Services) कहा जाता है। चतुर्थ श्रेणी के सरकारी नौकरों की सूची में चपरासी तथा फराश इत्यादि गिने जाते हैं। तृतीय श्रेणी में दफ्तरों में काम करने वाले क्लर्क, टाइपिस्ट, स्टैनो, ऐसिस्टेंट तथा छोटे दरजे के सरकारी अफसर आते हैं। इसके अतिरिक्त प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के अफसर के आधीन अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर कार्य करते हैं तथा जिनमें से अधिकतर को 'गजटेड अफसर' की उपाधि दी जाती है।

केन्द्रीय सरकार के आधीन मुख्य रूप से निम्न सर्विसों के लोग काम करते हैं:—

केन्द्रीय सेक्रेटेरियेट सर्विस, डाकखाने या यातायात संबन्धी सर्विस, कस्टम्स सर्विस, केन्द्रीय एक्साइज सर्विस, इनकम टैक्स सर्विस, अखिल भारतीय रेडियो सर्विस, इंडियन स्टेट्स सर्विस तथा रक्षा सम्बन्धी सर्विस।

भारत के नये संविधान के चौदहवें भाग में केन्द्रीय व राज्य की सरकारों के कर्मचारियों को कुछ विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं। उदाहरणार्थ संविधान की ३१२ वीं धारा में कहा गया है कि किसी कर्मचारी को तब तक

उसके पद से अलग नहीं किया जायगा जब तक उसे उन कारणों से अवगत न कराया जाय जिनकी वजह से उसके विरुद्ध इस प्रकार की कार्यवाही की जा रही है। साथ ही उसे अपील का अधिकार दिया गया है। आगे चल कर संविधान में कहा गया है कि कोई भी सरकारी कर्मचारी उसे नियुक्त करने वाले अधिकारी से निचले किसी भी अधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जायगा। इंडियन सिविल सर्विस के उन सदस्यों के अधिकारों की रक्षा के लिए जिनकी भर्ती स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहिले भारत मन्त्री द्वारा की जाती थी, संविधान में कहा गया है कि उनके वेतन, छुट्टी क्षति पूर्ति, तथा अनुशासन संबन्धी अधिकार पहिले जैसे ही बने रहेंगे। भारत सरकार के समस्त कर्मचारियों को मत प्रदान करने के उसी प्रकार के अधिकार प्राप्त होंगे जैसे दूसरे नागरिकों को, परन्तु उन्हें किसी राजनैतिक दल का सदस्य नहीं होने दिया जायगा। ऐसी रोक प्रत्येक देश में ही लगाई जाती है जिससे सरकारी नौकर राजनीति की दलदल में न फँसे और जो भी राजनैतिक दल शासनारूढ़ हो उसकी ही सेवा करते रहें।

प्रांतों (राज्यों) के आधीन नौकरियों का संगठन

इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस तथा इंडियन पुलिस सार्विस के अधिकारियों को छोड़ कर राज्यों में कार्य करने वाले और शेष सारे सरकारी कर्मचारी राज्यों की सरकारों द्वारा भरती किये जाते हैं, तथा वे उसी के अनुशासन के आधीन रहकर कार्य करते हैं। १९३५ के विधान के आधीन इंडियन मैडिकल सर्विस के सदस्य भी भारत मन्त्री द्वारा नियुक्त किये जाते थे परन्तु नये विधान के अन्तर्गत यह सर्विस प्रांतीय कर दी गई है अर्थात् इसके सदस्य अब राज्यों की सरकारों द्वारा ही भर्ती किये जाते हैं।

राज्य की सर्विसों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) प्रांतीय सर्विस, (२) सबार्डिनेट सर्विस और (३) लोअर सबार्डिनेट सर्विस। प्रांतीय सर्विस में निम्न नौकरियाँ सम्मिलित हैं :—

(१) प्रांतीय सिविल सर्विस—जिनके सदस्य कार्यकारिणी तथा न्याय संबन्धी महकमों में काम करते हैं।

(२) प्रांतीय पुलिस सर्विस—जिनके सदस्य डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट पुलिस इत्यादि के पद पर कार्य करते हैं।

(३) प्रांतीय शिक्षा सर्विस (Provincial Education Service)

(४) प्रान्तीय इंजीनियरिंग सर्विस (Provincial Engineering Service)

(५) प्रांतीय स्वास्थ्य सर्विस (Provincial Health Service)

(६) प्रांतीय चिकित्सा संबंधी सर्विस (Provincial Medical Service)

(७) प्रांतीय कृषि सर्विस (Provincial Agricultural Service)

(८) प्रांतीय पशु चिकित्सा सर्विस (Provincial Veterinary Service)

(९) प्रांतीय वन सर्विस (Provincial Forest Service)

इन सर्विसों के सदस्यों की नियुक्ति पब्लिक सर्विस कमीशन की सिफारिशों के आधार पर राज्यपाल द्वारा की जाती है। इस सर्विस के सदस्य, प्रांतों में, प्रथम श्रेणी (Class I) के सरकारी नौकर कहे जाते हैं।

इस सर्विस के अधिकारियों के नीचे सबार्डिनेट सर्विस के सदस्य काम करते हैं जिनमे हम तहसीलदार, नायब तहसीलदार, थानेदार, इन्स्पेक्टर पुलिस, एक्साइज इन्स्पेक्टर, सब असिस्टेंट सर्जन, सरकारी महकमे के इंस्पेक्टर कृषि इन्स्पेक्टर इत्यादि के नाम ले सकते हैं।

सबार्डिनेट सर्विस के सदस्यों के आधीन अनेक क्लर्क, स्टैनों, असिस्टेंट इत्यादि काम करते हैं। यह सदस्य लोअर सबार्डिनेट सर्विस के सदस्य कहलाते हैं। इन सब की नियुक्ति भी पब्लिक सर्विस कमीशनों की सिफारिशों के आधार पर की जाती है। कुछ टेकनिकल पदों पर सरकार के विभिन्न विभाग भी स्वयं सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकते हैं। परन्तु इनके लिये पब्लिक सर्विस कमीशन की स्वीकृति अनिवार्य होती है।

राज्यों के अन्तर्गत काम करने वाले सरकारी नौकरों को भी प्रायः उसी प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं जैसे केन्द्रीय सरकार के आधीन काम करने वाले सरकारी नौकरों को। अन्तर केवल इतना है कि राज्य की सरकारें केन्द्र की अपेक्षा अपने कर्मचारियों को कम वेतन देती हैं। ऐसा होना

स्वाभाविक ही है, कारण प्रांतों में खर्च कुछ कम होता है और वहाँ जीवन की आवश्यक वस्तुएँ सस्ती तथा आसानी से मिल जाती हैं।

लोक सेवा आयोगों (Public Service Commissions) का संगठन

हमारे नये संविधान की एक विशेषता यह है कि राज्यों तथा संघ सरकार के अन्तर्गत, सरकारी नौकरों की भर्ती के लिये, ऐसे लोक सेवा आयोगों (Public Service Commissions) का संगठन किया गया है, जो कार्यकारिणी से स्वतन्त्र रह कर, प्रतियोगिता के आधार पर, सरकारी नौकरों की भर्ती का कार्य करेंगे। शासन प्रबंध की कुशलता तथा निष्पक्षता के विचार से इस प्रकार का प्रबंध प्रत्येक ही प्रगतिशील देश में पाया जाता है। यदि कार्यपालिका के हाथों में ही सरकारी नौकरों की भर्ती का काम सौंप दिया जाय तो इससे शासन में शिथिलता आ जाती है, कारण इस प्रकार के प्रबंध में केवल वही लोग सरकारी पद प्राप्त कर सकते हैं जो उच्च सरकारी अधिकारियों के सम्बन्धी अथवा मित्र हों। लोक सेवा आयोग प्रतियोगिता तथा परीक्षाओं के आधार पर सरकारी कर्मचारियों की भर्ती करते हैं, और यद्यपि इस प्रकार के प्रबंध में भी बहुत से अयोग्य तथा सिफारिशी व्यक्ति सरकारी नौकरी प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु फिर भी दूसरे हर प्रकार के आयोजनों से यह प्रबंध अच्छा है। लोक सेवा आयोगों के कार्य में अधिक कुशलता तथा निष्पक्षता लाने के लिये आवश्यक है कि उनके सदस्य अत्यंत ईमानदार, योग्य तथा चरित्रवान हों, सरकारी नौकरों की भर्ती केवल भेंट (Selection by interview) के आधार पर न की जाय, परीक्षार्थियों की योग्यता की जाँच के लिये तरह-तरह के मनोवैज्ञानिक अनुभव (Psychological Experiments) काम में लाये जायँ, तथा सरकार के लिये लोक सेवा आयोग की सिफारिशों के आधार पर सरकारी नौकरों की नियुक्ति करना अनिवार्य बना दिया जाय। हमारे देश में अभी तक लोक सेवा आयोग, केवल प्रतियोगिता के आधार पर, हर प्रकार के सरकारी नौकरों की भर्ती नहीं करते। कितने ही सरकारी कर्मचारी केवल ५-६ मिनट की कमीशन के सम्मुख भेंट के पश्चात् उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त कर दिये जाते हैं। उनकी योग्यता की परीक्षा के लिये किसी प्रकार के मनोवैज्ञानिक उपाय

काम में नहीं लाये जाते। आशा है नव संविधान के अन्तर्गत संगठित हमारे लोक सेवा आयोग इन दोषों को शीघ्र दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

नव संविधान में, संघ सरकार के अन्तर्गत सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति के लिये अलग तथा राज्यों में उनके सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति के लिये अलग, लोक सेवा आयोगों का संगठन किया गया है।

संविधान की ३१५वीं धारा में कहा गया है कि भारत में संघ सरकार तथा राज्यों की सरकारों के लिये अलग लोक सेवा आयोग होंगे, परन्तु दो या दो से अधिक राज्यों के विधान मंडल संघ सरकार से यह प्रार्थना कर सकेंगे कि उनके लिये एक संयुक्त लोक सेवा आयोग बना दिया जाय। संघ लोक सेवा आयोग भी राज्यों की सरकारों के लिये, उनके राज्यपाल अथवा राजप्रमुख की प्रार्थना पर, उस राज्य की सब अथवा किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कार्य करना स्वीकार कर सकेगा।

लोक सेवा आयोगों के सदस्यों की नियुक्ति—लोक सेवा आयोगों के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति, यदि वह संघ आयोग या संयुक्त आयोग है, तो राष्ट्रपति द्वारा, और यदि वह राज्य आयोग है तो राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा, की जाती है। इन सदस्यों में आधे सदस्य ऐसे होते हैं जो कम से कम दस वर्ष तक केन्द्रीय अथवा प्रांतीय सरकारों के नीचे कार्य कर चुके हों।

कार्य अवधि—आयोगों के सदस्यों की कार्य अवधि ६ वर्ष निश्चित की गई है, परन्तु इससे पहिले भी, कोई सदस्य यदि वह संघ आयोग का सदस्य है तो ६५ वर्ष की आयु होने पर, और यदि वह राज्य आयोग का सदस्य है तो ६० वर्ष की आयु होने पर, अपने पद से अलग किया जा सकेगा। एक बार से अधिक कोई भी व्यक्ति आयोगों की सदस्यता के लिये मनोनीत न हो सकेगा।

आयोगों के सदस्य पद से केवल उस समय हटाए जा सकेंगे जब उनके विरुद्ध कदाचार का आरोप हो और उस आरोप की पूरी जाँच देश की उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) द्वारा कर ली जाय। इस प्रकार की जाँच के पश्चात् यदि राष्ट्रपति यह समझें कि कोई सदस्य वास्तव में

कदाचार का दोषी है तो वह उसे उसके पद से हटा सकेंगे। राज्यपालों अथवा राजप्रमुखों को सदस्यों के विरुद्ध इस प्रकार की कार्यवाही करने का अधिकार नहीं होगा।

सदस्य संख्या—आयोगों के सदस्यों की संख्या, यदि वह संघ आयोग है तो राष्ट्रपति द्वारा और यदि वह राज्य आयोग है तो राज्यपाल अथवा राजप्रमुख द्वारा, निश्चित की जाती है। सदस्यों के वेतन तथा नौकरी की दूसरी शर्तों का निश्चय भी वही करते हैं।

सदस्यता में बाधक शर्तें—आयोगों के सदस्यों तथा अध्यक्षों के संबंध में संविधान में कुछ कड़ी शर्तें रक्खी गई हैं। उदाहरणार्थ विधान में कहा गया है कि:—

(१) कोई भी सदस्य एक बार से अधिक उसी पद के लिये मनोनीत न किया जा सकेगा।

(२) संघ आयोग का अध्यक्ष अपनी पदावधि की समाप्ति पर संघ सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार के आधीन किसी प्रकार की नौकरी न कर सकेगा।

(३) अपनी अवधि की समाप्ति पर किसी राज्य के लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष, संघ आयोग का सदस्य, अथवा अध्यक्ष, या किसी दूसरे राज्य के आयोग का अध्यक्ष हो सकेगा, परन्तु वह संघ अथवा उसके अन्तर्गत राज्यों की सरकारों के आधीन और किसी प्रकार की नौकरी न कर सकेगा।

(४) इसी प्रकार संघ आयोग का कोई सदस्य उसी आयोग अथवा किसी राज्य के आयोग का अध्यक्ष बन सकेगा परन्तु वह और किसी प्रकार की नौकरी न कर सकेगा।

(५) राज्य आयोगों का कोई सदस्य, अपनी कार्य अवधि की समाप्ति पर संघ आयोग का अध्यक्ष अथवा सदस्य, या किसी दूसरे राज्य के आयोग का अध्यक्ष बन सकेगा, परन्तु वह और किसी दूसरे प्रकार की नौकरी नहीं कर सकेगा।

इस प्रकार की शर्तें इसलिये निश्चित की गई हैं जिससे आयोगों के सदस्य अपने अधिकारों का दुरुपयोग करके ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्धियों को उच्च

सरकारी पदों पर नियुक्त न कर दें जो उन्हें रिटायर होने के पश्चात् सरकारी नौकरी का प्रलोभन दें।

आयोगों के अधिकार—आयोगों के अधिकारों के सम्बन्ध में संविधान में कहा गया है कि प्रत्येक आयोग को, अपने अधिकार क्षेत्र में, सभी असैनिक सरकारी नौकरियों के लिए व्यक्ति भरती करने का हक़ होगा। इस प्रकार की भरती के लिए वह परीक्षाओं का आयोजन करेंगी। वह ऐसे नियम बनायेगी जिनके आधीन विभिन्न सरकारी नौकरियों के लिये व्यक्ति भरती किए जा सकें। सरकारी नौकरों की तरक्की तथा एक विभाग से दूसरे विभाग में उनकी बदली के सम्बन्ध में भी वह नियम बनाएँगी। उन्हें सरकारी नौकरों की ओर से, उनके विरुद्ध कार्यवाही किए जाने पर, अपील सुनने का भी अधिकार होगा। पैंशन, ऐसे मुकदमों में खर्च हुई रकम की माँग जो किसी सरकारी कर्मचारी को किसी पद विशेष पर कार्य करने के कारण करनी पड़ी हो, अथवा कर्तव्य पालन के समय शारीरिक अथवा मानसिक हानि होने पर पैंशन अथवा क्षति पूर्ति की माँग, तथा इसी प्रकार के दूसरे प्रश्नों पर भी, जिनका सरकारी कर्मचारियों से सम्बन्ध होगा, कमीशनों द्वारा विचार किया जायगा। इन सब के अतिरिक्त संविधान में कहा गया है कि यदि संसद् उचित समझे तो आयोगों को दूसरे प्रकार के अधिकार भी प्रदान कर सकेगी।

वार्षिक रिपोर्ट—संघ तथा राज्यों के आयोगों को, प्रति वर्ष, अपने कार्य की पूरी रिपोर्ट संसद् अथवा विधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत करनी होगी। इस रिपोर्ट में 'आयोग' अपनी उन सिफारिशों का भी वर्णन करेगा जिनको संघ अथवा राज्यों की सरकारों ने स्वीकार नहीं किया हो। आयोगों की रिपोर्टों पर संसद् और राज्यों की विधान सभाओं को विचार करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नये संविधान में, लोक सेवा आयोगों को बहुत विस्तृत अधिकार देकर, हमारे विधान निर्माताओं ने, सरकारी नौकरियों में भर्ती का एक ऐसा आयोजन किया है जो हर प्रकार के दोषरहित तथा कुशल साबित हो सके। आयोग' कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र से उसी प्रकार स्वतन्त्र होंगे जैसे हमारी न्यायपालिका (Judiciary) है। उनके सदस्यों

को सुप्रीम कोर्ट की सिफारिश के बिना पदच्युत नहीं किया जा सकेगा। उनके वेतन तथा नौकरी की दूसरी शर्तें राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल व राजप्रमुख द्वारा स्वयं निश्चित की जायगी। सरकारी महकमों के लिए आयोगों की सिफारिशों पर कार्य करना प्रायः अनिवार्य होगा। जो महकमें इन सिफारिशों पर अमल नहीं करेंगे उनकी रिपोर्ट संसद् के सम्मुख प्रस्तुत की जायगी।

किसी देश में मंत्रिमंडल के सदस्य चाहे जितने अधिक योग्य तथा बुद्धिमान हों, सरकार की अन्तिम सफलता उसके स्थाई कर्मचारियों के चरित्र पर निर्भर करती है। इसलिये आशा है कि हमारे लोक-सेवा आयोग स्वतंत्र भारत में ऐसे सरकारी कर्मचारियों को चुनेंगे जो हमारे देश को गौरवान्वित कर सकें तथा जो झूठा दंभ और स्वाभिमान त्याग कर जनता की सच्ची सेवा कर सकें।

सैनिक नौकरियाँ (Defence Services)

असैनिक सरकारी कर्मचारी जहाँ किसी देश में कार्यकारिणी द्वारा निर्धारित नीति को कार्यान्वित करते हैं, वहाँ देश की सेना राष्ट्र की आंतरिक उपद्रवों तथा बाह्य आक्रमणों से रक्षा करती है। शासन के अस्तित्व तथा राष्ट्र के गौरव के लिये सेना का सङ्गठन उतना ही आवश्यक है जितना सरकार के विभिन्न विभागों का निर्माण।

हमारे देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले सेना का सङ्गठन भारत की रक्षा के लिये नहीं वरन् ब्रिटिश सम्राज्य की रक्षा के लिए किया जाता था। इसी कारण भारत की गुलामी के काल में सेना का सबसे अधिक उपयोग हमारे स्वतन्त्रता संग्राम को कुचलने के लिये किया गया। सेना पर व्यय, उसकी संख्या का निश्चय, उसमें ब्रिटिश सिपाहियों की भरती, उसका विदेशों में उपयोग—सब ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा की दृष्टि से किया जाता था। यही कारण था कि हमारे देश के नेता अगस्त सन् १९४७ से पहले सदा इसी बात की माँग किया करते थे कि भारतीय सेना का व्यय कम किया जाय तथा उसमें भारतीयकरण (Indianisation) की नीति का अवलंबन हो।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश के सैन्य सङ्गठन में आमूल परि-

वर्तन किये गये। जिस सेना में कुछ ही वर्ष पहले प्रायः सारे ही उच्च अधिकारी अंग्रेज ही हुआ करते थे, तथा जिसमें लगभग एक लाख सिपाही अंग्रेज थे, आज उसी सेना का पूर्ण रूप से भारतीय तथा राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। कुछ थोड़े से उच्च सेना अधिकारियों को छोड़ कर, जिनमें से भी अधिकतर केवल वही लोग हैं जो विशेष प्रकार की टेकनिकल योग्यता रखते हैं, शेष सभी सेना अधिकारी भारतीय नियुक्त कर दिये गये हैं। अंग्रेज अधिकारियों को केवल कुछ वर्षों के ठेके पर ही नियुक्त किया गया है। भारतीय सेना की अंतिम अंग्रेज टुकड़ी २८ फरवरी सन् १९४८ को हमारे देश से विदा कर दी गई।

अंग्रेजों के काल में प्रधान सेनापति (Commander-in-Chief) हमारे देश की सर्वोच्च कार्यकारिणी अर्थात् वायसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल के सब से प्रमुख सदस्य होते थे। उनका भारत की तीनों सेना अर्थात् जल, थल तथा वायु सेना पर पूर्ण आधिपत्य होता था। स्वतन्त्रता के पश्चात सेनापति का पद रक्षामन्त्री के आधीन कर दिया गया। तथा देश की तीनों विभिन्न सेनाओं के लिये अलग अलग सेनापति नियुक्त कर दिये गये। आजकल हमारी थल सेना के सेनापति श्री करिअप्पा है, जल सेना के सेनापति वाइस ऐडमिरल श्री पैरी हैं, और वायुसेना के सेनापति श्री चैपमैन हैं।

एक तीसरा क्रांतिकारी परिवर्तन हमारे सैन्य संगठन में यह किया गया है कि अंग्रेजों के काल में हमारी सेना की भर्ती भारत की कुछ विशिष्ट सैन्य जातियों में से की जाती थी। आजकल भारत का प्रत्येक नागरिक चाहे वह किसी भी प्रांत, जाति, धर्म अथवा समुदाय से संबंध रखता हो, अपनी सेना में भरती होकर, उच्च से उच्च पद प्राप्त कर सकता है।

सेना का संगठन

आजकल भारतीय सेना का सर्वोच्च अधिकारी जनता का अपना चुना हुआ प्रतिनिधि रक्षामंत्री होता है। वह कार्यकारिणी के सदस्य के रूप में देश की रक्षा-नीति का संचालन करता है। रक्षा मन्त्री की सहायता के लिये दो सरकारी दफ्तर होते हैं जिन्हें मिनिट्री आफ डिफैन्स तथा आर्म्ड फोर्स हैडक्वाटर के नाम से संबोधित किया जाता है। फौज के प्रत्येक विभाग का जैसा

ऊपर बताया जा चुका है, अपना एक अलग सेनापति होता है। देश की रक्षा समस्याओं पर अविलंब विचार करने के लिये, मंत्रिमंडल की विशेष समिति होती है जिसे Defence Committee of the Cabinet कहा जाता है। इस कमेटी के सदस्य प्रधान मंत्री, उप प्रधान मंत्री, रक्षा, वित मंत्री, तथा रेल मंत्री, होते हैं ! तीनों सेनाओं के सेनापति भी इस कमेटी की बैठकों में भाग ले सकते हैं। यह कमेटी सेना संबंधी देश की समस्त समस्याओं पर अंतिम विचार करती है।

रक्षा सचिवालय (Defence Ministry) सेना की नीतिसंबंधी समस्याओं पर विचार करती है। नीति का संचालन (Army Headquarters) द्वारा किया जाता है। इस सचिवालय के निम्न भाग होते हैं।

1. General Staff Branch
2. Adjutant General's Branch
3. Quarter Master General's Branch
4. Master General of Ordnance Branch
5. Engineer-in-Chief's Branch
6. Military Secretary's Branch

यह विभिन्न विभाग जैसा उनके नामों से स्पष्ट है क्रमशः सैन्य नीति, सैन्य भर्ती, सेना के सामान की प्राप्ति, हथियारों इत्यादि की सप्लाई, सेना के लिये आवश्यक इमारतों तथा सड़कों इत्यादि के निर्माण एवं राष्ट्रपति की रक्षा की व्यवस्था करते हैं।

आजकल हमारे देश की सेवा पर लगभग १७० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष व्यय होता हैं। हमारी सेना की सैन्य संख्या लगभग ५ लाख है। सेना की तीनों शाखाओं के अधिकारियों के शिक्षण के लिये देहरादून तथा पूना में (Military Academy) है। स्थाई सेना के अतिरिक्त हमारे देश में 'राष्ट्रीय केडट कोर' तथा 'प्रादेशिक सेना' (टैरीटोरियल फोर्स) का संगठन किया गया है। राष्ट्रीय केडट कोर में केवल स्कूल व कालेज के छात्र सैनिक शिक्षा ग्रहण करते हैं। प्रादेशिक सेना दूसरे नागरिकों के सैनिक शिक्षण के लिये है। इन दोनों सेनाओं के लोग सैन्य शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात्

अपने अपने काम में लग जाते हैं और फिर केवल राष्ट्रीय संकट के समय में ही सेना में भरती होकर देश की रक्षा का कार्य करते हैं।

स्थाई सेना का वितरण हमारे देश के तीनों भागों (Commands) में किया गया है। इन भागों को पश्चिमी भाग (Western Command), पूर्वी भाग (Eastern Command), और दक्षिणी भाग (Southern Command) कहा जाता है। प्रत्येक भाग फौज के एक जनरल के आधीन रह कर कार्य करता है।

अंग्रेजों के काल में हमारी जल तथा वायु सेना के संगठन पर अधिक जोर नहीं दिया गया, कारण अंग्रेज हमारी सेना को ब्रिटिश साम्राज्य की सेना का एक भाग ही समझते थे। इंगलैंड की सरकार स्वयं अपनी जल तथा वायु सेना को शक्तिशाली बनाने पर अधिक जोर देती थी, और अपने आधीन देशों में थल सेना के संगठन को अधिक महत्व प्रदान करती थी। इस प्रकार वह सारे साम्राज्य की रक्षा के लिये एक संयुक्त नीति (Integrated Policy) से काम लेती थी। भारत विभाजन से हमारी सेना की इन दोनों शाखाओं की शक्ति और भी कम हो गई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इसलिये हमारी सरकार ने जल तथा वायु सेना के संगठन पर अधिक जोर दिया। जल सेना की विभिन्न शाखाओं की ट्रेनिंग के लिये उसने विजगापट्टम, कोचीन, सोनवाला, जामनगर तथा मैसूर में स्कूल खोले। उसने हमारी जल सेना को शक्तिशाली बनाने के लिये इंगलैंड व अमेरिका से बहुत से विध्वंसक जहाज (Destroyers) तथा युद्ध जहाज (Battleships) खरीदे। इसी प्रकार वायु सेना को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिये उसने बहुत से युद्धक विमान, उड़ान नौका, रक्षक विमान इत्यादि खरीदे तथा हवाई सेना की बहुत सी नई टुकड़ियाँ संगठित कीं। परन्तु अभी तक दूसरे देशों की अपेक्षा हमारी सैन्य शक्ति बहुत कम है। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि भारत सरकार एक बहुत बड़ी सेना रखने में विश्वास नहीं करती। हमारी सरकार साम्राज्यवादी नीति का अवलंबन करना नहीं चाहती। वह दूसरे देशों की स्वतन्त्रता हड़प करके अपने साम्राज्य का विस्तार देखना नहीं चाहती। वह केवल इतनी सेना रखना

चाहती है जिससे वह आंतरिक विद्रोहों को दबा सके तथा दूसरे के सामान्य आक्रमण से अपनी रक्षा कर सके। आजकल परमाणु तथा हाईड्रोजन बम के युग में कोई देश, चाहे उसकी सैन्य शक्ति कितनी बढ़ी चढ़ी क्यों न हो, अकेला रह कर अपनी रक्षा नहीं कर सकता। यदि हमारे देश की सरकार, आज खरबों अरबों रुपया प्रतिवर्ष खर्च करके भी यह चाहे कि वह रूस अथवा अमरीका की सैन्य शक्ति का मुकाबला कर सके तो यह एक असंभव बात है। अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये हमें राष्ट्र संघ की शक्ति पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। आज हमारा देश एक भीषण आर्थिक संकट में से गुजर रहा है। ऐसे समय में १७० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष भी सेना पर व्यय करना, जनता की आशाओं पर पानी फेरना है। भारत की कोटि कोटि जनता आज अपनी भूख, बेकारी तथा आश्रयहीनता की समस्या का हल चाहती है। सेना पर रुपया बरबाद करने की अपेक्षा वह सरकार से आशा करती है कि वह उसके लिये नये-नये उद्योग धन्धे चलाएगी, मकानों का प्रबंध करेगी, बेकारी को दूर करने के लिये योजनाएँ बनायेगी, तथा बढ़ती हुई वस्तुओं की कीमतों को कम करने के लिये रचनात्मक कार्य करेगी। हमारे देश के नेता इसलिये अब प्रयत्नशील हैं कि सेना पर व्यय कम किया जाय। यदि भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों में सुधार हो सका और दोनो देश अपने झगड़े का निपटारा शांतिपूर्ण उपायों से कर सके तो वह दिन दूर नहीं जब हमारा सेना पर व्यय बहुत कम हो जायगा और हमारी सरकार जनता के आर्थिक सङ्कट को दूर करने के लिये बहुत कुछ रचनात्मक कार्य कर सकेगी।

योग्यता प्रश्न

(१) प्रजातन्त्र शासन में लोकप्रिय मंत्री तथा स्थाई सरकारी नौकरों के बीच किस प्रकार सामंजस्य स्थापित किया जाता है? स्थाई नौकरों की प्रथा का क्या महत्त्व है?

(२) नौकरशाही शासन के क्या दोष थे? प्रजातन्त्र शासन में उन दोषों को कैसे दूर किया जाता है?

(३) संघीय लोक सेवा आयोगों के विधान का वर्णन कीजिये। कौन

से विषय ऐसे हैं जिनके लिये लोक सेवा अयोग की सम्मति लेना संघ सरकार के लिये अनिवार्य है? (यू० पी १९५१)

(४) राज्यों में लोक सेवा आयोगों का किस प्रकार संगठन किया जाता है ? उनके अधिकार तथा कर्त्तव्य क्या हैं ?

(५) केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों के अंतर्गत भिन्न-भिन्न सरकारी नाकरियों का संगठन समझाइये।

(६) अपने देश के सैनिक संगठन के विषय में तुम क्या जानते हो ?

अध्याय १२

नव संविधान पर एक आलोचनात्मक दृष्टि

इस पुस्तक के पिछले अध्यायों में हमने अपने नव संविधान की रूप रेखा पर एक विहंगम दृष्टि डाली है। इस संविधान में कौन-सी विशेषताएँ हैं, तथा क्या-क्या गुण हैं, जिनके कारण हम कह सकते हैं कि हमारा नया विधान संसार के सर्वोत्तम विधानों में से एक है, इसका वर्णन हम इसी पुस्तक के द्वितीय अध्याय में विस्तारपूर्वक कर चुके हैं। अभी तक हमारे इस संविधान पर पूर्णरूपेण कार्य आरम्भ नहीं हुआ है। राज्यों की विधान सभाओं तथा केन्द्रीय विधान मण्डल के चुनाव सन् १९५१ के अन्त में होंगे। उसी समय हमारे नये राष्ट्रपति का निर्वाचन होगा तथा एक उपराष्ट्र-पति भी चुना जायगा। इसलिये जिस समय तक इस संविधान पर पूरी तरह कार्य नहीं होता, तब तक हम यह नहीं कह सकते कि हमारे इस 'ऐतिहासिक पत्र' में क्या-क्या दोष हैं अथवा वह प्रत्येक दृष्टि से सर्वगुण सम्पन्न है अथवा नहीं। डाक्टर अंबेदकर ने संविधान सभा के अन्तिम अधिवेशन में ठीक ही कहा था—"किसी विधान की सफलता इस बात पर निर्भर नहीं होती कि उसका निर्णय किन आदर्शों पर किया गया है, अथवा उसकी भाषा पूर्ण-रूपेण प्रजासत्तात्मक है अथवा नहीं, वरन् इस बात पर निर्भर करती है कि उस पर किस भावना से कार्य किया जाता है। विधान के सिद्धान्तिक गुण कितने ही अच्छे हों, परन्तु यदि वह लोग जो उसे कार्यान्वित करने के लिये आगे आते हैं, ईमानदार नहीं तो अच्छे से अच्छा विधान भी बुरा हो जाता है। इसके विपरीत संविधान चाहे जितना बुरा हो, यदि उस पर कार्य करने वाले लोग अच्छे हैं तो विधान अच्छा बन जाता है। विधान की सफलता का अन्तिम उत्तरदायित्व जनता तथा राजनैतिक दलों पर हैं। यदि उन दोनों

शक्तियों ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संवैधानिक उपायों को काम में लाया और क्रान्तकारी उपाय न अपनाये तो निसन्देह हमारा नव संविधान सफल रहेगा।"

नव संविधान के विरुद्ध आलोचनाएँ

हमारे नव संविधान के सिद्धान्तों तथा उसकी आकृति के विरुद्ध आलोचकों की भी कमी नहीं है। हमारे देश के अनेक लेखकों, राजनीतिक विद्वानों, विशेषकर सामाजवादी तथा साम्यवादी नेताओं ने इस संविधान की दिल खोल कर आलोचना की है। नीचे हम इन आलोचनाओं का सार देते हैं। इन्हें देखने से पता चलेगा कि अधिकांश आलोचनाएँ वैयक्तिक प्रतिक्रिया द्वारा अनुप्रेरित हैं। वास्तविकता की दृष्टि से उनमें अधिक सार नही है और अधिकतर दलील एक दूसरे को काट देती हैं। उदाहरणार्थ जहाँ एक और आलोचक यह कहते हैं कि हमारा नया विधान समुचित रूप में प्रजातंत्रवादी नहीं है, वहाँ दूसरी ओर वह वयस्क मताधिकार की टीका टिप्पणी करते हैं और कहते हैं कि अशिक्षित तथा जाहिल जनता के हाथ में राय देने का अधिकार देने से हमारे राष्ट्र की नीव सुदृढ़ नहीं हो सकती। इसी प्रकार जहाँ एक ओर आलोचक भारत में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना देखना चाहते हैं वहाँ दूसरी ओर वह राज्य की सरकारों के हाथ से अधिकार छीने जाने पर आँसू बहाते हैं। नीचे हम अपने संविधान के विरुद्ध की गई विभिन्न आलोचनाओं का विश्लेषण करेंगे और यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि उनमें कहाँ तक सार है :—

(१) संसार का सबसे विस्तृत एवं जटिल विधान—सर्व प्रथम हमारे नव संविधान के विषय में यह कहा जाता है कि यह विधान अत्यन्त जटिल विस्तृत तथा कानूनीपन के दोषों से भरा हुआ है। यह विधान संसार के विधानों में सबसे अधिक लंबा है तथा इसके बनाने में जितना समय लगा एवं इस पर जितना रुपया व्यय किया गया वह अद्वितीय है। हमारे संविधान में ३९५ धाराएँ तथा ८ परिशिष्ट है। इसके विपरीत अमरीका के संविधान में केवल ७, आस्ट्रेलिया के संविधान में १२८, कैनाडा के संविधान में १४७, तथा दक्षिणी अफ्रीका के संविधान में १५३ धाराएँ

हैं। हमारे विधान को पास करने में देश की संविधान सभा को २ वर्ष ११ मास तथा १७ दिन का समय लगा तथा इस पर ६४ लाख रुपया व्यय किया गया। इसके विपरीत अमरीका की संविधान सभा ने केवल ४ मास, दक्षिण अफ्रीका की सभा ने २ वर्ष, तथा कनाडा की सभा ने २ वर्ष ५ मास में अपने विधान तैयार कर लिये थे।

आलोचना का उत्तर—इन आलोचनाओं को दोहराते समय हमारे राजनीतिज्ञ यह भूल जाते हैं कि भारतवर्ष जैसी विकट समस्याएँ तथा वह भीषण परिस्थितियाँ जिनका विधान परिषद् को सामना करना पड़ा, संसार के किसी दूसरे देश के सम्मुख न थीं। भारत की लगभग ६०० देशी रियासतों का एकीकरण एवं विलीनीकरण जिनको हमारे विदेशी शासक बिदा लेते समय पूर्ण रूप से स्वतन्त्र कर गये थे, उस साम्प्रदायिक समस्या का निवारण जिसका हल अंग्रेजों द्वारा बनाई गई दो गोलमेज सभाएँ कुछ न निकाल सकीं, नये प्रान्तों का निर्माण, राष्ट्र भाषा का प्रश्न, भारत की प्राचीन संस्थाओं का नई संस्थाओं के साथ योग, वयस्क मताधिकार का प्रश्न, तथा जनता के उन आर्थिक अधिकारों का निर्णय जिनके बिना भारत की त्रस्त तथा शोषित जनता के लिये स्वतन्त्रता का कोई मूल्य न था—और इन सारी समस्याओं पर उस समय विचार जब सारा देश बँटवारे तथा ६०० लाख शरणार्थियों के पुनर्वास के घोर सङ्कट का सामना कर रहा था—कोई आसान काम न था। तीन वर्ष तो बहुत कम है, भारत की प्रत्येक उल्लिखित समस्या, हमारी सदियों की परतन्त्रता, और गुलामी के वातावरण में इतना जटिल रूप धारण कर चुकी थीं कि यदि उसका निवारण और अधिक समय भी लेता तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। यदि जल्दी में हमारी विधान परिषद ने अपने पहले वर्ष में संविधान बनाने का कार्य समाप्त कर दिया होता तो हमारी देशी रियासतों का क्या रूप होता, हैदराबाद और काश्मीर की समस्याओं का क्या हल निकलता, अल्प संख्यक जातियों के लिये सुरक्षित स्थानों की क्या व्यवस्था रहती—यह कुछ प्रश्न हैं जिन पर हमें ठंडे हृदय से विचार करना चाहिये। किसी देश का संविधान एक अत्यंत पवित्र तथा पावन ग्रन्थ होता है। वह प्रतिदिन नहीं बदला जा सकता; उसके स्वरूप पर

किसी देश की जनता का भविष्य निर्भर होता है। इसलिये ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ को जितना भी सोच विचार कर बनाया जाय उतना ही कम है। रही आकार की बात तो इससे भय खाने की आवश्यकता नहीं। एक अच्छे संविधान का सबसे बड़ा गुण स्पष्टता है, और भारत की समस्याओं को देखते हुए एक छोटे संविधान में सब समस्याओं का निरूपण न हो सकता था।

(२) अभारतीय विधान—हमारे नव संविधान के विषय में दूसरी बात यह कही जाती है कि यह विधान अभारतीय है। उसकी आत्मा व आधार विदेशी है। वह भारत की प्राचीन संस्कृति का पुष्प और फल नहीं है। उसमें अधिकतर १९३५ के विधान की नकल की गई है। शेष विधान में इंगलैण्ड, अमरीका, कनाड़ा, आस्ट्रेलिया तथा आयरलैण्ड के विधानों से प्रेरणा ली गई है। इस विधान में कोई नई बात नहीं है, उसमें कोई नया सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया गया है।

उत्तर—इस आलोचना के उत्तर में हम केवल यही कह सकते हैं कि जो लोग हमारे संविधान को अभारतीय कह कर उसकी उपेक्षा करते हैं वह यह नहीं बताते कि हमारे नव संविधान का कौन सा भाग भारतीय संस्कृति पर कुठाराघात करता है, तथा वह किस प्रकार का संविधान भारतीय संस्कृति के अनुरूप समझते हैं? क्या प्राचीन भारत में जनतन्त्रात्मक शासन प्रणाली नहीं थी? क्या हमारे पहिले राजा जनता द्वारा नहीं चुने जाते थे? क्या वह जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों की सलाह से काम नहीं करते थे? क्या प्राचीन भारत में प्रतिनिधि संस्थाएँ—जनपद तथा लोक सभाएँ—नहीं थीं? क्या प्राचीन भारत में राज्यों का कोई विधान नहीं होता था? क्या बौद्धों के काल में भिक्षु संघों का वही स्वरूप नहीं था जो आज हमारी 'संसद्' का है। जिन लोगों ने डाक्टर जयसवाल, वासुदेव शरण अग्रवाल तथा भण्डारकर द्वारा लिखित उन पुस्तकों को पढ़ा है जिनमें हमारे प्राचीन हिंदू राज्यों की व्यवस्था का उल्लेख किया गया है, उन्हें भारतीय संविधान में वर्णित हमारी आधुनिक शासन प्रणाली अभारतीय प्रतीत नहीं होगी। गणतन्त्रात्मक प्रणाली भारत के लिए नवीन नहीं है। वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, व्याकरण, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, जैन ग्रन्थों तथा बौद्ध जातकों में गणतन्त्र

पद्धति का उल्लेख मिलता है। महाभारत का शांतिपर्व भी गणतन्त्र के उपदेशों से भरा पड़ा है।

प्राचीन भारत के धर्म ग्रन्थों में, प्रत्येक स्थान पर, राज्य में जनता की राय को ही सर्वोपरि माना गया है। महाभारत में उस प्रतिज्ञा का उल्लेख जो राजाओं को गद्दी पर बैठने के समय करनी पड़ती थी, इन शब्दों में किया गया है, "मैं मन, कर्म और वाणी से शपथ लेता हूँ कि सदा भूमि को ब्रह्म समझता हुआ, धर्म और दंड नीति के अनुसार, सदा प्रजारंजन के लिये कार्य करूँगा, और कभी अपनी मनमानी न करूँगा।" दंड नीति का अर्थ हमारे प्राचीन ग्रन्थों में संविधान से लिया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में लिखित संविधान होते थे और राजा उस संविधान की रक्षा के लये समस्त जनता के सम्मुख शपथ ग्रहण करते थे।

भारत में, पाणिनी के समय में, ईसा से लगभग ५०० वर्ष पूर्व, मन्त्री परिषद्, जैसी संस्था भी अपने पूरे अस्तित्व में आ चुकी थी। इस समय राजा मन्त्रियों के परामर्शानुसार ही कार्य करते थे। जनता राजाओं के चुनावों में भाग लेती थो। रामायण में दशरथ ने रामचन्द्र जी को सिंहासन पर बैठाने से पूर्व, जिस प्रकार अपनी प्रजा की राय ली थी, उसका विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है। इसके पश्चात् अशोक के शिलालेखों में इस बात का संकेत मिलता है कि मन्त्री परिषदों को राजाओं के प्रस्ताव मानने या न मानने का पूरा अधिकार था।

चुने हुए राजाओं की ही नहीं, प्राचीन भारत में गणराज्यों की भी प्रथा थी। बुद्ध के समय में भारतवर्ष के पूर्वी भाग में गण शासनों का रिवाज था। बुद्ध स्वयं एक गणराज्य के नागरिक थे। उनके पिता शुद्धोदन उस गण के संघपति थे, परन्तु जनता प्रेम के कारण, उन्हें राजा के नाम से सम्बोधित करती थी। शाक्य, मल्ल और लिच्छवी पूर्व के गण राज्य थे। पश्चिम में यौधेय, मालव, क्षुद्रक, शिवि, आदि सैकड़ों गणराज्य पंजाब, पश्चिमोत्तर प्रांत और सिंध में फैले हुए थे। ये राज्य सारे गण के नाम से अपने सिक्के ढालते थे और राज्य सभा भवन में इकट्ठे होकर मन्त्रणा करते थे। कृष्ण स्वयं अंधक वृष्णि गण राज्य के सदस्य थे। इन गणराज्यों में

अनुकूल और विरोधी दलों का भी संगठन होता था। इन दलों को वर्ग या द्वन्द कहते थे। गण सभाओं में प्रस्ताव रक्खे जाते थे जिन पर सदस्य गुप्त या प्रकट मत देते थे। मत के लिये प्राचीन राजनैतिक शब्द छन्द था, विधान सभा के लिए विशः, ह्विप के लिए गणपूरक तथा जनमत संग्रह के लिए छन्दाक, गुप्त मतदान के लिये 'शलाकाए' (Ballot Boxes) होती थीं। सभाओं में प्रस्ताव रखने, वाद विवाद करने तथा उन पर मत लिये जाने की प्रथा प्रायः वैसी ही थी जैसी वह आजकल पाई जाती है। इस प्रकार के गणराज्यों की परम्परा हमारे देश में ईस्वी पूर्व छटी शताब्दी से चौथी शताब्दी ईसवी (600 B. C. to 400 A. D.) तक रही। संसार के शायद ही किसी दूसरे देश में इतने लंबे काल तक गण राज्य प्रणाली की प्रथा विद्यमान रही हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे नव संविधान के विषय में यह कहना कि वह अभारतीय है, पूर्णतया असत्य है। ऐसा केवल वही लोग कहते हैं जिन्होंने भारत के प्राचीन इतिहास का पठन-पाठन एवं गूढ़ अध्ययन नहीं किया है। यह सच है कि हमारे विधान निर्माताओं ने दूसरे देशों के संविधानों से भी उनकी अच्छी बातें ग्रहण करने का प्रयत्न किया है और अपनी प्राचीन संस्थाओं को आधुनिक स्वरूप दे दिया है, परन्तु ऐसा करने में बुराई क्या है? क्या हम चाहते हैं कि हमारा देश संसार से अलग अपनी एक अलग दुनिया बनाए, हम पर दूसरा संस्कृतियों का प्रभाव न पड़े, हम दूसरे देशों से उनकी अच्छी बातें ग्रहण न करें, उनसे सम्पर्क न बढ़ाएँ। यदि हमारी ऐसी ही मनोवृत्ति रही, तो हम संसार में कभी आगे न बढ़ सकेंगे।

रही नये सिद्धान्तों के प्रतिपादन की बात तो जैसा डाक्टर अम्बेदकर ने कहा था "पिछले २०० वर्षों में संसार में इतने संविधान बनाये गये हैं तथा हर दृष्टिकोण से उनके प्रत्येक पहलू पर इतना विचार किया गया है कि संविधानों के विषय में किसी नये सिद्धान्त का प्रतिपादन करना अथवा कोई नये प्रकार का ऐसा संविधान बनाना जिसके विषय में कभी पहले नहीं सुना गया हो, न सम्भव ही है न आवश्यक ही।" यहाँ हम यह कह देना भी चाहते हैं कि एक ओर तो हमारे कुछ आलोचक यह कहते हैं कि भारत के

संविधान में कोई नई बात नहीं है और उसमें दास वृत्ति से केवल यूरुप व अमरीका के देशों के संविधानों की नकल की गई है और दूसरी ओर वह यह भी कहते हैं कि हमारा नया सविधान संसार में अनूठा है और जिस प्रकार का भारतीय सङ्घ उसके अन्तर्गत बनाने का प्रयत्न किया गया है, वैसा सङ्घ किसी दूसरे देश में देखने को नहीं मिलता। इस प्रकार की विरोधात्मक दलीलें एक दूसरे की काट कर देती हैं और वह केवल वही सिद्ध करती है कि हमारा नया संविधान इस दृष्टि के बनाया गया है कि जिसमें भारत की विशेष परिस्थिति के अनुसार सफलतापूर्वक कार्य करने की क्षमता हो और उसमें हमारी प्राचीन परम्परा एवं दूसरे देशों के संविधानों के सभी अच्छे गुण विद्यमान हों।

(३) गांधीवादी विधान—हमारे नव संविधान के विरुद्ध तीसरी दलील यह दी जाती है कि उसमें गाँधी जी के आदर्शों को पालन करने का कोई भी ध्यान नहीं रक्खा गया है।

उत्तर—इस आरोप का उत्तर देने से पहले हमें यह समझ लेना चाहिये कि कोई भी विधान राजनीतिक विचारधारा की मीमाँसा नहीं करता। वह केवल शासन व्यवस्था के मूल सिद्धान्तों को प्रकट करता है, यद्यपि उसकी व्यवस्था से यह प्रकट हो जाता है कि उसमें किस विचार धारा से काम लिया गया है। हमारे संविधान के गूढ़ अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा कि उसमें गाँधीय दर्शन एवं कार्यक्रम का रङ्ग रूप आसानी से देखा जा सकता है।

गाँधी जी के आदर्श क्या थे ? रचनात्मक कार्यक्रम, अछूत-प्रथा का अन्त खादी एवं ग्रामोद्योगों की प्रगति, हिंदू, मुसलिम एकता, सर्व-जनकल्याण, मद्य निषेध, राष्ट्रभाषा का प्रचार तथा विश्व शान्ति। संविधान के विभिन्न भागों विशेषकर उसके नियामक सिद्धान्तों का अध्ययन करने से पता चलेगा कि उसमें राष्ट्रपिता के इन उद्देश्यों को प्राप्त करने का समुचित प्रयत्न किया गया है।

जनता द्वारा रचनात्मक कार्य किये जाने के लिये कोई विधान बाध्य नहीं कर सकता, वह तो एक व्यक्तिगत भावना का विषय है। जहाँ तक अछूत प्रथा के अन्त करने का प्रश्न है वह हम देख ही चुके हैं कि नव संविधान

में उसे एक भीषण अपराध घोषित कर दिया गया है। खादी व ग्रामोद्योग की बात राज्य के नियामक सिद्धान्तों के अन्तर्गत आ गई है, क्योंकि ४३ से ५२ धाराओं में स्पष्ट कह दिया गया है कि राज्य व्यक्तिगत अथवा सहकारी आधार पर ग्राम्य क्षेत्रों में ग्रामोद्योग की उन्नति के लिये प्रयत्न करेगा। इसी प्रकार संयुक्त निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था द्वारा हिंदू-मुसलिम एकता का महत्व स्वीकार किया गया है। सर्वजन कल्याण के लिये हमारे संविधान में धर्म, जाति, लिंग व स्थिति का विचार न रखते हुए सब स्त्री पुरुषों को बराबर के मूल अधिकार प्रदान किये गये हैं। नियामक सिद्धान्त सम्बंधी ३८ वीं धारा में कहा गया है कि राज्य सभी नागरिकों के लिये जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधनों की व्यवस्था करेगा एवं आर्थिक व्यवस्था का संचालन इस विधि से करेगा कि राष्ट्रीय संपत्ति एवं साधनों का वितरण जन साधारण के हित में हो। इसी प्रकार संविधान की विभिन्न धाराओं में, बेकारी, बुढ़ापे, बीमारी आदि की दशा में सरकारी सहायता का अधिकार, बालकों की निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, स्वास्थ्य सम्बन्धी अधिकार, मद्य एवं मादक वस्तुओं के निषेध, गौरक्षा, एक राष्ट्रभाषा, एवं विश्व शांति की पुष्टि के लिये न्याय तथा सम्मानपूर्ण सम्बन्धों की अक्षुण्णता बनाये रखने के लिये विशेष व्यवस्था की गई है। यह सभी सिद्धांत गांधी जी को अत्यन्त प्रिय थे और इनकी स्पष्ट झलक हमारे संविधान में देखने को मिलती है।

मौलिक अधिकारों पर कुठाराघात करने वाला विधान—बहुत से नेताओं का कहना है कि भारतीय संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का वर्णन एक ढकोसला है। उन्हें जो एक हाथ से दिया गया है वही दूसरे हाथ से छीन लिया गया है।

उत्तर—इन आलोचकों का आशय मौलिक अधिकारों में वर्णित उन शर्तों से है जिनके द्वारा कहा गया है कि विशेष परिस्थितियों में नागरिकों के कई अधिकार छीने भी जा सकेंगे। परन्तु यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि संसार के किसी भी देश में नागरिकों को पूर्ण रूप से मन चाहे काम करने की स्वतन्त्रता नहीं दी जाती। अमेरिका में भी जहाँ विधान में मौलिक अधिकारों का वर्णन है, सुप्रीम कोर्ट द्वारा ऐसे फैसले दिये गये हैं जिनके

अन्तर्गत नागरिक अधिकारों की व्याख्या उसी प्रकार की गई है जैसी भारतीय संविधान में।

यह सच है कि अमरीका के संविधान में नागरिकों के जिन मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है उन पर किसी प्रकार की वैधानिक रोक नहीं लगाई गई है, परन्तु वहाँ पर सुप्रीम कोर्ट द्वारा एक दूसरा सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है जिसे अंग्रेजी में (डाक्ट्रिन आफ दी पुलिस पावर आफ दी स्टेट) अर्थात् राज्य की पुलिस शक्ति" का सिद्धांत कहते हैं। इस सिद्धांत के अन्तर्गत अमरीका की उच्चतम न्यायालय ने कहा है नागरिकों को अनियन्त्रित अधिकार नहीं दिये जा सकते। राज्य की रक्षा व जनता के हित में सरकार को अधिकार है कि वह नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर रोक लगा सके।

मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में, अमरीका व भारत के संविधानों में केवल इतना अंतर है कि एक देश में सुप्रीम कोर्ट को अधिकार है कि वह इस बात का निश्चय करे कि नागरिकों के अधिकारों पर किन दशाओं में रोक लगाना उचित है, और दूसरे देश में विधान द्वारा ही इस बात का निश्चय कर दिया गया है कि उन अधिकारों पर क्या क्या रोक लगाई जाय। एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि अमरीका के संविधान में सुप्रीम कोर्ट की शक्ति अधिक विस्तृत रक्खी गई है और उसे इस बात का अधिकार दिया गया है कि वह कांग्रस द्वारा बनाये गये किसी असंवैधानिक कानून को रद्द कर सके। भारत में इसके विपरीत 'विधान मंडल' की शक्ति को सर्वोपरि रक्खा गया है, और जब तक वह संविधान के अन्दर रह कर कार्य करती है, देश की उच्चतम न्यायालय उन कानूनों को रद्द नहीं कर सकती।

पिछले दिनों मौलिक अधिकार सम्बन्धी श्री गोपालन के एक मुकदमे में हमारी सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय किया था कि संसद को संविधान के अन्तर्गत ऐसे कानून बनाने का अधिकार है जिनसे नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर रोक लगाई जा सके। इसी दृष्टि से उनके भारत सरकार के सन् १९४९ के बिना मुकदमे नजरबन्दी कानून वैध घोषित किया है। इस कानून की केवल वही धारा अवैध घोषित की गई है जिसके द्वारा न्यायालयों को इस बात

का अधिकार नहीं दिया गया था कि वह उन कारणों की छानबीन कर सके जिनके कारण किसी व्यक्ति को नजरबन्द करना आवश्यक समझा गया।

अन्तिम दशा में, हमें यह भली भाँति समझ लेना चाहिये कि, किसी देश में भी नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा, न्यायालय व संविधान द्वारा नहीं, वरन् केवल एक सचेत, जाग्रत व शिक्षित लोकमत द्वारा ही की जा सकती है। यदि लोकमत सचेत न हुआ तो संविधान चाहे जितना अच्छा हो, वह भी बदला जा सकता है और इस प्रकार के कानून बनाये जा सकते है जिनसे नागरिकों के मौलिक अधिकारों का कोई अर्थ ही शेष न रह जाय। और यदि किसी देश में जनता जागरूक है तो संविधान चाहे जितना निकम्मा हो, सरकार को इतना साहस नहीं हो सकता कि वह नागरिकों के अधिकारों के साथ किसी प्रकार की खिलवाड़ कर सके। अपने मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये इसलिये हमें चाहिये कि विधान में त्रुटि निकालने के स्थान पर हम जनता में जाग्रति उत्पन्न करें और लोकमत को सचेत व सुदृढ़ बनायें। हम इस दशा में संतोषजनक प्रगति कर रहे हैं, यह इस बात से ज्ञात होता है कि मई सन् १९५१ में जब संविधान में प्रथम संशोधन किया गया तो भारतीय जनता ने इस बात का प्रयत्न किया कि संशोधन उसके अधिकारों को छीनने वाले न हों।

(५) राज्यों की सत्ता व उनके अधिकारों को हरने वाला विधान—हमारे नव संविधान के विरुद्ध पाँचवाँ आरोप यह लगाया जाता है कि उसके अन्तर्गत राज्यों की सरकारों के अधिकारों छीनकर, उनकी स्थिति प्रायः वैसी ही कर दी गई है जैसी स्थानीय संस्थाओं (म्युनिसपल इंन्सटीट्यूशन्स्) की। आलोचकों का कहना है कि संघीय विधान के अन्तर्गत संघ में सम्मिलित होने वाली इकाइयों के अधिकारों की रक्षा की जानी चाहिये। संघ को इस बात का अधिकार नहीं होना चाहिये कि वह राज्यों के आंतरिक शासन प्रबंध में हस्तक्षेप कर सके। संघीय विधान केवल इसी दृष्टि से बनाया जाता है कि उसके अन्तर्गत कुछ ऐसे विषयों का शासन प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार को सौंपा जाय जिनमें उस संघ में सम्मिलित होने वालों सभी इकाइयाँ समान रूप से रुचि रखती हों,और शासन के शेष सभी विषय राज्यों की सरकारों के पास

सुरक्षित रहें। भारतीय विधान में संघ शासन के इन मूल सिद्धांतों का ध्यान न रख कर, एक इस प्रकार की सरकार का सङ्गठन किया गया है जो केवल नाम से संघीय है, अन्यथा उसमें सभी लक्षण एकात्मक सरकार जैसे हैं।

उत्तर—इस आरोप के उत्तर में हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि हमारे विधान निर्माताओं ने इस बात की परवाह न करते हुये कि हमारे देश का संविधान पूर्ण रूप से संघीय विधानों के लक्षणों को सन्तुष्ट करता है अथवा नहीं, इस बात का प्रयत्न किया है कि हमारे देश के लिये एक ऐसे विधान की रचना हो जो भारत की विशेष परिस्थितियों के अनुकूल हो एवं जिसमें हमारे देश में व्याप्त प्रांतीयता एवं प्रथककरण की भावनाओं का अंत करने की क्षमता हो। हमारे देश का प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत की स्वाधीनता को केवल उस समय खतरा उत्पन्न हुआ है जब हमारे देश में केन्द्रीय सत्ता की शक्ति कम हो गई है। इसलिये हमारे नये विधान में इस बात का विचार रक्खा गया है कि जहाँ राज्यों की सरकारों को अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र रह कर कार्य करने की आज्ञा हो, वहाँ वह कोई ऐसा काम न कर सकें जिससे समस्त का अहित हो।

अनुचित केन्द्रीयकरण के आरोप का उत्तर देते हुए डाक्टर अंबेदकर ने संविधान सभा में कहा था, "संघीय विधानों की सबसे बड़ी पहिचान यह है कि उनके आधीन संघ सरकार तथा उनकी इकाइयों के बीच अधिकारों का विभाजन होना चाहिये। हमारे विधान में यह विभाजन पूर्ण रूप से विद्यमान है। इस अधिकार विभाजन के आधीन संघ एवं राज्यों की सरकार अपने अपने क्षेत्र में काम करने के लिये स्वतन्त्र होंगी। रही विशेष परिस्थितियों की बात तो ऐसे समय में सारे देश का ही हित संघ सरकार द्वारा काम किये जाने में होगा, हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि संघ सरकार सदा संसद के प्रति उत्तरदायी होगी, और लोक सभा तथा राज्य-परिषद् में केवल वही सदस्य भाग ले सकेंगे जो राज्यों के चुने हुये प्रतिनिधि होंगे। ऐसे सदस्य कभी अपने राज्य के हित के विरुद्ध काम नहीं करेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आलोचकों के इस आरोप में अधिक बल नहीं है। आज हमारे देश में एक ऐसे शासन की आवश्यकता है जो सारे राष्ट्र

को एकता के सूत्र में बाँध कर हमारी नव प्राप्त स्वतन्त्रता को इन्द्र के वज्र के समान सुदृढ़ बना सके।

(६) फासिस्टवादी विधान—उपरोक्त आरोप से मिलता-जुलता एक दूसरा आरोप हमारे विधान के विरुद्ध यह लगाया जाता है कि उसके आधीन समस्त राज्य सत्ता केन्द्र में ही एकत्रित कर दी गई है, और भारत की प्राचीन परंपरा के अनुसार उसका आधार ग्राम पंचायतें नहीं रक्खी गई हैं। इसी कारण कुछ आलोचकों का कहना है कि हमारा नया विधान हमें 'फासिस्टवाद की ओर ले जाता है। संविधान में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह एक संकटकालीन स्थिति की घोषणा करके, देश का समस्त शासन, संघ सरकार के आधीन ले सकेंगे और फिर केन्द्रीय सरकार उसी प्रकार कार्य करेगी जैसा कोई तानाशाह किया करता है।

उत्तर—इस आरोप का उत्तर हम पहिले ही दे चुके हैं। यहाँ केवल यह बतला देना पर्याप्त होगा कि आलोचकों का यह कहना कि नव संविधान के अन्तर्गत ग्राम्य पंचायतों की उपेक्षा की गई है अथवा उनके संगठन के लिये किसी प्रकार का प्रबन्ध नहीं किया गया है, ठीक नहीं है। हमारे संविधान के नियामक सिद्धान्तों में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारतीय सघ के अंतर्गत प्रत्येक राज्य अपने क्षेत्र में ग्राम पंचायतों के सङ्गठन के लिये शीघ्राति-शीघ्र प्रयत्न करेगा। हमारे देश के कितने ही प्रान्तों में इस प्रकार की सहस्रों पंचायतें संगठित की जा चुकी हैं और उन सब को वही अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं जो प्राचीन भारत में ग्राम पंचायतों को प्राप्त थे। दूसरे प्रांतों में भी इस दिशा में अत्यन्त शीघ्रता के साथ काम किया जा रहा है।

(७) अनमनीय संविधान—एक और आलोचना विधान के विरुद्ध यह की जाती है कि इनमें फैलाव विकास व परिवर्तन के लिये अधिक स्थान नहीं है। इस विधान को कानूनीपन के दाँव पेचों से भरपूर कर दिया गया है। यह विधान स्पष्ट नहीं है और इसे भारत की अशिक्षित जनता भली प्रकार नहीं समझ सकती।

उत्तर—किसी देश का विधान एक अत्यन्त पावन तथा पवित्र ग्रन्थ होता

है। उसी के स्वरूप पर जनता के अधिकार आधारित रहते हैं। कोई देश भी, इसलिये अपने संविधान को, एक बार अत्यन्त सोच समझ कर बना लेने के पश्चात् यह नहीं चाहता कि वह आसानी से बदला जा सके। भारत के विधान को भी केवल इसी दृष्टि से अपरिवर्तनशील (रिजिड) रक्खा गया है परन्तु उसमें कितनी ही ऐसी धाराएँ हैं जो बहुमत से बदली जा सकेंगी। दूसरी धाराओं के परिवर्तन के लिये केवल दो-तिहाई बहुमत का होना आवश्यक होगा। रही कानूनीपन की बात तो इस प्रकार के महत्वपूर्ण 'पत्र' में यह दोष सर्वत्र ही पाया जाता है। संविधान सरकार का स्वरूप निश्चित करने के लिये होता है। उसके सिद्धान्त आम जनता द्वारा आसानी से समझे जा सकते हैं। जहाँ तक उसकी धाराओं का सम्बन्ध है वह विशेषज्ञों के लिये बनाई जाती हैं। जन साधारण के लिये वह विशेष महत्व नहीं रखतीं।

(८) संकुचित प्रतिनिधित्व के आधार पर बनाया गया विधान—हमारे देश के समाजवादी व साम्यवादी दलों द्वारा यह बात प्रायः बहुत बार दोहराकर कही जाती है कि हमारा विधान एक ऐसी संविधान सभा द्वारा नहीं बनाया गया जिसका चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ हो। संविधान सभा के चुनाव प्रान्तीय विधान सभाओं द्वारा किये गये थे, जिनका चुनाव देश की समस्त बालिग जनता द्वारा नहीं वरन् केवल उन्हीं लोगों द्वारा किया गया था जिन्हें सन् १९३५ के विधान के आधीन राय देने का अधिकार प्राप्त था। ऐसे लोगों की संख्या १३ प्रतिशत से अधिक नहीं थी। इन आलोचकों का कहना है कि इसी सीमित मत प्रदान प्रथा के आधीन उन लोगों को संविधान सभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया जो भारत की नग्न तथा भूख और प्यास से पीड़ित जनता, किसान और मजदूरों के प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते थे, स्वभावतः इन लोगों ने अपने स्वार्थ लाभ के लिये इस प्रकार का विधान बनाया जिसके आधीन वह गरीब जनता का शोषण जारी रख सकते थे। उदाहरणार्थ, इन लोगों का कहना है, कि हमारे नये विधान में व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्राप्ति पर किसी प्रकार की रोक नहीं लगाई गई है, देश के बड़े बड़े कारखानों के ऊपर राज्य के स्वामित्व का प्रबन्ध नहीं किया गया है, मजदूरों को ट्रेड यूनियन बनाने, हड़ताल करने तथा अपने अधिकारों

की रक्षा के लिये आन्दोलन करने का अनियन्त्रित अधिकार नहीं दिया गया है, इत्यादि।

उत्तर—उपरोक्त आरोप में समुचित सचाई है। परन्तु आलोचक यह भूल जाते हैं कि जिस परिस्थिति में हमारे देश की विधान सभा का संगठन हुआ उस दशा में वयस्क मताधिकार के आधार पर उसका संगठन असम्भव नहीं तो अव्यवहारिक अवश्य था। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि किसी भी चुनाव के आधीन संविधान सभा में कांग्रेस दल को ही बहुमत प्राप्त होता और फिर उस दशा में संविधान का वही स्वरूप होता जो उसका आज है। रही समाजवाद की बात, तो भारत की वर्तमान आर्थिक परिस्थिति, इस सिद्धांत के प्रतिफलन के अनुकूल नहीं है। आज हमारा देश भीषण आर्थिक संकट के मध्य में से गुजर रहा है। ऐसी अवस्था में राष्ट्रीयकरण की माँग एक आकर्षक नारे के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हाँ, परिस्थिति सुधरने पर जनता को पूर्ण अधिकार होगा कि वह अपने संविधान में उचित परिवर्तन कर सके। हमारा संविधान किसी समय भी दो-तिहाई बहुमत से बदला जा सकता है। यदि आने वाले आम चुनावों में समाजवादी दल को विजय प्राप्त होती है तो उसे पूर्ण अधिकार होगा कि वह अपने सिद्धांत के अनुसार संविधान में परिवर्तन कर ले।

(९) राष्ट्र मंडल के स्वरूप से प्रभावित हमारा विधान—अंत में हमारे नव संविधान के विरुद्ध सबसे बड़ी दलील यह दी जाती है कि यह विधान एक स्वतन्त्र देश की स्वतन्त्र जाति का विधान नहीं है। वह एक ऐसे देश का विधान है जो राष्ट्र मंडल का सदस्य है, और इस कारण वह एक पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र देश का विधान नहीं है। हमारे देश की सरकार ने राष्ट्र मंडल का सदस्य रहना स्वीकार करके जनता के साथ विश्वासघात किया है, कारण, सन् १९३० के पश्चात् से कांग्रेस सदा यह कहती रही थी कि वह कभी औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थिति स्वीकार नहीं करेगी।

उत्तर—उपरोक्त आरोप का विस्तृत विश्लेषण हम इसी पुस्तक के तीसरे अध्याय में कर चुके हैं। यहाँ हम केवल इतना ही दुहरा देना उचित समझते

हैं कि, भारत राष्ट्र मंडल का सदस्य रहे, इसके लिये हमारा देश इतना इच्छुक नहीं था जितना स्वयं राष्ट्र मंडल के दूसरे देश, और ऐसा करने के लिये उन्होंने भारत की प्रत्येक शर्त मानी और स्वयं राष्ट्र मंडल का स्वरूप ही बदल लिया। आज राष्ट्र मंडल का प्रत्येक देश आंतरिक व बाह्य शासन प्रबन्ध की दृष्टि से पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है। सम्राट के प्रति राजभक्ति का प्रश्न भी अब नहीं उठता। सम्राट राष्ट्रमंडल का अब केवल सांकेतिक रूप में अध्यक्ष है। वह ब्रिटिश साम्राज्य का प्रथम नागरिक है, परन्तु भारतीय सरकार का अध्यक्ष नहीं। हमारी सरकार का अध्यक्ष जनता का अपना चुना हुआ प्रतिनिधि राष्ट्रपति है। राष्ट्रमंडल की सदस्यता से भारत के गणतन्त्रीय स्वरूप अथवा उसकी सार्वभौम सत्ता पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता। हमारे देश की जनता प्रत्येक विषय में स्वयं ही अपना मार्ग निर्धारित करती है। वह किसी प्रकार भी ब्रिटेन अथवा राष्ट्रमंडल के दूसरे सदस्यों की विदेश नीति को पालन करने के लिये बाध्य नहीं।

निष्कर्ष—इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे विधान निर्माताओं ने हमारे देश के लिये एक ऐसा संविधान बनाया है जिस पर हम गर्व कर सकते हैं। यह सच है कि इस संविधान के कुछ अंश ऐसे अवश्य हैं जिन्हें अत्यंत असंतोष की दृष्टि से देखा गया है। परन्तु भारत की वर्तमान राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थिति में, स्वभावतः इससे अच्छा विधान नहीं हो सकता था। आज हमारे देश की सबसे बड़ी आवश्यकता अपनी स्वतन्त्रता को दृढ़ बनाने तथा आर्थिक सङ्कट को दूर करने की है। ऐसी दशा में यदि हमारे विधान निर्माता हमारे देश के लिये आदर्श विधान नहीं बना सके हैं, तो इसके लिये उन्हें दोषी ठहराना उचित नहीं। इस प्रकार की व्यवस्था का उत्तरदायित्व यदि किसी पर है तो वह हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति है। हमें आशा है, जैसे जैसे देश की जनता में शिक्षा का प्रसार होगा तथा वह अपने कर्तव्यों को भली प्रकार समझने लगेगी, वैसे वैसे हमारे वर्तमान संविधान की असंतोषप्रद धाराएँ बदल दी जायेंगी और हम एक ऐसे राष्ट्र के नागरिक कहे जाने में गर्व का अनुभव करेंगे, जिसका संविधान संसार का सबसे सुन्दर तथा आदर्श विधान होगा।

योग्यता प्रश्न

(१) संघ संविधान के विरुद्ध क्या-क्या आलोचनाएँ की जाती हैं ? इन आलोचनाओं में कितना सार है ?

(२) क्या यह सच है कि हमारा नव संविधान अगांधीवादी और अभारतीय है ?

(३) नव संविधान में राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी रह गई है। क्या यह आरोप सच है ?

(४) नव संविधान में दूसरे देशों के संविधानों की नक़ल होती गई है और कोई नई परम्परा कायम करने का प्रयत्न नहीं किया गया। इस कथन में कितनी सचाई है ?

(५) "नया विधान संसार का सबसे जटिल, लम्बा तथा निकम्मा विधान है।" क्या यह कथन ठीक है ?

अध्याय १३

उत्तर प्रदेश का शासन प्रबन्ध

भारत के सभी प्रान्तों से हमारा प्रान्त अधिक बड़ा है। इसका क्षेत्रफल १,१२,५२३ वर्गमील और जनसंख्या ६,३२,००,००० है। रामपुर, बनारस तथा टेहरी गढ़वाल रियासतों को भी अब हमारे प्रान्तों में ही विलीन कर दिया गया है। हमारा प्रान्त इतना बड़ा है कि योरुप के कई छोटे-छोटे देश, जैसे स्विटजरलैंड, बेल्जियम, हालैंड, लुक्जमबर्ग, ऐल्बानिया, ऐस्टोनियाँ, इत्यादि इसमें समा सकते हैं। विदित है कि इतने बड़े प्रान्त (जिसे नये संविधान में राज्य कहा गया है) का शासन राजधानी में बैठकर किसी एक राज्यपाल अथवा मंत्रिमण्डल द्वारा नहीं चलाया जा सकता। इसलिये शासन की सुविधा की दृष्टि से प्रत्येक प्रांत कुछ डिविजनों, जिलों, सब-डिविजनों, तहसीलों, परगनों तथा गाँवों में बाँट दिया जाता है। इनमें से प्रत्येक भाग का एक अलग अफसर होता है जिसे कमिश्नर, कलक्टर, डिप्टी कलक्टर, तहसीलदार, कानूनगो तथा पटवारी कहा जाता है। मंत्रियों के नीचे जो और विभाग होते हैं जैसे कृषि विभाग, सिंचाई विभाग, सहकारी विभाग, इमारती विभाग, राजस्व विभाग, शिक्षा विभाग, उद्योग विभाग, श्रम विभाग, इत्यादि उनका प्रबन्ध उस मुहकमे के नीचे अलग-अलग अफसरों द्वारा किया जाता है।

सरकारी विभाग

प्रत्येक सरकारी विभाग का सर्वोच्च अधिकारी एक मंत्री होता है जो प्रान्तीय धारा सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। मंत्री की सहायता के लिये विभाग में एक सेक्रेटरी होता है, जिसके नीचे कुछ डिप्टी तथा अंडर सेक्रेटरी

काम करते हैं। उनके नीचे एक पूरा दफ्तर होता है जिसमें क्लर्क, असिस्टेंट तथा सुपरिंटेंडेंट होते हैं। मंत्री का काम सरकार की नीति का निश्चय करना तथा अपने विभाग की उन्नति के लिये योजनाएँ बनाना होता है। विभाग के दिन प्रति दिन का काम, सेक्रेटरी तथा उसके नीचे काम करने वाले सरकारी अफसर करते हैं।

विभाग का सबसे बड़ा दफ्तर तो राजधानी में होता है, परन्तु उसके कार्यवाह अफसर जिलों, तहसीलों तथा गाँवों में रह कर अपने-अपने काम की देखभाल करते हैं। यह अफसर अपने विभाग के मंत्री तथा सेक्रेटरी के आदेशों का पालन करते हैं; साथ ही वह अपने काम का विवरण जिले के कलक्टर तथा डिविजन के कमिश्नर को भी देते हैं। इस प्रकार इन अफसरों की दोहरी जिम्मेदारी होती है—एक अपने महकमे के प्रति और दूसरे कलक्टर या कमिश्नर के प्रति। कलक्टर और कमिश्नर अपने-अपने क्षेत्र में प्रान्तीय सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह शासन के सभी महकमों की देखभाल करते हैं जिससे राज्य का प्रबन्ध ठीक प्रकार से चल सके और जनता अपना जीवन सुख और चैन के साथ व्यतीत कर सके।

साधारण शासन प्रबन्ध

कमिश्नर

हमारे प्रान्त में दस कमिश्नरियाँ हैं। प्रत्येक कमिश्नरी का औसतन क्षेत्रफल ११,००० वर्गमील है तथा जनसंख्या ६० लाख। कुमाऊँ को छोड़कर शेष सभी डिवीजनों में कमिश्नर डिविजन का प्रधान अफसर होता है। कुमाऊँ डिविजन का शासन नैनीताल के डिप्टी कमिश्नर के हाथ में है। कमिश्नर का मुख्य काम जिले के कलक्टर तथा प्रान्तीय मंत्रियों के बीच एक कड़ी का काम करना होता है। प्रान्तीय सरकार की कभी आज्ञाएँ कलक्टरों के पास कमिश्नरों के द्वारा भेजी जाती हैं। कमिश्नर अपने नीचे सभी जिलाधीशों के काम की देखभाल करता है। उसका मुख्य काम मालगुजारी तथा भूमि सम्बन्धी होता है। वह अपने आधीन अधिकारियों की मालगुजारी सम्बन्धी निर्णयों की अपील सुनता है तथा मालगुजारी की वसूली

की देखभाल करता है। जरूरत पड़ने पर वह मालगुजारी की छूट भी दे सकता है तथा उसकी वसूली रोक सकता है।

कुछ लोगों का विचार है कि कमिश्नर का पद व्यर्थ का अनावश्यक पद है। प्रांतीय सरकार सीधा कलक्टरों के साथ अपना सम्बन्ध रख सकती है। मद्रास प्रांत के अन्दर कमिश्नर का पद नहीं होता, फिर भी वहाँ शासन अत्यन्त कुशलता के साथ चलता है। आजकल जब शासन का कार्य चलाने के लिये अनुभवी अधिकारियों की अत्यन्त कमी है तो इस पद के लिये योग्य, तथा पुराने सुलझे हुए अधिकारियों की नियुक्ति करना न्यायसंगत नहीं। इसलिये हमारे प्रांत की सरकार इस बात का विचार कर रही है कि कमिश्नरों के पद को रक्खा जाय अथवा नहीं। अन्तिम निश्चय होने तक सरकार ने कमिश्नरों की संख्या १० से घटा कर ५ कर दी है।

जिलाधीश (कलक्टर)

प्रत्येक कमिश्नरी में कुछ जिले होते हैं। भिन्न भिन्न कमिश्नरियों में जिलों की संख्या अलग अलग है। उदाहरणार्थ, लखनऊ कमिश्नरी में ६ जिले हैं, मेरठ में ५ और गोरखपुर में केवल ३। हमारे प्रांत में कुल जिलों की संख्या ५१ है। इनमें वह जिले भी शामिल हैं जो रामपुर, बनारस तथा टेहरी-गढ़-वाल रियासतों को मिलाने से बनाये गये हैं। जिले के सर्वोच्च अधिकारी को जिलाधीश या कलक्टर कहते हैं। कुमाऊँ में उसे डिप्टी कमिश्नर कहा जाता है। कुछ काल पहले तक यह अफसर इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य होते थे। कुछ प्रांतीय सिविल सर्विस के लोगों को भी बहुत अनुभव हो जाने के पश्चात् कलक्टर बनने का अवसर दे दिया जाता था। परन्तु अब इंडियन सिविल सर्विस की भर्ती बन्द कर दी गई है, कारण इस सर्विस का चुनाव भारत मंत्री द्वारा किया जाता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ऐसा करना सम्भव नहीं था इसलिये उसके स्थान पर 'इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस' का आयोजन किया गया है। इसी सर्विस के व्यक्ति आजकल जिलों के कलक्टर बनते हैं।

कलक्टर अपने जिले में सरकार का प्रतिनिधि रूप होता है। शासन प्रबन्ध की दक्षता उसी के कार्य पर निर्भर रहती है। जिले के अंतर्गत सब

प्रकार के कामों की देखभाल करना उसी का काम होता है। उसे कई काम करने पड़ते हैं जैसे मालगुजारी वसूल करना, जिले में शांति और व्यवस्था कायम रखना, जिले की जेलों, शिक्षा संस्थाओं, हस्पतालों, सड़कों, इमारतों, स्थानीय संस्थाओं और ग्राम पंचायतों की देखभाल करना इत्यादि। मुख्य रूप से हम उसके अधिकारों को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

(१) मालगुजारी सम्बन्धी अधिकार—जिले की मालगुजारी वसूल करना कलक्टर का मुख्य काम होता है। इसी दृष्टि से उसे भूमि संबधी सभी कागजात सँभाल कर रखने पड़ते हैं। जिले के सारे पटवारी, कानूनगो, नायब तहसीलदार तथा तहसीलदार उसकी इस काम में सहायता करते हैं। जिले का खजाना भी उसी के आधीन रहता है।

(२) शांति और व्यवस्था सम्बन्धी अधिकार—जिले में शांति और व्यवस्था कायम रखना कलक्टर का दूसरा मुख्य काम है। इस कार्य की दृष्टि से जिले के सारे पुलिस कर्मचारी, पुलिस सुपरिन्टैंडेंट, डिप्टी सुपरिन्टैंडेंट, थानेदार इत्यादि उसी के नीचे काम करते हैं। राजनीतिक दृष्टि से भी जिले में किसी प्रकार की गड़बड़ी न होने देना उसी का काम है। सभा, जुलूस, समाचार पत्रों, राजनीतिक दलों इत्यादि की देखभाल करना—इसलिये उसके कार्य का आवश्यक अंग है। जिले में किसी कलक्टर की सफलता इसी बात से जानी जाती है कि वह शांति बनाये रखने में कहाँ तक सफल होता है। समाचार पत्रों पर दृष्टि रखना, जनता को अपने पक्ष में बनाना, सरकार की आज्ञाओं को जनता तक पहुँचाना तथा सारे जिले का दौरा करना उसका मुख्य काम होता है।

(३) न्याय सम्बन्धी अधिकार—कलक्टर न्याय की दृष्टि से प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट होता है। बहुत से फौजदारी मुकदमें उसी की अदालत में पेश किये जाते हैं। उसे अपराधियों को दो वर्ष तक की सजा तथा १,००० रुपया जुर्माना करने का अधिकार होता है। वह माल के मुकदमों में अपने आधीन डिप्टी कलक्टरों के निर्णयों की अपील सुनता है। कुछ लोग कलक्टरों के इन न्याय सम्बन्धी अधिकारों की आलोचना करते हैं, कारण वह कहते हैं कि शासन तथा न्याय सम्बन्धी अधिकार एक ही व्यक्ति के हाथ में रखने से

नागरिकों के अधिकारों की रक्षा नहीं होती। नये संविधान में इसीलिए राज्य के नियामक सिद्धांतों के अन्तर्गत सरकारों को यह आदेश दिया गया है कि वह शीघ्र से शीघ्र शासन तथा न्याय सम्बन्धी कार्यों को अलग-अलग कर दें। इस सिद्धांत को कार्यान्वित करने के लिए हमारे प्रांत में ज्यूडिशल मजिस्ट्रेट के पद की व्यवस्था की गई है। यह मजिस्ट्रेट फौजदारी मुक़दमों का निर्णय करते हैं। उनका शासन प्रबन्ध से सीधा कोई सम्बन्ध नहीं होता।

(४) निरीक्षण सम्बन्धी अधिकार—जिले के भिन्न भिन्न विभागों का निरीक्षण करना कलक्टर का एक और आवश्यक कार्य है। वास्तव में, जैसा पहिले बताया जा चुका है, कलक्टर वह इकाई है जहाँ पर आकर जिले की सारी शक्तियाँ केन्द्रित होती हैं। वह शासन की एकता बनाये रखने में सहायक सिद्ध होता है। जिले के सभी अफसर कलक्टर को आकर अपने महकमों की बातें बताते हैं तथा उसी के द्वारा प्रांतीय सरकार तक अपनी माँगें पेश करते हैं। वह जिले के प्रत्येक विभाग के कर्मचारियों जैसे जेलर, सिविल सर्जन, एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर, हेल्थ अफसर, इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स, पुलिस सुपरिन्टेंडेंट, म्युनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन इत्यादि के काम की देखभाल करता है। अंग्रेजों के काल में कलक्टर को जनता अपना माँ-बाप समझती थी। वह ब्रिटिश सत्ता का प्रतीक था। जिले का शासन वह जनता की भलाई की दृष्टि से नहीं वरन् अपने इलाके में शांति व व्यवस्था बनाये रखने की दृष्टि से करता था। यदि ऐसा करने में उसे अनुचित उपायों का प्रयोग भी करना पड़ता था तो वह ऐसा करने से नहीं हिचकिचाता था। वह कमिश्नर और कमिश्नर के जरिये गवर्नर के प्रति उत्तरदायी होता था। वह अपने आप को जनता का सेवक नहीं वरन् उसका स्वामी समझता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से यह स्थिति बिलकुल बदल गई है। कलक्टर अब उस मन्त्री के आधीन काम करता है जो अपने आप को जनता का सबसे बड़ा सेवक समझता है। कलक्टरों को इसलिए आदेश दिया जाता है कि वह जिले की जनता के साथ अधिक से अधिक सम्पर्क बढ़ायें, हर प्रकार के लोगों से मिलें, उनकी मुसीबत तथा दुख दर्द की कहानी सुनें तथा उनकी भलाई के लिये नई नई योजनाएँ बनायें।

डिप्टी कलक्टर

जिला सब-डिविजनों में बँटा रहता है। प्रत्येक सब-डिविजन का अफसर एक डिप्टी कलक्टर होता है। वह प्रांतीय सिविल सर्विस का सदस्य होता है। अपने सब-डिविजन में रह कर डिप्टी कलक्टर वह सभी काम करता है जो कलक्टर को जिले में करने पड़ते हैं। उसे प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के अधिकार भी प्राप्त होते हैं और उसका मुख्य काम मुकदमों की सुनवाई करना तथा अपने सब-डिविजन में शांति और व्यवस्था कायम करना होता है। उसे मालगुजारी के प्रबन्ध की देखभाल नहीं करनी पड़ती।

तहसीलदार

एक सब-डिविजन में तीन या चार तहसीलें होती हैं। प्रत्येक तहसील का अफसर एक तहसीलदार होता है। उसके भी दो प्रकार के काम होते हैं—एक मालगुजारी सम्बन्धी और दूसरे शासन सम्बन्धी। मालगुजारी की वसूली के लिए उसके नीचे एक नायब तहसीलदार, एक सदर कानूनगो, कुछ दूसरे कानूनगो तथा बहुत से पटवारी काम करते हैं। यही अफसर मालगुज़ारी तथा जमीनों की मिल्कियत का ब्यौरा रखते हैं। तहसीलदार एक द्वितीय श्रेणी का मजिस्ट्रेट भी होता है। वह छोटे फौजदारी तथा माल के मुकदमों का फैसला करता है। शासन प्रबन्ध की दृष्टि से तहसीलदार के नीचे तहसील के सभी थानों के थानेदार, हेड कान्सटेबिल, सिपाही तथा गाँवों के चौकीदार, आकर अपने काम का ब्यौरा देते हैं। तहसीलदार, कलक्टर तथा डिप्टी कलक्टर दोनों के प्रति जिम्मेदार होता है।

पुलिस का प्रबंध

जिले में शांति तथा व्यवस्था कायम रखने के लिये एक पुलिस होती है जिसका मुख्य अधिकारी एक पुलिस सुपरिन्टेंडेंट होता है। उसके नीचे दो प्रकार की पुलिस काम करती है :—(१) खुफिया पुलिस और (२) साधारण पुलिस। खुफिया पुलिस के लोग गुप्त रहकर संगीन जुर्मों की छानबीन करते हैं। बड़े बड़े षड़यन्त्रों तथा राजनीतिक अभियोगों का भी वही पता लगाते हैं। दोनों प्रकार की पुलिस के अलग अलग सब-इन्स्पेक्टर, इन्स्पेक्टर तथा

डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट पुलिस होते हैं। यह सभी अफसर सुपरिन्टेंडेंट पुलिस तथा जिले के कलक्टर को अपने काम का ब्यौरा देते हैं। पुलिस के महकमे का सब से बड़ा अधिकारी होम मिनिस्टर कहलाता है। उसके नीचे एक इन्स्पेक्टर जनरल आफ पुलिस तथा कुछ डिप्टी तथा असिस्टैंट इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस काम करते हैं। जिले का पुलिस सुपरिन्टेंडेंट इन्हीं अफसरों के प्रति उत्तरदायी होता है।

पुलिस की दृष्टि से प्रत्येक जिला कुछ सर्किलों, थानों तथा चौकियों में बटा हुआ होता है। सर्किल का अफसर एक सर्किल इन्स्पेक्टर, थाने का अफसर एक थानेदार तथा चौकी का अफसर हवलदार कहलाता है। कुछ बड़े बड़े नगरों में कोतवालियाँ भी होती हैं जिनका इंचार्ज एक कोतवाल होता है।

भारत की गुलामी के काल में पुलिस अफसर अपना मुख्य कार्य देश में राजनीतिक आंदोलन को दबाना तथा किसी भी प्रकार के उचित अथवा अनुचित उपायों से अपने क्षेत्र में शांति बनाये रखना समझते थे। जनता के भले तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों को परेशान करने तथा उनके विरुद्ध झूठे-सच्चे मुकदमे बनाने में भी उन्हें आनन्द आता था। वह जनता की रक्षा नहीं; उसके अधिकारों की भर्त्सना करते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पुलिस के दृष्टिकोण में एक बड़ा परिवर्तन आ गया है। वह अब अपने आप को जनता का सेवक समझती है। जनता के साधारण व्यक्तियों का सबसे अधिक काम पुलिस के अधिकारियों के साथ पड़ता है इसलिये स्वतन्त्रता का वास्तविक अर्थ समझ कर हमारे पुलिस अधिकारियों को चाहिये कि वह रिश्वत, बेईमानी; दमन तथा जुल्म का मार्ग छोड़कर जनता की सेवा को ही अपना सबसे बड़ा धर्म समझें। हमारे प्रांत में आज भी पुलिस के कितने ही ऐसे कर्मचारी हैं जिनकी मनोवृत्ति अभी तक नहीं बदली है और जो पुराने ही ढङ्ग पर शासन का कार्य चलाना चाहते हैं। हमारा धर्म है कि हम ऐसे पुलिस कर्मचारियों को उनका कर्तव्य समझायें तथा उनके अनुचित कार्यों को मन्त्रियों तथा प्रांतीय विधान सभा के सदस्यों के सम्मुख रक्खें।

जेलों का प्रबंध

प्रत्येक जिले में एक जेल होना अनिवार्य होता है, जिससे वहाँ पर वह

सभी अपराधी रक्खे जा सकें जो कानूनों को तोड़ते हैं। जेल का बड़ा अफसर सुपरिन्टेंडेंट जेल तथा छोटा अफसर जेलर कहलाता है। जिले का सिविल सर्जन भी जेलों जी देख-भाल करता है।

स्त्रियों तथा बच्चों के लिये अलग जेल होते है। जहाँ ऐसा प्रबंध संभव नहीं, वहाँ उनके लिये उसी जेल में अलग वार्ड बना दी जाती है। हमारे प्रांत में छोटे बच्चों के लिये चुनार में एक अलग जेल है। स्त्रियों के लिये भी आगरे में एक विशेष जेल की व्यवस्था है।

जेल का सर्वोच्च अधिकारी जेल मन्त्री होता है। उसके नीचे एक इन्स्पेक्टर जनरल आफ प्रिजिन्स काम करता है। अंग्रेजों के काल में हमारी जेलों का प्रबंध अच्छा नहीं था। जेलों से निकल कर अपराधी एक सभ्य नागरिक के स्थान पर और भी भयंकर अपराधी बन जाता था। जेलों में अपराधियों के नैतिक चरित्र को उठाने की कोशिश नहीं की जाती थी। उन्हें किसी प्रकार की शिक्षा भी नहीं दी जाती थी। आजकल हमारी सरकार इस ओर ध्यान दे रही है।

स्वास्थ्य व सफाई का प्रबंध

जनता के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये प्रांतीय सरकार के अन्तर्गत एक स्वास्थ्य विभाग होता है। आजकल हमारे प्रांत में इस विभाग के मन्त्री श्री चन्द्रभान गुप्त हैं। मन्त्री के नीचे इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी जो डाइरेक्टर आफ पब्लिक हेल्थ कहलाता है, काम करता है। उसकी सहायता के लिये कई डिप्टी तथा असिस्टेंट डाइरेक्टर होते हैं। इस विभाग का मुख्य काम बीमारियों को रोकना, जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करना, सफाई रखना, स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा देना, प्रदर्शनियों इत्यादि का प्रबंध करना, संक्रामक बीमारियों को फैलने से रोकना, जन्म और मृत्यु का हिसाब रखना तथा खाने-पीने की चीजों की स्वच्छता कायम रखना होता है। यह काम शहरों में म्युनिस्पैल्टियाँ तथा गाँवों में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा ग्राम पंचायतें करती हैं। प्रत्येक बड़ी म्युनिस्पैल्टी में एक हेल्थ आफीसर होता है जिसके नीचे कई सैनीटरी इन्स्पेक्टर तथा वैक्सीनेटर इत्यादि काम करते हैं। इन कर्मचारियों

के काम की देखभाल प्रांत के स्वास्थ्य विभाग के डाइरेक्टर इत्यादि द्वारा की जाती है।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में विद्यमान नहीं हैं। हमारे देश के व्यक्तियों की औसतन आयु केवल २६ वर्ष है। हजारों रोगी चिकित्सा की किसी प्रकार की सुविधा न मिलने के कारण मौत के शिकार हो जाते हैं। १००० बच्चों के पीछे १६० बच्चे १ वर्ष की आयु से पहिले ही काल के गाल में समा जाते हैं। लाखों स्त्रियाँ प्रसव की वेदना के कारण, किसी प्रकार का जच्चागृह का प्रबन्ध न होने से परलोक को सिधार जाती हैं। दूसरे देशों में स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। आशा है हमारी प्रांतीय सरकारें अब इस ओर विशेष रूप से ध्यान देंगी।

चिकित्सा का प्रबन्ध

स्वास्थ्य विभाग का मुख्य काम बीमारियों की रोक-थाम तथा जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करना होता है। यह विभाग बीमारों तथा रोगियों की चिकित्सा का प्रबंध नहीं करता। यह काम प्रांत के चिकित्सा विभाग द्वारा किया जाता है। प्रायः चिकित्सा तथा स्वास्थ्य विभाग का एक ही मन्त्री अधिकारी होता है, परन्तु उसके नीचे काम करने वाले चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी अफसर अलग-अलग होते हैं। चिकित्सा विभाग का प्रधान कर्मचारी इन्स्पेक्टर जनरल आफ सिविल हास्पिटल्स कहलाता है। उसकी सहायता के लिये भी असिस्टेंट तथा डिप्टी डाइरेक्टर्स होते हैं। इस विभाग में जिले का प्रधान अफसर सिविल सर्जन कहलाता है जो जिले के सभी अस्पतालों की देखभाल करता है। अस्पताल सरकारी भी होते हैं तथा म्युनिसिपल व डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के भी। बच्चों के लिये अलग अस्पताल भी होते हैं।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं के समान चिकित्सा सम्बन्धी प्रबन्ध की भारी कमी है। हमारे देश में ४०,००० व्यक्तियों के पीछे एक अस्पताल, ६,००० व्यक्तियों के पीछे एक डाक्टर तथा ८६,००० व्यक्तियों के पीछे एक नर्स हैं। इंगलैण्ड में ७०० व्यक्तियों के पीछे एक डाक्टर ४००

व्यक्तियों के पीछे एक नर्स, तथा २,००० व्यक्तियों के लिये एक अस्पताल का प्रबन्ध है। बच्चों, स्त्रियो तथा संक्रामक रोगों की चिकित्सा के लिये भी हमारे देश में उचित प्रबन्ध नहीं है। आशा है कि शीघ्र ही प्रांतीय सरकारें इस ओर विशेष ध्यान देंगी।

योग्यता प्रश्न

(१) ज़िलाधीश भारत के असली शासक हैं। इस कथन की सत्यता का विवेचन कीजिए। (यू० पी० १९२८,३२,४८)

(२) ज़िले के बड़े सरकारी अफ़सरों के अधिकारों तथा कर्तव्यों का वर्णन करो। (यू० पी० १९३०)

(३) नये संविधान के अंतर्गत ज़िलों के अधिकारियों के दृष्टिकोण में कहाँ तक परिवर्तन हुआ है?

(४) ज़िले में शांति और व्यवस्था कैसे क़ायम की जाती है?

(५) जेलों के प्रबंध के विषय में आप क्या जानते हैं?

(६) भारत में स्वास्थ्य तथा चिकित्सा संबंधी क्या प्रबंध हैं? दूसरे देशों की अपेक्षा यह प्रबंध कैसा है?

अध्याय १४

स्थानीय स्वशासन

स्थानीय संस्थाओं का महत्व

स्थानीय स्वशासन का अर्थ वह शासन है जिसके द्वारा नगर, उपनगर, तथा ग्राम में रहने वाले लोगों को अपनी स्थानीय समस्याओं का अपनी आवश्यकता तथा इच्छानुसार प्रबन्ध करने का अधिकार दिया जाता है। किसी भी देश में केन्द्रीय अथवा प्रांतीय सरकारें इच्छा रहने पर भी स्थानीय विषयों का इतना उचित प्रबन्ध नहीं कर सकतीं जितना स्वयं उन स्थानों की जनता, जिनके जीवन पर उन विषयों का दिन प्रति दिन प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, किसी नगर की अमुक गली में सफाई है अथवा नहीं, प्रातः भंगी ने आकर झाड़ू लगाई है या नहीं, नालियाँ ठीक प्रकार से साफ की गई हैं या नहीं, कूड़ा डालने के लिये किसी स्थान पर ढोल का उचित प्रबन्ध है या नहीं, किसी गली या कूचे में सरकारी रोशनी की व्यवस्था है अथवा नहीं, नगर के रोगियों के लिये औषधालय में दवाइयाँ हैं अथवा नहीं, आने-जाने के मार्ग पर ठीक प्रकार से सफाई अथवा मरम्मत की गई है अथवा नहीं, इत्यादि—ये कुछ ऐसे विषय हैं जिनका सम्बन्ध स्थानीय लोगों के नित्य के जीवन से होता है और उस स्थान के रहने वाले लोग ही इन समस्याओं का उचित प्रबन्ध कर सकते हैं—कोई दूर रहने वाली केन्द्रीय या प्रांतीय सत्ता नहीं। इसलिये प्रायः प्रत्येक देश में ही स्थानीय विषयों का प्रबन्ध करने के लिये नगरपालिकाएँ, जिला मण्डली, उपनगर पालिकाएँ तथा ग्राम पंचायतों इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्थानीय संस्थाओं के संगठन से निम्न लाभ होते हैं :—

(१) सुविधाजनक प्रबन्ध—प्रजातन्त्र देशों में स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ नागरिकों के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भाग लेती है। उनका मुख्य काम ऐसी सुविधाओं का प्रबन्ध करना होता है, जिनका सम्बन्ध व्यक्तियों के दैनिक जीवन से है। शुद्ध दूध, घी, मक्खन, पीने का पानी, स्वास्थ्यप्रद फल, खाद्य सामग्री, औषधालय, तैरने के तालाब, बिजली, ट्राम, बस, सड़कें खेलने के मैदान इत्यादि का उचित प्रबन्ध—यह कुछ ऐसे विषय हैं जो हमारे नित्यप्रति के जीवन को सुखमय अथवा दुखी बनाते हैं। यह सब काम स्थानीय संस्थाओं को करने पड़ते हैं। केन्द्रीय व प्रांतीय सरकारों की नीति तथा उनके कार्य, हमारे दैनिक जीवन को इतना अधिक प्रभावित नहीं करते, जितना स्थानीय संस्थाओं के काम, जिनकी उचित व्यवस्था पर, हमारे दिन प्रति दिन के जीवन का हर्ष उल्लास, आनन्द एवं उत्साह निर्भर रहता है। यदि हमारी केन्द्रीय या प्रांतीय सरकार दूसरे देश में अपना दूतावास खोल देती है अथवा देश की सेना में एक और टुकड़ी जोड़ देती है, या हमारी प्रांतीय सरकार उद्योग धन्धों की उन्नति के लिए एक पंच वर्षीय योजना बना देती है तो इससे हमारे दैनिक जीवन पर इतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना उन कामों से पड़ता है जो हमारी स्थानीय संस्थाओं को करने पड़ते हैं।

(२) काम का बँटवारा—स्थानीय संस्थाएँ अपने ऊपर छोटी छोटी स्थानीय समस्याओं का कार्य भार लेकर केन्द्रीय व प्रांतीय सरकारों के भार को हल्का कर देती हैं और उन्हें इस बात का अवसर देती है कि वह बड़ी बड़ी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर अधिक ध्यान दे सकें।

(३) कार्य कुशलता—स्थानीय संस्थाओं द्वारा शासन के कार्य में कुशलता तथा दक्षता की वृद्धि होती है। कारण, उनका निर्माण कार्य विभाजन के प्रशंसनीय सिद्धांत पर किया जाता है और स्थानीय लोग अपनी समस्याओं का अधिक सुन्दरता से उपचार कर सकते हैं।

(४) नागरिक शिक्षा—अन्त में, स्वशासित संस्थाएँ नागरिक शिक्षा के महान् केन्द्र का कार्य करती है। वह नागरिकों में जन-सेवा, बलिदान, सहयोग, संयम तथा अनुशासन की उन भावनाओं का निर्माण करती हैं जिन पर एक स्वस्थ नागरिक जीवन अवलम्बित है। व्यक्तियों में सार्वजनिक कार्यों में रुचि लेने

की भावना जाग्रत करती हैं। वे उन्हें शासन का अनुभव प्रदान करती है। इस प्रकार आगे चलकर वह उन्हें इस योग्य बनाती है कि वह देश के बड़े-बड़े कामों में भाग ले सकें तथा केन्द्रीय व प्रांतीय शासनों में उच्च पदों पर काम कर सकें। वे लोकतंत्र शासन की इकाइयों का काम देती हैं और जनता को इस बात का अवसर देती हैं कि वह शासन कार्य में अधिक भाग ले सकें। इस प्रकार वह गणतंत्र की नींव कही जाती हैं। प्रसिद्ध राजनीतिक लेखक लास्की ने कहा है "स्थानीय संस्थाएँ सरकार के दूसरे अंगों से बढ़कर जनता को लोकतन्त्र की शिक्षा देती हैं। वे जातियों को शिक्षित बनाती हैं, नागरिक गुणों के विकास के लिये प्रारम्भिक पाठशालाओं का काम देती है तथा जनता को वास्तविक स्वतन्त्रता का अनुभव कराती है।"

भारतवर्ष के सामाजिक जीवन में स्थानीय संस्थायें किसी न किसी रूप में सदा से चली आई हैं। वैदिक काल में भारतीय ग्रामों का सङ्गठन पंचायती राज्य के सिद्धांत पर आधारित था। सारे देश में स्वायत्त शासन संस्थाओं की भरमार थी। यह संस्थाएं अपने क्षेत्र में पूर्ण रूप से स्वतंत्र थीं और वह केवल ग्राम में शांति बनाये रखने अथवा न्याय करने का काम ही नहीं करती थीं वरन् जनता के सामाजिक आचार और व्यवहार, शिक्षा, जीविका, व्यापार व दूसरे कामों पर भी उनका पूरा नियंत्रण था। वह राजाओं का चुनाव करती थीं। इन संस्थाओं का उल्लेख हमें जातक, रामायण, महाभारत, बृहस्पति, कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा अन्य पुरातन ग्रन्थों में मिलता है। स्वायत्त शासन की यह प्रणाली भारतीय राजनीतिक जीवन में लगभग १६वीं शताब्दी के मध्य तक बनी रही। इसके पश्चात् बाह्य हस्तक्षेप से उनका सन्तुलन बिगड़ने लगा और अंत में जीवन की यह स्वस्थ प्रणाली बिलकुल लुप्त हो गई।

प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार सर चार्ल्स मैटकाफ ने तो यहाँ तक कहा है, "इन संस्थाओं ने भारतीय सामाजिक जीवन की स्थिरता तथा स्वतंत्रता को बनाये रखने में दूसरी सभी भारतीय संस्थाओं से अधिक सहयोग दिया है। भारत में राज्य बदले, एक शासन प्रणाली का अन्त हुआ, दूसरी का प्रादुर्भाव, कितने ही आक्रमणकारी आये, परन्तु भारत की इन ग्राम पञ्चायतों

में वह शक्ति थी कि वह इन सब क्रान्तियों तथा परिवर्तनों के बीच स्थिर बनी रहीं और भारतीयों के जीवन को उसी प्राचीन संस्कृति के वातावरण में ढालती रहीं।"

प्राचीन भारत की इन संस्थाओं को 'श्रेणी' या 'गुण' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। इनमें ५ से लगाकर ७ तक जनता के चुने हुए प्रतिनिधि गाँव या नगर का प्रबन्ध करते थे। बड़ी नगरपालिकाओं में अधिक प्रतिनिधि भी होते थे। उदाहरणार्थ चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में पाटलीपुत्र नगर के प्रबन्ध का वर्णन देते हुए प्रसिद्ध यूनानी राजदूत मेगास्थनीज लिखता है कि इस नगर के प्रबंध के लिये ३० प्रतिनिधियों की एक समिति थी। यह समिति उपसमितियों द्वारा सारे नगर का प्रबंध करती थी। पाटलीपुत्र का शासन प्रबन्ध अत्यन्त उच्च कोटि का था। नगर में भूमिगत नालियों का प्रबंध था। प्रकाश तथा सफाई की उचित व्यवस्था थी। नगरपालिका की ओर से अनेक उद्यान, क्रीड़ास्थल, खेल के मैदानों इत्यादि का प्रबन्ध किया जाता था। नगर में शांति व सुरक्षा बनाए रखने का काम भी यही संस्था करती थी।

जाति पंचायतें

प्राचीन भारत में एक दूसरे प्रकार की जाति पंचायतें थीं जिनके सदस्य केवल वही व्यक्ति हो सकते थे जो किसी जाति या व्यवसाय विशेष से सम्बंध रखते हों। ऐसी संस्थायें दो प्रकार के कार्य करती थीं—सर्व प्रथम जातीय या व्यावसायिक एकता बनाये रखने में सहायक सिद्ध होती थीं और दूसरे वह अपने सदस्यों की सहायता तथा उनके अधिकार की रक्षा के लिये उसी प्रकार के कार्य करती थीं जैसे आजकल सहायक समितियों (Co-operative Societies) या ट्रेड यूनियनों द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। यह संस्थायें अपने सदस्यों द्वारा नैतिक आचरण का अवलम्बन करने तथा व्यापार में ईमानदारी से काम लेने पर भी जोर देती थीं। इसी कारण इन संस्थाओं में जाति अथवा व्यापार के अलिखित नियमों के उल्लङ्घन करने की दशा में दण्ड व्यवस्था का आयोजन भी रहता था।

उपरोक्त पंचायतों में से कुछ जाति पंचायतें आजकल भी ग्रामीण भारत में, विशेषकर दलित जातियों में, पाई जाती है। इनको बिरादरी पंचायत भी कहा जाता है जैसे कोलियों, मेहतरों, चमारों, धोबियों की पंचायतें इत्यादि। यह पंचायतें थोड़े-थोड़े समय बाद खुले स्थानों में होती हैं और अपनी ही जाति व व्यवसाय की समस्याओं पर विचार करती हैं। जाति के प्रत्येक सदस्य को इन सभाओं में बोलने का अधिकार होता है। इन संस्थाओं में अधिक अनुशासन से कार्य नहीं होता। प्रायः सभाओं में सभी व्यक्ति एक साथ बोलने का प्रयत्न करते हैं जिससे आसपास वालों को ऐसा प्रतीत होता है मानो यह व्यक्ति आपस में लड़ रहे हों। इन संस्थाओं के फैसलों का पालन जाति के लोग इस डर से करते हैं कि उनका सामाजिक बहिष्कार न कर दिया जाय। बहुत बार ये पंचायतें जुर्माने इत्यादि भी करती है और कभी कभी सदस्यों का हुक्का पानी व रोटी-बेटी का व्यवहार बन्द कर देती हैं। इन जाति पंचायतों से कुछ लाभ अवश्य हैं। उदाहरणार्थ, वह जाति की नैतिक अवनति को रोकती है, विवादों का पारस्परिक भाईचारे के ढंग के निर्णय करती है और जातीय एकता को दृढ़ करती हैं, परन्तु आजकल राष्ट्रीयता के निर्माण में ये पंचायतें घातक सिद्ध होंती हैं। इन पंचायतों के कारण एक जाति के सदस्यों में पृथककरण की भावना बनी रहती है और समाज के लोग एक दूसरे के साथ मिलकर घनिष्ठ मित्रता का व्यवहार नहीं कर पाते। बहुत बार जाति पंचायतों में एक दूसरे के साथ संघर्ष भी हो जाते हैं। आधुनिक काल में व्यवसाय के आधार पर ट्रेड यूनियनों का संगठन किया जाता है। इस कारण जाति-पाँति के आधार पर संस्थाओं का निर्माण करना अधिक उचित नहीं जान पड़ता।

मुसलिम काल में स्वायत्त शासन-संस्थाओं का संगठन

मुसलमानों के काल में भारत के ग्रामीण जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। मुसलमान शासक नगर के जीवन को ही अधिक पसंद करते थे। इस कारण उनके काल में हमारी ग्रामीण संस्थाओं का संगठन पूर्ववत् ही बना रहा। हाँ, इतना अवश्य है कि नगरों के शासन के लिये जो प्राचीन नगर-पालिकाओं का संगठन था वह तोड़ दिया गया और उनके स्थान पर नगरों के

शासन प्रबन्ध के लिये कोतवालों की नियुक्ति कर दी गई। यह कोतवाल आजकल की म्युनिसिपल कमेटियों के सब कार्यों की देखभाल करते थे।

ब्रिटिश शासन-काल में स्वायत्त शासन-संस्थाओं का विकास

हमारे अंग्रेज शासकों ने सर्वप्रथम देश में केन्द्रीयकरण की नीति का अनुसरण किया। इस नीति के आधीन, उन्होंने अपने शासन के प्रारंभिक काल में, स्थानीय संस्थाओं को जड़ मूल से नष्ट कर दिया। भारत की प्राचीन ग्राम पंचायतें भी जो सहस्रों वर्षों से हमारे सामाजिक जीवन का अविछिन्न अंग बन गई थीं, तोड़ दी गईं। परन्तु शीघ्र ही सरकार को अपनी त्रुटि का पता चल गया और उसने यह अनुभव किया कि इतने बड़े देश में शासन की कुशलता की दृष्टि से किसी न किसी प्रकार की स्थानीय संस्थाओं का संगठन अवश्य होना चाहिये। इसी उद्देश्य से सर्वप्रथम सन् १७६३ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक कानून पास किया जिसके अन्तर्गत भारत में स्थानीय संस्थाओं का संगठन किया गया। इसके पश्चात् सन् १८४२, १८५० तथा १८५६ में दूसरे कानून बनाये गये जिनके द्वारा इन संस्थाओं का संगठन अधिक व्यापक बना दिया गया। आरम्भ में इन संस्थाओं के सदस्य केवल मनोनीत ही होते थे, परन्तु सन् १८७३ में लार्ड मेयो ने निर्वाचन पद्धति की नींव डाली। इसके पश्चात् सन् १८८२ में लार्ड रिपन के शासन काल में इन संस्थाओं को और अधिक लोकप्रिय बना दिया गया। निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और सभापति का आसन भी गैर-सरकारी बना दिया गया। सन् १९१९ में मौन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधारों के आधीन प्रांतों में स्वायत्त शासन विभाग एक लोकप्रिय मन्त्री के हाथों में दे दिया गया। इसके पश्चात् इन संस्थाओं के संगठन में और अधिक सुधार किये गये। निर्वाचित सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर दी गई और मत देने का अधिकार बहुत अधिक लोगों को दिया जाने लगा। हमारे अपने प्रांत में सन् १९१६ में एक वृहद्-म्युनिसिपल ऐक्ट पास किया गया। इसी ऐक्ट के आधीन अभी कुछ दिन पहिले तक हमारी म्युनिसिपैल्टियों का शासन प्रबंध किया जाता था। पिछले वर्ष इस ऐक्ट में कुछ संशोधन किये गये जिससे वयस्क मताधिकार के आधार पर राय देने का अधिकार सभी बालिग स्त्री और पुरुषों को दे दिया गया,

पृथक निर्वाचन प्रणाली का अन्त कर दिया गया और म्यूनिस्पल कमेटियों के प्रधानों का निर्वाचन सदस्यों के हाथ से छीन कर सीधा मतदाताओं के हाथ में दे दिया गया।

स्थानीय संस्थाओं का वर्गीकरण

भारत की स्थानीय संस्थाओं को हम मोटे रूप से दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं :—

१. नगरों की समस्याओं की देखभाल करने वाली संस्थायें।

२. ग्रामीण प्रदेशों की देखभाल करने वाली संस्थायें।

जो संस्थायें नगरों के प्रबन्ध की व्यवस्था करती हैं, उनका वर्गीकरण हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं :—

१. कार्पोरेशन

२. म्युनिस्पल कमेटियाँ या नगरपालिकाएँ

३. टाउन एरिया व नोटीफाइड एरिया कमेटियाँ या उपनगर-पालिकायें

४. कैन्टोन्मेंट बोर्ड

५. और पोर्ट ट्रस्ट

इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों की संस्थाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है :—

१. डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या ज़िला मंडली।

२. ताल्लुका या सब डिविजल बोर्ड

३. ग्राम पंचायत।

अब हम इन विभिन्न संस्थाओं के कार्य अथवा संगठन की विवेचना करेंगे।

स्थानीय संस्थाओं के कार्य

जैसा पहिले बतलाया जा चुका है स्थानीय संस्थाओं का काम मुकामी बातों का प्रबन्ध करना होता है। इन कामों को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(१) सार्वजनिक रक्षा—इस शीर्षक के अन्तर्गत स्थानीय सरकारों का काम सड़कों तथा गलियों का बनाना, उनकी मरम्मत करना, नगर की रोशनी

का प्रबन्ध करना, मकानों इत्यादि के बनाने के लिये नियम बनाना, जनता के लिये स्वच्छ पानी व नहरों इत्यादि का प्रबन्ध करना, आग से बचाव के लिये दमकलें या फायर इंजनों का प्रबंध करना, जनता के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाली चीजों की बिक्री को रोकना, ऐसे कारखानों तथा व्यापारों पर नियन्त्रण रखना जिनसे जनता के स्वास्थ्य अथवा चरित्र पर कुप्रभाव न पड़े तथा सार्वजनिक मार्गों पर से रुकावटें हटाना इत्यादि होता है।

(२) सार्वजनिक स्वास्थ्य—इस शीर्षक के अन्तर्गत स्थानीय संस्थाओं का काम चेचक व टीके का प्रबंध, संक्रामक रोगों की रोक-थाम, औषधालयों तथा चिकित्सालयों का प्रबंध, खेल के मैदान तथा बगीचों का प्रबंध, तथा ऐसे दूसरे कामों को करना होता है जिनसे जनता के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़े।

(३) सार्वजनिक शिक्षा—स्थानीय संस्थायें लड़के व लड़कियों के लिये प्राइमरी शिक्षा, टेक्निकल शिक्षा, पुस्तकालय, वाचनालय, अजायबघर, जू व कला केन्द्र, इत्यादि का प्रबंध करती है।

(४) सार्वजनिक सुविधाएँ—इस शीर्षक के अन्तर्गत स्थानीय संस्थाओं का कर्त्तव्य अपने नागरिकों की सेवा व उन्नति के लिये हर प्रकार का कार्य करना होता है। जैसे पानी, गैस व बिजली का प्रबन्ध, मार्केटों का खोलना श्मशान भूमि का प्रबन्ध, बसें व ट्राम गाड़ियाँ चलाना, डेरी खोलना, तैरने के तालाब बनाना, सिनेमा खोलना, पब्लिक हाल बनाना, वृक्ष लगाना, पिकनिक के स्थान बनाना, नावों का प्रबन्ध करना इत्यादि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्थानीय संस्थाओं को वह सभी काम सुपुर्द किये जाते हैं जिनका सम्बन्ध उन स्थानों पर रहने वाली जनता की सुविधा, भलाई तथा आराम से होता है। प्रायः सभी संस्थायें चाहे वह बड़े बड़े नगरों में कार्य करती हों या छोटे कस्बों में, देहाती इलाकों में काम करती हों या छोटे छोटे गाँवों में, अपने साधनों के अनुसार इसी प्रकार के कार्य करती हैं।

दूसरे देशों की स्थानीय संस्थाएँ

दुर्भाग्यवश हमारे देश की स्थानीय संस्थायें, अनेक कारणों से अपने

नागरिकों को वह सभी सुविधायें प्रदान नहीं कर पातीं जो दूसरे देशों की संस्थायें करती हैं। इंगलैण्ड, फ्रांस या अमरीका के किसी गाँव या कस्बे में आप चले जाइये। आपको उन क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं द्वारा हर प्रकार की सुविधायें देखने को मिलेंगी। मोटर या दूसरी सवारी का प्रबन्ध, होटलों का इन्तजाम, खालिस दूध, दही, घी व मक्खन का प्रबन्ध, ट्राम; बस व रेलों की व्यवस्था, तैरने के तालाब, बोट क्लब, खेलने के मैदान, लान, पार्क, चिड़ियाघर, कला केन्द्र, वाचनालय, पुस्तकालय आदि का प्रबन्ध तथा दूसरे प्रकार की अनेक सुविधायें इन देशों की स्थानीय सस्थायें अपने नागरिकों को प्रदान करती हैं। उनकी आमदनी के स्रोत इतने अधिक होते हैं कि एक एक म्युनिसिपैल्टी में कई कई लाख रुपये की आमदनी होती है। हमारे देश में सारी स्थानीय संस्थाओं की कुल आमदनी २० करोड़ रुपये से अधिक नहीं। इंगलैंड में ग्लासगो म्यूनिसिपैल्टी की आमदनी १५ करोड़ रुपये से अधिक है। यही मुख्य कारण है कि वहाँ की संस्थायें अपने नागरिकों के लिये बहुत अधिक सुविधाओं का प्रबन्ध कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त हमारे देश के लोगों में नागरिक व सार्वजनिक भावना व शासन के अनुभव की भारी कमी है। हमारे गाँवों में शहरों के लोग म्यूनिसिपल या डिस्ट्रिक्टबोर्ड के सदस्य इसलिये नहीं बनते कि वह वहाँ जाकर जनता की सेवा करें या उनकी दशा सुधारने के लिये नई योजनायें बनायें, वरन् इसलिये कि उनकी अपनी इज्जत व आबरू बढ़े और उनके कुछ स्वार्थों की पूर्ति हो सके। हमारी अधिकतर स्थानीय संस्थाओं के सदस्य अधपढ़े लिखे होते हैं। वह दूसरे देशों के अनुभवों से लाभ नहीं उठा सकते। उनमें इतनी योग्यता नहीं होती कि दूसरे देशों की स्थानीय संस्थाओं का कार्य करें। दूसरे देशों की स्थानीय संस्थायें जिनकी आमदनी कम होती है वह आपस में मिलकर एक दूसरे के सहयोग से कार्य करती हैं। उदाहरणार्थ, पास पास की दो या दो से अधिक म्युनिसिपल कमेटियाँ एक ही अस्पताल, शिशु गृह, जच्चा खाना, नाट्यशाला, खेल के मैदान व पब्लिक हाल इत्यादि बना लेती हैं। इससे खर्च में भारी कमी हो जाती है और जनता को अधिक सुविधाएँ मिल जाती हैं। भारत में भी हम इसी प्रकार के सहयोग से काम कर सकते हैं।

हमारे देश की स्थानीय संस्थाओं में सुधार के लिये कुछ सुझाव

भारतवर्ष की स्थानीय संस्थाओं में सुधार करने के लिये आवश्यक है कि भारतीय जनता अपने कर्त्तव्यों को भलीभाँति समझे और चुनावों के समय केवल ऐसे ही व्यक्तियों को राय दे जो हर प्रकार से योग्य तथा अनुभवी हों और जो उनकी सच्ची सेवा कर सकें। जाँति-पाँति, पारिवारिक बन्धन या रिश्तेदारी के विचार से हमें राय नहीं देनी चाहिये। हमें मतदाता परिषद् (Voters Council), नागरिक संस्थाएँ (Citizens Associations) इत्यादि बनानी चाहिये और इनके द्वारा इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि स्थानीय संस्थाओं के सदस्य अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये नहीं वरन् जन-सेवा के लिये कार्य करें। जब तक जनता स्वयं जागरूक न बनेगी और वह अपने अधिकारों को न समझेगी तब तक कोई बाहरी संस्था उसका उद्धार नहीं कर सकती।

जनता को शिक्षित बनाने तथा उसे अपने कर्तव्यों की याद दिलाने के लिये आवश्यक है कि भारत के प्रत्येक स्कूल व कालेज में नागरिक शास्त्र व स्वायत्त शासन संबंधी संस्थाओं की शिक्षा अनिवार्य बना दी जाय। हमारी विश्वविद्यालयों को भी चाहिये कि वह एम० ए० तथा पी० एच० डी० की डिग्रियों के लिये भी स्थानीय स्वशासन की शिक्षा पर जोर दें। आजकल हमारे देश की अधिकतर यूनिवर्सिटियों में स्थानीय संस्थाओं की शिक्षा को स्थान नहीं दिया जाता। इन संस्थाओं की कितनी ही ऐसी समस्याएँ हैं जिन पर अनुसंधनात्मक अध्ययन किया जा सकता है, उदाहरणार्थ स्थानीय राजस्व (Local Finance), म्युनिसिपल व्यापार (Municipal Trading) नगर योजना, गृह निर्माण योजना (Housing Problem), जन स्वास्थ्य (Public Health), सामाजिक उत्थान (Social Amenities), इत्यादि अनेक ऐसी समस्याएँ हैं जिन पर बहुत गूढ़ अध्ययन किया जा सकता है। इसलिये विश्वविद्यालयों को चाहिये कि वह अपने पाठ्यक्रम में इस शिक्षा पर विशेष ध्यान दें।

नागरिक संस्थाओं का सङ्गठन

कार्पोरेशनों का संगठन

हमारे देश में मुख्यतः तीन कार्पोरेशन बहुत प्राचीन समय से कार्य करते

हैं। यह कार्पोरेशन बंबई, कलकत्ता और मद्रास में हैं। इनकी स्थापना ब्रिटिश पार्लियामेंट के विशेष कानूनों द्वारा की गई थी। भारत में सबसे पहला कार्पोरेशन सन् १६८७ में मद्रास नगर में स्थापित किया गया। इसके पश्चात् बम्बई तथा कलकत्ता कार्पोरेशन संगठित किये गये। म्युनिसिपल कमेटियों की अपेक्षा कार्पोरेशनों को अधिक अधिकार प्राप्त होते हैं। उन पर प्रान्तीय सरकार का नियन्त्रण भी नाममात्र का होता है।

कलकत्ता कार्पोरेशन

कलकत्ता-कार्पोरेशन के सदस्यों की कुल संख्या ९८ है। इन सदस्यों में ९३ सभासद (Councillors) और ५ एल्डरमैन होते हैं। ऐल्डरमैनों का चुनाव सभासदों द्वारा किया जाता है। यह नगर के सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं। कार्पोरेशन का अध्यक्ष मेयर कहलाता है, जिसका चुनाव प्रति वर्ष किया जाता है। कार्पोरेशन के शासन प्रबन्ध के लिये एक चीफ एक्जीक्यूटिव आफिसर की नियुक्ति की जाती है। कार्पोरेशन के सेक्रेटेरियट के सारे प्रबन्ध का उत्तरदायित्व इसी अफसर पर होता है। कार्पोरेशन के मेयर या काउँसिलर उसके काम में हस्तक्षेप नहीं करते।

बम्बई कार्पोरेशन

बम्बई कार्पोरेशन के सदस्यों की संख्या १०६ है। इनमें से ८० निर्वाचित १६ मनोनीत तथा १० सदस्य शेष सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। बम्बई कार्पोरेशन के चीफ एक्जीक्यूटिव आफिसर को म्यूनिसिपल कमिश्नर कहा जाता है। वह प्रायः इंडियन सिविल सर्विस का सदस्य होता है और उसकी नियुक्ति तीन वर्ष के लिये की जाती है। बम्बई में एक प्राचीन रीति के अनुसार मेयर का चुनाव प्रति वर्ष क्रमशः हिंदू, मुस्लिम तथा पारसी सदस्यों में से किया जाता था। परन्तु कुछ समय हुआ इस रीति को तोड़ दिया गया और अब कई वर्ष से बम्बई के मेयर श्री एस० के० पाटिल ही चले आ रहे हैं।

मद्रास कार्पोरेशन

मद्रास कार्पोरेशन के सदस्यों की संख्या ६५ है। इनमें ५९ सदस्य निर्वाचित, १ मनोनीत, ५ सदस्य दूसरे सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। बम्बई कार्पोरेशन की भाँति मद्रास कार्पोरेशन के चीफ ऐक्जीक्यूटिव आफीसर को

भी म्यूनिसिपल कमिश्नर कहा जाता है। इसकी नियुक्ति प्रांतीय सरकार द्वारा की जाती है।

उत्तर प्रदेश में नगर-पालिकाओं का संगठन

भारतवर्ष में उपरोक्त तीन नगरों को छोड़कर शेष सब बड़े नगरों में म्युनिसिपल कमेटियाँ हैं। हमारे प्रान्त में इन कमेटियों की संख्या ११० है। नगर-पालिकाओं व नोटिफाइड एरिया कमेटियों—दोनों को मिलाकर संख्या ३१२ है। भिन्न भिन्न प्रांतों में म्युनिसिपैलटियों का संगठन अलग-अलग प्रकार से किया जाता है। नीचे हम उत्तर प्रदेश की नगर-पालिकाओं के संगठन का संक्षिप्त विवरण देते हैं :—

निर्माण—हमारे प्रांत के प्रायः उन सभी नगरों में जिनकी जनसंख्या ५०,००० से अधिक है, म्यूनिसिपल कमेटियाँ हैं। जिन म्यूनिसिपल कमेटियों की वार्षिक आय ५०,००० रु० से अधिक है उनमें एक एक्जीक्यूटिव अफसर होता है। म्यूनिसिपैलिटी सम्बन्धी संशोधित कानून के अनुसार नगर-पालिकाओं की सदस्य संख्या २० से कम अथवा ८० से अधिक नहीं होगी। संशोधित कानून के अनुसार मनोनीत सदस्यों की प्रथा का अन्त कर दिया गया है और उसके स्थान पर सहायक सदस्यों (Co-opted Members) की व्यवस्था की गई है। कानून में कहा गया है कि कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, आगरा व लखनऊ में सहायक सदस्यों की संख्या ८ होगी। शेष नगर-पालिकाओं में जिनकी जनसंख्या १ लाख से अधिक है, ऐसे सदस्यों की संख्या ६ निश्चित की गई है। इससे छोटे नगरों में केवल ४ सहायक सदस्य नगर-पालिकाओं में चुने जायेंगे।

ऐसे सदस्यों के निर्वाचन के सम्बन्ध में संशोधित कानून में विशेष व्यवस्था की गई है। उदाहरणार्थ, कानून में कहा गया है कि सहायक सदस्यों में से आधे सदस्य विशेष-हितों का प्रतिनिधित्व करेंगे और शेष सदस्य स्त्रियाँ होंगी। ऐसे व्यक्ति सहायक सदस्य न चुने जा सकेंगे जो नगरपालिका के आम चुनावों में हार गये हों या जिनका नाम मतदाताओं की सूची में न हो या जिनको चुनाव में भाग लेने से न्यायालय द्वारा वंचित कर दिया गया

हो। सहायक सदस्यों के निर्वाचन के सम्बन्ध में यदि किसी प्रकार का विवाद होगा तो इस दशा में प्रांतीय सरकार का निर्णय अंतिम माना जायगा।

निर्वाचन—चुनाव के लिए कानून में कहा गया है कि प्रत्येक नगर-पालिका वार्डों (क्षेत्रों) में विभक्त कर दी जायगी। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से कम से कम ३ और अधिक से अधिक ७ सदस्य चुने जा सकेंगे। कानून में मुसलमानों तथा हरिजनों के चुनाव के लिये उनकी जनसंख्या के आधार पर व्यवस्था की गई है। परन्तु अब हमारी प्रांतीय सरकार भारत के नव-संविधान के प्रकरण में इस कानून में संशोधम करना चाहती है जिससे मुसलमानों के लिये सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था हटाई जा सके। हमारा नव-संविधान एक धर्म-निर्पेक्ष राष्ट्र के सिद्धांत पर आधारित है। इस कारण, भारतवर्ष की किसी भी जाति अथवा धर्म को विशेष प्रतिनिधित्व नहीं दिया जा सकता। नव-विधान में केवल हरिजनों के अधिकारों की रक्षा के लिये प्रारंभ के दस वर्षों में संरक्षकों की व्यवस्था की गई है; उत्तर प्रदेश की नगर-पालिकाओं का संशोधित कानून संविधान पास होने के पूर्व सन् १९४८ में स्वीकार किया गया था। इसलिए आशा है कि शीघ्र ही इस कानून में मुसलमानों के संरक्षित प्रतिनिधित्व की प्रथा का अन्त करने के लिए उचित परिवर्तन कर दिया जायगा।

वयस्क मताधिकार—नये कानून के अंतर्गत उत्तर प्रदेश में नगर-पालिकाओं के चुनाव के लिये सीमित-मताधिकार के स्थान पर वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की गई हैं। इस प्रबंध के अंतर्गत नगर-पालिका के क्षेत्र में रहने वाला प्रत्येक वह व्यक्ति जिसकी आयु २१ वर्ष या इससे अधिक हो, मतदाता बन सकेगा। मतदाताओं की योग्यता के सम्बन्ध में शिक्षा, आय, संपत्ति, हैसियत, उपाधि या इसी प्रकार की कोई आवश्यक शर्तें नहीं रखी गई हैं। क़ानून में कहा गया है कि प्रत्येक वह व्यक्ति जो ६ मास से अधिक किसी नगर-पालिका के क्षेत्र में रहता हो तथा जो पागल, दिवालिया अथवा किसी न्यायालय द्वारा किसी भीषण अपराध में दंडित न हो, मतदाता बन सकेगा। विदित है कि इस प्रकार नये कानून में स्त्री-पुरुष, धनी-निर्धनी, हिंदू-मुसलमान, अछूत व सवर्ण—सबको बराबर का मताधिकार दिया गया है।

सदस्यों की योग्यता—नगर-पालिका की सदस्यता के लिये प्रत्येक वह

व्यक्ति उम्मीदवार हो सकेगा जिसका नाम मतदाताओं की सूची में हो, जो हिंदी अथवा अंग्रेजी पढ़-लिख सकता हो, एवं जो सरकारी नौकर, सरकारी वकील, अवैतनिक मजिस्ट्रेट या मुंसिफ या सहायक कलेक्टर न हो। कुष्ट रोग से पीड़ित व्यक्ति, दिवालिया तथा ऐसे लोग जिनके नाम म्युनिसिपल टैक्स बाकी हों, वह भी नगर-पालिका की सदस्यता के लिये खड़े न हो सकेंगे।

नगर-पालिका का प्रधान—नये कानून में सबसे मुख्य क्रांतिकारी परिवर्तन नगर-पालिकाओं के प्रधान के सम्बन्ध में किया गया है। पुराने कानून के आधीन अध्यक्ष का चुनाव नगर-पालिकाओं के सदस्यों द्वारा किया जाता था। इस रीति में सबसे बड़ा दोष यह था कि सदस्य दलबन्दी की प्रथा से प्रभावित होकर आये दिन एक अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करके दूसरे ऐसे अध्यक्ष को उसके स्थान पर लाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे जो उनकी अधिक स्वार्थ-पूर्ति कर सके, और इस कारण नगर-पालिकाओं की शासन व्यवस्था अत्यंत निष्कृष्ट तथा निम्नकोटि की रहती थी। संशोधित कानून में इसलिये कहा गया है कि नगर-पालिकाओं के अध्यक्ष का चुनाव सीधा मतदाताओं द्वारा किया जायगा। नये कानून के अन्तर्गत भी सदस्य अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर सकते हैं परन्तु अध्यक्ष को यह अधिकार दिया गया है कि यदि वह समझे कि जनता उसके साथ है और उसकी नीति को पसन्द करती है तो वह प्रांतीय सरकार से इस बात की प्रार्थना कर सकता है कि नगर-पालिका को तोड़ कर नये आम चुनाव कर दिये जायँ। इस प्रार्थना को स्वीकार या अस्वीकार करने का अंतिम अधिकार प्रांतीय सरकार को है। आम निर्वाचन के पश्चात् यदि नये सदस्य अध्यक्ष के विरुद्ध फिर अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दें तो अध्यक्ष को तीन दिन के अन्दर अपना त्याग-पत्र दे देना होगा। नये कानून के अन्तगत प्रांतीय सरकार को भी इस बात का अधिकार दिया गया है कि यदि वह किन्हीं विशेष कारणों से यह समझे कि किसी नगर-पालिका का अध्यक्ष अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर रहा है तो वह उसे उसके पद से हटा सकती है। संशोधित कानून के अनुसार, आशा है कि नगर-पालिकायें नगरों की व्यवस्था अधिक सुचारु रूप से कर सकेंगी।

आम निर्वाचन—संशोधन कानून में एक और विषय जिसको विशेष महत्व दिया गया है, यह है कि आम चुनाव के समय उम्मीदवार मतदाताओं से धर्म की दुहाई देकर या उनकी जातीय सांप्रदायिक भावनाओं को भड़का कर उनसे राय न माँग सकेंगे। कानून में कहा गया है कि चुनावों में 'धर्म खतरे में है' का नारा लगाना या यह कहना कि 'यदि अमुक उम्मीदवार को राय न दी गई तो उस व्यक्ति पर ईश्वर का प्रकोप होगा'—गैर कानूनी समझा जायगा। इस आधार पर कानून में कहा गया है कि यदि यह सिद्ध हो सके कि कोई उम्मीदवार इन उपायों को काम में लाकर निर्वाचित हो गया है तो ऐसे व्यक्ति का चुनाव रद्द किया जा सकता है।

कार्यावधि—नये कानून के अनुसार नगर-पालिकाओं की कार्यावधि ४ वर्ष निश्चित की गई है। परन्तु प्रांतीय सरकार को इस बात का अधिकार दिया गया है कि यदि वह किन्हीं विशेष कारणों से आवश्यक समझे तो उनकी अवधि एक समय में एक वर्ष के लिये बढ़ा सकती है।

नगर-पालिकाओं के कार्य—इसी अध्याय में जैसा पहले बताया जा चुका है कि नगर-पालिकायें मुख्य रूप से चार प्रकार के कार्य करेंगे।—१. सार्वजनिक रक्षा का कार्य, २. सार्वजनिक स्वास्थ्य का कार्य, ३. सार्वजनिक शिक्षा का कार्य और ४. सार्वजनिक सुविधाएँ प्रदान करने का कार्य। इन कार्यों का विस्तृत वर्णन हम पहले ही दे चुके हैं और यह भी देख चुके हैं कि हमारे देश में नगर-पालिकायें अपने कर्तव्यों का उचित रूप से पालन क्यों नहीं करतीं।

आय के साधन—हमारी नगर-पालिकाओं की असफलता का सबसे मुख्य कारण यह है कि उनकी आय के स्रोत अत्यंत सीमित हैं। अपने प्रांत की नगर-पालिकाओं की आय के साधनों को हम चार मुख्य भागों में बाँट सकते हैं—१. म्यूनिसिपल कर, २. सरकारी सहायता, ३. ऋण और ४. म्यूनिसिपल व्यापार से आय।

१. म्यूनिसिपल कर—नगर पालिकाओं की आय का सबसे बड़ा भाग करों द्वारा प्राप्त होता है। यह कर निम्नलिखित हैं:—

(क) सम्पत्ति कर (Property Tax)

(ख) व्यापार तथा व्यवसाय कर (Taxes on Trades) and Professions)

(ग) गाड़ियों, ताँगों, ठेलों, रिक्शा व सवारी के दूसरे साधन पर कर

(घ) कुत्तों पर कर

(च) बाहर से नगरों में आने वाले पदार्थों पर कर जिसे अंग्रेजी में चुँगी कर (Octroi or Terminal Tax) कहा जाता है।

(छ) पानी, बिजली व सफाई कर

(झ) म्यूनिसिपल संपत्ति व कमेटी के बाजारों से आय।

२. सरकारी सहायता—प्रायः प्रत्येक ही नगर-पालिका को प्रांतीय सरकार की ओर से एक बन्धी हुई वार्षिक सहायता मिलती है।

३. ऋण—नगर-पालिकाओं को प्रान्तीय सरकार की अनुमति से ऋण लेने का अधिकार भी प्राप्त होता है।

४. म्यूनिसिपल व्यापार—नगर-पालिकाओं की आय का एक और बड़ा स्रोत जिसे हमारे देश में बहुत कम काम में लाया जाता है म्यूनिसिपल व्यापार है। दूसरे देशों में नगर-पालिकायें अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धे चलाती हैं—जैसे होटल खोलना, डेरी फार्म चलाना, ट्राम इत्यादि का आयोजन करना, थियेटर व सिनेमा खोलना, शुद्ध खाद्य-पदार्थों की बिक्री का प्रबन्ध करना, सार्वजनिक स्नानागार व तैरने के तालाबों का प्रबंध करना, बोट क्लब व पिकनिक के स्थानों का प्रबन्ध करना इत्यादि। इन कार्यों से न केवल नगर-पालिकायें अपनी आय में वृद्धि करती हैं, वरन् अपने नागरिकों के दैनिक जीवन को भी अधिक आनन्दमय व सुविधाजनक बनाने में सहायक सिद्ध होती है।

आय के साधनों में वृद्धि करने के लिए कुछ सुझाव

बैतल कमेटी की सिफारिशें—भारत सरकार ने स्थानीय संस्थाओं की आर्थिक अवस्था की जाँच तथा उनके साधनों में बढ़ोतरी पर विचार करने के लिए श्री पी० के. बैतल की अध्यक्षता में कमेटी बिठाई थी। इस कमेटी

की रिपोर्ट मई सन् १६५१ में प्रकाशित हो गई। कमेटी ने नगर-पालिकाओं की वर्तमान आर्थिक अवस्था के विषय में निम्न आँकड़े प्रकाशित किए :—

भारत में तीन कार्पोरेशनों की आय सन् १६४६-४७ में १२ करोड़ ३५ लाख रुपये थे। प्रति व्यक्ति के हिसाब से यह आय ६ रु० ११ आ० ४ पाई थी।

५६२ नगर-पालिकाओं की आय १७ करोड़ ५६ लाख रुपये थे। जन-संख्या के विचार से यह आय ३ रु० ६ आ० ६ पा० प्रति व्यक्ति थी।

१८६ जिला मण्डलियों की आय १५ करोड़ ५५ लाख रुपये थे। जन-संख्या के विचार से यह आय केवल ३ आने ६ पाई थी।

कमेटी ने कहा कि इस प्रकार विदित है कि भिन्न-भिन्न स्थानीय संस्थाएँ अपने अधिकारों का पूरा उपयोग कर अपने आर्थिक साधनों का पूर्ण लाभ नहीं उठातीं। उसने कहा कि आजकल भी स्थानीय संस्थाओं को इतने अधिकार प्राप्त हैं कि वह उनसे अपनी आय को कई गुना बढ़ा सकते हैं। सम्पत्ति कर के विषय में कमेटी ने कहा कि बहुत सी नगर-पालिकाएँ इस कर को नहीं लगाती। उसने कहा कि स्थानीय संस्थाओं को चाहिये कि वह (१) सम्पति पर अधिक कर लगाएँ, (२) कारखानों पर विशेष कर लगाएँ, (३) रेल व मोटर से आने वाले यात्रियों पर कर लगाएँ, (४) बाहर से आने वाली वस्तुओं पर कीमत के हिसाब से कर लगाएँ तथा (५) पानी, बिजली, बस, डेयरी, ट्राम, सिनेमा इत्यादि का प्रबन्ध करके उन साधनों से आय को बढ़ाएँ।

नगर-पालिकाओं की आय बढ़ाने के लिए हम निम्न और सुझाव पाठकों के सम्मुख पेश करते हैं :—

१. सन्तानोत्पत्ति कर—(Progressive tax on birth of children) हाल ही में पंजाब के करनाल नामक नगर की कमेटी ने इस प्रकार का कर लगाया है। सन्तानोत्पत्ति की सूचना प्रत्येक माता-पिता को नगर-पालिका में देनी होती है। ऐसे समय यदि शिशु के माता-पिताओं से कहा जाय कि वह प्रथम शिशु पर कम परन्तु उसके पश्चात् बढ़ता हुआ कर नगर-पालिका के कार्यालय में जमा करें तो इस विधि से न केवल नगर-

पालिकाओं की आय में ही वृद्धि हो सकेगी वरन् हमारे देश की बढ़ती हुई जनसंख्या पर भी कुछ प्रतिबन्ध लग सकेगा।

२. विवाहों तथा सहभोजों के अवसर पर उन उत्सवों में होने वाले कुल व्यय के अनुपात से कर—हमारे देश में विवाहों तथा सहभोजों पर करोड़ों रुपया प्रति वर्ष व्यय किया जाता है। यदि हर्ष और उल्लास के इन अवसरों पर नगर-पालिका भी अपने नागरिकों से कहे कि उसे कुछ 'कर' दिया जाय तो यह कोई अनुचित माँग नहीं होगी। इन अवसरों पर नगर-पालिकाओं के कर्मचारियों विशेषकर भंगियों इत्यादि को अधिक काम करना पड़ता है। इसलिये उचित ही है कि ऐसे लोगों से म्युनिसिपल कर वसूल किया जाय।

३. नौकर रखने पर कर—नगरों में प्रत्येक ऐसे परिवार के लिये जो अपने यहाँ नौकरों से काम लेता है, अनिवार्य होना चाहिए कि वह अपने नौकरों का नाम व पता नगर-पालिका के कार्यालय में दर्ज करायें, और प्रति नौकर के हिसाब से एक बढ़ती हुई दर के अनुसार नगर-पालिकाओं को टैक्स दें। इससे नौकरों के चरित्र के संबन्ध में भी जाँच पड़ताल हो जायगी और आए दिन होने वाली घरों में चोरियों की संख्या कम हो जायगी।

४. सिनेमा के विज्ञापनों पर कर।

५. म्यूनिसिपल धन्धों जैसे सिनेमा, थियेटर, बैङ्क, डेयरी, स्टोर, सार्वजनिक स्नानागार, बसें, ट्राम इत्यादि चलाकर उनसे आय।

६. प्रान्तीय सरकारों से अधिक सहायता की माँग।

७. विनोद (Entertainment.) तथा जुए पर लगाये हुये प्रान्तीय करों में नगर-पालिकाओं द्वारा निश्चित भाग की माँग।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि हमारे देश की नगर-पालिकायें इन सभी आय के साधनों की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करें तो उनकी वार्षिक आय में भारी बढ़ोत्तरी हो सकती है और वह अपने नागरिकों की अधिक सेवा कर सकती है।

नगर-पालिकाओं के अधिकार

इसी अध्याय में हमने नगर-पालिकाओं के कर्त्तव्यों का विवरण दिया है। इन कर्त्तव्यों को पूर्ण करने के लिये नगर-पालिकाओं को कानून द्वारा विशेष प्रकार के अधिकार दिये जाते हैं। उदाहरणार्थ—प्रत्येक नगर-पालिका अपने नागरिकों पर कई प्रकार के कर लगाती है। वह नगर में जायदाद इत्यादि बनाने के लिये विशेष नियम बनाती है। प्रत्येक नागरिक को नया मकान या दुकान बनाने या अपनी पुरानी सम्पत्ति में परिवर्तन करने के लिये नगर-पालिका की स्वीकृति लेनी पड़ती है। नगर का स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये प्रत्येक नगर-पालिका को विशेष अधिकार दिये जाते हैं। जैसे अशुद्ध, गले-सड़े, बीमारी फैलाने वाले, मिलावटी पदार्थों की रोक-थाम करने का अधिकार, हलवाइयों इत्यादि को आदेश देने का अधिकार कि वह हानि-कारक पदार्थों को न वेचें और कीटाणुओं से अपने पदार्थों की रक्षा करने के लिये सफाई व जाली की अलमारियों इत्यादि का समुचित प्रबन्ध करें इत्यादि। कुछ विशेष प्रकार के दूषित जैसे वैश्यागमन इत्यादि व्यापारों को रोक-थाम के लिये भी नगर-पालिकायें नियम बनाती हैं। कारखाने, मादक वस्तुएँ, जहरीले पदार्थ, शीघ्र आग पकड़ने वाली चीजें जैसे पेट्रोल, मिट्टी का तेल, सिनेमा-फिल्म इत्यादि के नियंत्रण के लिये भी नगर-पालिकाओं को नियम बनाने पड़ते हैं।

सरकार की ओर से नगर-पालिकाओं को ऐसे नागरिकों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने का भी अधिकार होता है जो उसके नियमों को भङ्ग करें, सार्वजनिक स्थानों पर गंदगी फैलाये, अपने मकानों में उचित सफाई का प्रबन्ध न रखें, म्यूनिसिपल सम्पत्ति का अनधिकार उपयोग करें इत्यादि।

नगर-पालिकाओं की शासन व्यवस्था

नगर-पालिका का शासन प्रबन्ध सदस्यों तथा बोर्ड के कर्मचारियों द्वारा किया जाता है। इस दशा में, नगर-पालिका के अध्यक्ष तथा ऐक्जीक्यूटिव आफिसर अथवा सेक्रेटरी को विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं। नगर का शासन प्रबन्ध विभिन्न विभागों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इन विभागों में निम्न विभाग मुख्य हैं:—

१. शिक्षा विभाग—यह विभाग एक शिक्षा सुपरिन्टेंडेंट के अधिकार में रहता है। इस विभाग का मुख्य कार्य लड़के व लड़कियों की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध करना होता है। एक विशेष आयु तक के बच्चों के लिये प्रायः प्रत्येक नगर-पालिका में निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था होती है। शिक्षा विभाग नगर की पुस्तकालयों व वाचनालयों की भी देखभाल करता है तथा उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

२. इंजीनियरिंग विभाग—यह विभाग एक सुयोग्य म्युनिसिपल इंजीनियर के आधीन होता है। इस विभाग का मुख्य कार्य सड़कों, गलियों, नालियों, विश्रामघरों, अपाहिज घरों, तालाबों, बाजारों, पाठशालाओं तथा अन्य सार्वजनिक उपयोग के भवनों का निर्माण तथा उनकी देख-रेख करना होता है।

३. चुंगी विभाग—यह विभाग एक मुख्य चुंगी अधिकारी के आधीन कार्य करता है। नगर के चारों ओर अनेक चुंगी वसूल करने के स्थान होते हैं। उन स्थानों की देख-रेख करना तथा ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करना जो चुंगी न दें, इस विभाग का मुख्य कार्य होता है।

४. पानी व बिजली विभाग—इस विभाग का मुख्य कार्य नगर में पानी व बिजली की उचित व्यवस्था करना होता है।

५. स्वास्थ्य विभाग—यह विभाग एक स्वास्थ्य अधिकारी के आधीन कार्य करता है। प्रत्येक नगर-पालिका में अनेक सफाई-निरीक्षक (Sanitary Inspectors), टीके लगाने वाले वैक्सीनेटर (Vaccinators), इत्यादि रखे जाते हैं। चिकित्सालयों का उचित प्रबंध भी इसी विभाग द्वारा होता है।

इन विभागों के अतिरिक्त प्रत्येक नगर-पालिका अपने कार्य की दृष्टि से और भी कई प्रकार के विभागों का संगठन करती है। उदाहरणार्थ—बहुत-सी नगर-पालिकाओं में रोशनी-विभाग, डेयरी-विभाग, यातायात-विभाग इत्यादि का संगठन किया जाता है। इन विभिन्न विभागों की देख-भाल के लिये नगर-पालिका के सदस्य उप-समितियों का चुनाव करते हैं, जैसे शिक्षा-समिति, स्वास्थ्य-समिति, चुंगी-समिति, मार्केट-समिति, निर्माण व बिलडिंग समिति, भूमि व जायदाद-समिति, पानी व बिजली समिति इत्यादि। इन समितियों में

नगर-पालिकाओं के सदस्यों के अतिरिक्त बाहर के व्यक्ति भी सहायक सदस्यों के रूप में मनोनीत किये जाते हैं। उपसमितियाँ अपने अपने कार्य का विवरण नगर-पालिका को देती हैं। नगर-पालिकाओं का अधिकतर कार्य इन्हीं उपसमितियों द्वारा संपन्न किया जाता है।

नगर-पालिकाओं के कार्य में प्रांतीय सरकार का हस्तक्षेप

एक मुख्य कारण जिससे नगर-पालिकाएँ अपने कार्य क्षेत्र में अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकी हैं, यह है कि प्रांतीय सरकारों द्वारा उनके कार्य में अधिक हस्तक्षेप किया जाता है। हमारे प्रांत के संशोधित म्यूनिसिपल ऐक्ट में इस बात का प्रबन्ध किया गया है कि प्रांतीय सरकार के प्रतिनिधि कलक्टर तथा कमिश्नर, नगर-पालिकाओं के काम में अधिक हस्तक्षेप न करें। इसी दृष्टि से इस कानून में कहा गया है कि यदि किसी समय कलक्टर या कमिश्नर नगर-पालिका के किसी निर्णय को स्वीकार न करें या उसके कार्य में हस्तक्षेप करना चाहें तो उन्हें प्रांतीय सरकार को अपने कार्य का औचित्य समझाना होगा।

संशोधित कानून की यह धारा पहिले कानून में भारी परिवर्तन की द्योतक है। १९१६ के म्यूनिसिपल ऐक्ट के आधीन कलक्टर तथा कमिश्नर नगर-पालिकाओं के काम में कभी भी हस्तक्षेप कर सकते थे। वे कमेटी के किसी भी निश्चय को रद्द कर सकते थे। प्रत्येक प्रस्ताव पर कार्य करने के लिये उनकी स्वीकृति आवश्यक थी। परन्तु संशोधित कानून में कलक्टर तथा कमिश्नर के हाथ से ऐसी बहुत सी शक्तियाँ ले ली गई हैं। नगर-पालिकाओं के काम में हस्तक्षेप करने का अधिकार अब केवल प्रांतीय सरकार को प्राप्त है। प्रांतीय सरकार यदि यह समझे कि कोई नगर-पालिका अपना कार्य ठीक प्रकार से नहीं कर रही है तो वह उसे भंग कर सकती है, उसके लिये चुनाव किये जाने की आज्ञा दे सकती है अथवा नगर-पालिका का प्रबंध किन्हीं ऐसे व्यक्ति के हाथ में दे सकती है जिन्हें वह ऐसा काम करने के लिये उपयुक्त समझे। अध्यक्ष तथा ऐसे सदस्यों को अपने पद से अलग करने का अधिकार भी प्रांतीय सरकार को प्राप्त है जो अपने पद का उचित उपयोग न कर, नगर-पालिका के कार्य में गड़बड़ फैलाएँ। इस प्रकार के अधिकार प्रांतीय

सरकार के हाथ में रखे जाने उचित ही हैं, कारण अभी तक हमारे देश में जनता अपने कर्तव्यों को उचित प्रकार से नहीं समझती है। जब तक हमारे देश की जनता प्रजातंत्रिक संस्थाओं के कार्य में अधिक अनुभव प्राप्त नहीं कर लेती, उसके ऊपर किसी न किसी प्रकार का नियन्त्रण नितांत आवश्यक है।

छावनी बोर्डों का शासन प्रबन्ध
(Administration of Cantonment Boards)

छावनियाँ उन क्षेत्रों को कहा जाता है जहाँ भारत सरकार की सेना रहती है। ऐसे क्षेत्रों में असैनिक जनता भी रहती है, परन्तु मुख्यतः वह ऐसा व्यापार करती है जिसका सेना की आवश्यकताओं से सम्बन्ध होता है। छावनियों का प्रबन्ध प्रांतीय सरकार के आधीन न रहकर, केन्द्रीय सरकार के आधीन होता है। उनके नागरिक प्रबन्ध के लिये जो समिति चुनी जाती है उसमें अधिकतर सेना के अधिकारी मनोनीत किये जाते हैं। कुछ सदस्य असैनिक जनता के प्रतिनिधि भी होते हैं परन्तु बोर्ड का अध्यक्ष, सेना का एक उच्च अधिकारी ब्रिगेडियर अथवा कम्पनी कमांडर होता है और सेना की सुविधा तथा आवश्यकताओं को ही बोर्ड के कार्यक्रम में महत्ता दी जाती है। अंग्रेजों के काल में छावनियों के प्रबन्ध में असैनिक जनता के प्रतिनिधियों को विशेष अधिकार प्राप्त नहीं थे, परन्तु अब हमारी सरकार उनके अधिकारों में शनैः शनैः वृद्धि कर रही है।

छावनी बोर्डों को वही सब काम करने पड़ते हैं जो नगर-पालिकाएँ करती हैं। उनकी कार्य-प्रणाली तथा आय के साधन भी प्रायः वैसे ही होते हैं।

बन्दरगाहों का शासन प्रबन्ध (Port Trusts)

बंदरगाहों के प्रबन्ध के लिये भी छावनियों की भाँति विशेष व्यवस्था की आवश्यकता होती है। बन्दरगाहों पर सवारियों तथा सामान के आयात व निर्यात का काम होता है। इस कारण बन्दरगाहों के प्रबन्धकों को नावों, छोटे जहाजों, माल उतारने के लिए क्रेनों, गोदामों, मजदूरों तथा इसी प्रकार की

अनेक सुविधाओं का प्रबंध करना पड़ता है। यह प्रबंध एक विशेष समिति द्वारा किया जाता है जिसमें कुछ सदस्य कार्पोरेशन के प्रतिनिधि होते हैं, कुछ सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं तथा कुछ व्यापारिक संस्थाओं के प्रतिनिधि होते हैं। हमारे देश में तीन पोर्ट ट्रस्ट बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास में हैं। इन पोर्ट ट्रस्टों को माल के आयात व निर्यात सम्बन्धी कार्य के अतिरिक्त सफाई, स्वास्थ्य, रोशनी तथा बन्दर में काम करने वाले मजदूरों की भलाई सम्बन्धी अनेक वैसे ही काम करने पड़ते हैं जैसे म्युनिसिपैलटियाँ करती हैं।

टाउन तथा नोटिफाइड एरिया कमेटियाँ

हमारे प्रांत के उन क्षेत्रों के म्यूनिसिपल प्रबध के लिए जिनकी जनसंख्या २०,००० से कम है; टाउन एरिया तथा नोटिफाइड एरिया कमेटियाँ हैं। प्रांतीय सरकार को अधिकार है कि वह किसी भी ऐसे क्षेत्र को नोटिफाइड एरिया या टाउन एरिया अथवा म्यूनिसिपल कमेटी के अधिकार क्षेत्र में दे दे जिसे वह उचित समझे।

टाउन एरिया तथा नोटिफाइड एरिया कमेटियों को वही सब काम करने पड़ते हैं जो बड़े नगरों में नगर-पालिकाएँ करती हैं। वह सड़कों का निर्माण करती हैं, स्वास्थ्य तथा सफाई सम्बन्धी कार्य करती हैं, कुओं व तालाबों की देखभाल करती हैं। पीने का पानी, रोशनी, बिजली, शिक्षा तथा इसी प्रकार सार्वजनिक सुविधाएँ प्रदान करने के कार्य करती हैं। इन कमेटियों में सदस्यों की संख्या ५ और ७ के बीच में रहती है। इनमें अधिकतर सदस्य निर्वाचित होते हैं परन्तु कुछ सदस्य प्रांतीय सरकार द्वारा भी मनोनीत किये जाते हैं। नगर-पालिकाओं की अपेक्षा नोटिफाइड तथा टाउन एरिया कमेटियों को कम अधिकार प्राप्त होते हैं, उनके कार्य में कलक्टर तथा कमिश्नर अधिक हस्तक्षेप कर सकते हैं, तथा उनकी आमदनी के स्रोत भी कम होते हैं। उनकी आर्थिक सहायता डिस्ट्रिक बोर्ड तथा प्रांतीय सरकार द्वारा की जाती है, कुछ थोड़े से कर भी वह स्वयं लगा सकती हैं।

हमारे प्रांत में इस प्रकार की कमेटियों की संख्या बराबर घटती जा रही

हैं कारण, बहुत सी टाउन तथा नोटिफाइड एरिया कमेटियों को नगर-पालिकाओं का पद दे दिया गया है। सन् १९४९-५० में ३४ नोटिफाइड तथा टाउन एरिया कमेटियों को या तो नगर-पालिकाओं में मिला दिया गया या उन्हें स्वयं नगर-पालिकाओं का अधिकार प्रदान कर दिया गया। सन् १९५० में हमारे प्रान्त में केवल ३८ नोटिफाइड एरिया कमेटियाँ शेष रह गईं थीं।

जिला मंडलियाँ

वह कार्य जो नगरों में म्यूनिसिपल बोर्डों द्वारा संपन्न किये जाते हैं, ग्राम्य क्षेत्रों में डिस्ट्रिक्ट बोर्डों द्वारा किये जाते हैं। आसाम को छोड़कर भारत के शेष सब प्रांतों में जिला मंडलियों की व्यवस्था है। जिला मंडली का अधिकार क्षेत्र जिले की सीमा के साथ साथ होता है। पंजाब और उत्तर प्रदेश को छोड़ कर जिला मंडली के आधीन तालुका बोर्ड तथा सर्किल बोर्ड होते हैं। बंगाल, मद्रास तथा उड़ीसा में उन्हें यूनियन कमेटी कहा जाता है। कहीं-कहीं तालुका बोर्डों के आधीन स्थानीय बोर्ड होते हैं जो ग्राम पंचायतों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। उनकी अधिकार सीमा एक गाँव या २ से ४ गाँव तक सीमित रहती है। हमारे अपने प्रांत में जिला मंडलियों के आधीन तालुका या स्थानीय बोर्डों की व्यवस्था नहीं है। उनके स्थान पर हमारे प्रांत में तहसील कमेटियाँ तथा ग्राम पंचायतें हैं। जिला मंडलियों की संख्या हमारे प्रान्त में ५१ है।

जिला मंडलियों के आवश्यक कार्य

जिला मंडलियाँ नगर-पालिकाओं के समान ही काय करती हैं। उत्तर-प्रदेश के जिला-मंडली-कानून के आधीन उनके कार्यों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) आवश्यक कार्य और (२) ऐच्छिक कार्य। आवश्यक कार्य वह हैं जो ग्राम निवासियों के स्वास्थ्य तथा रक्षा के लिये आवश्यक है। ऐच्छिक कार्य वह है जो ग्रामिक क्षेत्र के नागरिकों को जीवन की सुविधायें तथा एक उल्लासपूर्ण जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान कर सकते हैं। जिला मंडलियों के आवश्यक कार्यों को हम निम्न चार भागों में विभक्त कर सकते हैं।

१. सार्वजनिक स्वास्थ्य—औषधालयों व चिकित्सालयों का स्थापित करना तथा उनका काम चलाना; सार्वजनिक कुओं व तालाबों का बनवाना तथा

उनकी मरम्मत करना, संक्रामक रोगों जैसे हैजा, प्लेग इत्यादि की रोक-थाम करना, गाँवों के लिये शिक्षित दाइयों का प्रबन्ध करना, जनता में स्वास्थ्य तथा सफ़ाई संबंधी शिक्षा का प्रसार करना और चेचक के टीके का प्रबन्ध करना।

२. सार्वजनिक रक्षा—भयानक तथा दूषित व्यापारों की रोक-थाम करना, पीने के पानी को दूषित होने से बचाना, कुओं तथा तालाबों में लाल दवाई के प्रयोग के द्वारा उनके पानी की जहरीले कीटाणुओं से रक्षा करना, टूटे-फूटे मकानों को गिराना इत्यादि।

३. सार्वजनिक सुविधाएँ—सड़क, पुल व गाँव के रास्तों को बनवाना, तथा उनकी देखभाल व मरम्मत कराना, पेड़ लगवाना, अपाहिज घरों तथा अनाथालयों का प्रबन्ध करना, बाजारों, हाटों, पैठों तथा मेलों का प्रबन्ध करना, पशु व मानव चिकित्सालयों की स्थापना करना, विश्राम गृहों व डाक बंगलों का बनवाना, जनता की सुविधा के लिये वाटिका व बागों की स्थापना करना, बिजली व नल के पानी का प्रबन्ध करना, नदी पार करने के लिये नावों का प्रबन्ध करना, काँजी हाउस बनवाना, कृषि, व्यापार व घरेलू उद्योग धन्धों की उन्नति के लिये प्रदर्शनी व मेले इत्यादि लगाना।

४. सार्वजनिक-शिक्षा—लड़के व लड़कियों की प्रारंभिक शिक्षा के लिये ग्रामीण क्षेत्रों में पाठशालाओं की स्थापना करना, विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ प्रदान करना, शिक्षकों की ट्रेनिंग के लिये केन्द्र खोलना, शिक्षा कमेटियों द्वारा पाठशालाओं के निरीक्षण का प्रबन्ध करना तथा वाचनालयों तथा घूमने-फिरने वाले पुस्तकालयों का प्रबन्ध करना, औद्योगिक तथा कृषि शिक्षा प्रदान करने के लिये शिक्षालयों का प्रबन्ध करना।

जिला मंडलियों के ऐच्छिक कार्य

इन कार्यों में हम निम्नलिखित कार्य सम्मिलित कर सकते हैं—नई सड़कें बनाने के लिये भूमि ग्रहण करना, अस्वास्थ्यप्रद स्थानों को स्वास्थ्यप्रद बनाना, ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पत्ति तथा मृत्यु के आँकड़े रखना, ग्रामीण जनता को यातायात की सुविधा प्रदान करने के लिये मोटर, बस, ट्राम गाड़ियाँ तथा छोटी रेलगाड़ियों का प्रबन्ध करना, सिंचाई संबंधी प्रबन्ध करना, ग्रामीण जनता के मनोरंजन तथा शिक्षा के लिये, रेडियो, सिनेमा, चलचित्र तथा

ड्रामा का प्रबन्ध करना, पंचायत बनाना तथा पंचायत घरों का निर्माण करना इत्यादि ।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में आय के साधनों की कमी के कारण जिला मण्डलियाँ ऐच्छिक कार्यों का तो कहना ही क्या, अपने आवश्यक कार्य भी पूरे नहीं कर पातीं । जिला मंडलियों के संरक्षण में जो सड़कें, रास्ते, गलियाँ इत्यादि होती हैं उनकी दशा देखते ही बनती है । ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, सफाई व चिकित्सा का भी कोई संतोषजनक प्रबन्ध नहीं होता । समाज के पिछड़े हुए वर्ग जैसे हरिजन तथा स्त्रियों की शिक्षा के लिये जिला मंडलियाँ किसी प्रकार का प्रबन्ध नहीं करतीं । भारतवर्ष में शायद ही कोई ऐसे गाँव हों जहाँ जिला मंडली की ओर से पंचायत घर, उद्यान, वाटिका, थियेटर-हाल, क्लब या आमोद-प्रमोद के केन्द्रों का प्रबन्ध किया जाता हो । दूसरे सभ्य देशों में ग्रामीण क्षेत्रों की शासन व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया जाता है । नगरों से भी अधिक उनको स्वास्थ्य, सफाई तथा आमोद-प्रमोद के केन्द्रों में परिवर्तित करने का सतत प्रयत्न किया जाता है । नगर के लोग शहर के घृणास्पद जीवन से तंग आकर प्रत्येक अवकाश के समय गाँवों की ओर ही अपने जीवन की कुछ सुखपूर्ण घड़ियाँ व्यतीत करने के स्वप्न देखते हैं । इंगलैंड में प्रतिष्ठित घरानों के व्यक्ति--बड़े बड़े सरकारी कर्मचारी, मन्त्री तथा हाउस-आफ लार्डस् के सदस्य, ग्रामीण क्षेत्रों में अपने आराम तथा स्वास्थ्य लाभ के लिये कोठियाँ इत्यादि बनाते हैं । वहाँ कोई भी ऐसा गाँव देखने में नहीं मिलता जिसमें अपना क्लब, ड्रामा-सोसायटी, पंचायत-घर, पुस्तकालय, वाचनालय अथवा कोई कला केन्द्र देखने को न मिले । हमारे देश में सर्व-प्रथम तो जिला मंडलियों के आय के साधन बहुत कम हैं जिसके कारण स्थानीय संस्थायें अपने नागरिकों की सुविधा के लिये कुशल प्रबन्ध नहीं कर सकतीं, तिस पर हमारी जनता में नागरिक-शिक्षा का इतना प्रभाव है कि वह अपने कर्त्तव्यों को भलीभाँति नहीं समझतीं और जिला मंडलियों के सदस्य जनता की सेवा करने के स्थान पर अपनी स्वार्थ सिद्धि के साधनों को अधिक महत्व देते हैं । इसलिये जिला मण्डलियों के शासन स्तर को ऊँचा उठाने के लिये आवश्यक है कि हम (१) जिला-मंडलियों के आय के साधनों में

वृद्धि करें, (२) उनके संगठन को अधिक कुशल तथा शक्तिशाली बनाये और (३) जनता को अधिक से अधिक नागरिक शिक्षा प्रदान करें।

जिला मण्डलियों का संगठन

निर्माण—उत्तर प्रदेश की जिला मण्डलियों की व्यवस्था सन् १६२२ के जिला मंडलियों के कानून के आधीन निर्धारित थी, परन्तु सन् १६४७ और १६४८ में इस कानून में कुछ आवश्यक संशोधनों द्वारा इस बात का प्रबन्ध कर दिया गया कि गाँवों की वयस्क जनता को मताधिकार मिल सके जिला मंडली में एक कार्यपालिका का निर्माण हो सके, जिला मंडली के अध्यक्ष का चुनाव बोर्ड के सदस्यों के स्थान पर सीधा जनता द्वारा किया जा सके, तथा गाँवों के बीच से भी नगरों की भाँति दूषित पृथक निर्वाचन प्रणाली का अन्त हो सके। विदित है कि जिला मंडलियों के कानून में इस प्रकार के संशोधन उसी आधार पर किये गये हैं जैसे वह नगर-पालिकाओं के संगठन में किये गये हैं तथा जिनका वर्णन हम पीछे दे चुके हैं। संशोधित कानून में मुसलमानों तथा हरिजनों के अधिकारों की रक्षा के लिए सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था कायम रक्खी गई है। ऐसा इसलिये किया गया कि जिस समय जिला मंडलियों का संशोधित कानून पास किया गया था उस समय तक हमारे देश की संविधान सभा ने मुसलमानों के लिये सुरक्षित स्थानो की प्रथा को निषेध नहीं ठहराया था। परन्तु अब स्वतन्त्र भारत के धर्म निरपेक्ष स्वरूप को कायम रखने के लिये यह आवश्यक हो गया है कि केवल धर्म के आधार पर किसी जाति को विशेष सुविधाएँ न दी जायँ। हमारे प्रांत की सरकार इसलिये नगर-पालिकाओं तथा जिला मंडलियों के कानूनों में और आवश्यक परिवर्तन करने का शीघ्र ही विचार कर रही है।

सदस्य संख्या—सन् १६२२ के कानून के आधीन हमारे प्रान्त में जिला मंडलियों के सदस्यों की संख्या १५ और ४० के बीच निश्चित की जाती थी। संशोधित कानून में यह संख्या बढ़ाकर ३० और ८० के बीच कर दी गई है। एक और भारी परिवर्तन पहले कानून में यह किया गया है कि मनोनीत सदस्यों की प्रथा को तोड़कर उसके स्थान पर कोओप्टेड सदस्यों की प्रथा को चालू किया गया है। १६२२ के कानून के आधीन प्रत्येक

जिला मण्डली में ३ सदस्य प्रान्तीय सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते थे। संशोधित कानून में इन मनोनीत सदस्यों के स्थान पर इस बात का प्रबन्ध किया गया है कि प्रान्तीय सरकार जिला मंडलियों को अपने चुने हुए कुल सदस्यों की संख्या का अधिक से अधिक दसवाँ भाग सदस्य, कोऑप्टेड सदस्यों के रूप में निर्वाचित करने का अधिकार दे सकती है। इन सदस्यों में, कानून में कहा गया है, कि कम से कम २ महिलाएँ तथा १ ऐसी जाति का व्यक्ति होना चाहिये जिसे आम चुनाव में प्रतिनिधित्व न मिला हो। तीसरा संशोधन कानून में यह किया गया है कि जिला मंडली का दिन प्रति दिन का कार्य चलाने के लिये एक कार्य-पालिका का आयोजन किया गया है। इस कमेटी के सदस्यों में जिला मंडली का उपाध्यक्ष, ३ दूसरे जिला मडली के सदस्य तथा सब-कमेटियों के प्रधान होंगे। जिला मंडली का मंत्री इस कमेटी का मन्त्री होगा। यह कमेटी वह सारे कार्य भी करेगी जो पहिले राजस्व कमेटी करती थी।

अध्यक्ष (President)—जिला मंडली के अध्यक्ष के निर्वाचन के संबन्ध में भी संशोधित कानून में आमूल परिवर्तन किया गया है। सन् १९२२ के कानून के आधीन अध्यक्ष का चुनाव जिला मडली के सदस्यों द्वारा किया जाता था। यह सदस्य अध्यक्ष को जब चाहते, अविश्वास का प्रस्ताव करके निकाल सकते थे। इस प्रथा के आधीन जिला मडली साजिश तथा दलबन्दी का अखाड़ा बनी रहती थी और सदस्य एक अध्यक्ष को निकाल कर दूसरे व्यक्ति को उसके स्थान पर रखने का निरंतर प्रयत्न करते रहते थे। संशोधित कानून में इसलिये इस बात का आयोजन किया है कि जिला मंडली के अध्यक्ष का चुनाव सीधा जनता द्वारा किया जाय। इस चुनाव के लिये जिले में रहने वाला प्रत्येक वह व्यक्ति उम्मीदवार के रूप में खड़ा हो सकता है जिसका नाम मतदाता सूची में दर्ज हो तथा जिसकी आयु कम से कम ३० वर्ष हो। अध्यक्ष के पद की अवधि ३ वर्ष रखी गई है परन्तु जब तक नये अध्यक्ष का चुनाव नहीं हो जाता, पहिला व्यक्ति ही उस पद पर कार्य करता रहेगा।

अविश्वास के प्रस्ताव के सम्बंध में जिला मंडलियों के संशोधित कानून

में उसी प्रकार का प्रबंध किया गया है जैसा नगर-पालिकाओं के साथ। यदि कोई जिला मंडली अपने अध्यक्ष में अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे और अध्यक्ष को यह विश्वास हो कि जनता उसके साथ है तो वह प्रान्तीय सरकार से प्रार्थना कर सकता है कि जिला मंडली को भङ्ग कर दिया जाय और नये चुनाव किये जायँ। इस प्रार्थना को स्वीकार या अस्वीकार करने का अन्तिम अधिकार प्रांतीय सरकार को ही है, परन्तु साधारणतया वह अध्यक्ष की सम्मति का पालन करेगी। आम चुनाव के पश्चात् यदि दूसरी चुनी हुई जिला मंडली भी अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे तो तीन दिन के अन्दर-अन्दर अध्यक्ष को अपने पद से त्याग पत्र देना होगा। यदि वह ऐसा न करे तो प्रांतीय सरकार उसे उसके पद से हटा सकती है। परन्तु यदि प्रान्तीय सरकार अध्यक्ष की बात न माने और अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाने के पश्चात् जिला मंडली को भङ्ग न करे तो कानून में कहा गया है कि अध्यक्ष को तीन दिन के अन्दर अपने पद से अलग हो जाना होगा। इस प्रकार खाली हुये अध्यक्ष पद के रिक्त स्थान के लिये दोबारा सीधा चुनाव किया जायगा, और 'उसमें पहले अध्यक्ष को यह अधिकार होगा कि वह चुनाव में खड़ा हो सके, परन्तु यदि अध्यक्ष अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाने के पश्चात्, प्रान्तीय सरकार के कहने पर भी तीन दिन के अन्दर अपना पद त्याग न करे, तो उसे दोबारा होने वाले चुनाव में खड़ा होने का अधिकार नहीं होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि संशोधित कानून के अनुसार जिला मंडलियों के मुख्य अधिकारी एवं कार्यकर्ता-अर्थात् अध्यक्ष को सदस्यों के षड्यंत्रों से दूर रखने का समुचित प्रबन्ध किया गया है।

अवधि—जिला मंडली की कार्य अवधि पहिले के समान ही तीन वर्ष रखी गई है, परन्तु प्रांतीय सरकार को अधिकार दिया गया है कि यदि वह उचित समझे तो उसे पहिले भी भंग कर सकती है अथवा उसकी अवधि को बढ़ा सकती है।

चुनाव—जैसा पहिले बताया जा चुका है, चुनावों में मतदाताओं की योग्यता के संबंध में, कानून में कहा है कि यह योग्यताएँ वही होंगी जो प्रांतीय विधान सभा के निर्वाचकों के लिये निश्चित हैं। नये संविधान में

प्रत्यक्ष रूप से कहा गया है कि भारत के प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को चुनावों में भाग लेने का अधिकार होगा। इसलिये जिला मंडलियों के चुनावों में भी गाँवों में रहने वाले प्रत्येक बालिग स्त्री व पुरुष को भाग लेने का अधिकार प्राप्त होगा।

पदाधिकारी—जिला मण्डली का सबसे मुख्य पदाधिकारी अध्यक्ष होता है। उसकी सहायता के लिये एक उच्च (सीनियर) तथा एक कनिष्ठ (जूनियर) अध्यक्ष की व्यवस्था होती है। यह दोनों सदस्य अध्यक्ष की अनुपस्थिति में काम करते हैं। इन तीन निर्वाचित पदाधिकारियों के अतिरिक्त जिला मण्डली के दिन-प्रति-दिन प्रबंध सम्बन्धी काम चलाने के लिये अनेक वैतनिक कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं। इनमें निम्न मुख्य होते हैं— (१) मन्त्री, (२) इंजीनियर, (३) स्वास्थ्य अधिकारी, (४) मुख्य-सफाई निरीक्षक, (५) शिक्षा अधिकारी।

जिला मण्डलियों के विधान में इस बात की व्यवस्था है कि मण्डली के अधिवेशनों में अध्यक्ष की आज्ञा से जिले के कुछ सरकारी अधिकारी जैसे सिविल सर्जन, एक्जीक्यूटिव इंजीनियर, इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स या कोई और ऐसे ही अधिकारी जिनको प्रांतीय सरकार इस बात की आज्ञा दे, सम्मिलित हो सकते हैं। इस प्रकार का प्रबन्ध इस दृष्टि से किया गया है जिससे इन विशेषज्ञों की राय से जिला-मण्डली के कार्य में लाभ उठाया जा सके। परन्तु जहाँ इन अधिकारियों को मण्डली के अधिवेशनों में उपस्थित रहने तथा बोलने का अधिकार दिया गया है वहाँ उन्हें किसी प्रकार का मत देने का अधिकार नहीं दिया गया है।

जिला मण्डलियों की कमेटियाँ

नगर-पालिकाओं की भाँति जिला मंडलियाँ भी अपने कार्य का संचालन विशेष कमेटियों द्वारा करती हैं। पूरी जिला मंडली का कार्य केवल नीति का संचालन करना होता है। शेष कार्य मंडली की कमेटियों द्वारा पूरा किया जाता है। प्रत्येक जिला मंडली में निम्न कमेटियाँ मुख्य रूप से व्यवस्थित की जाती हैं—

(१) राजस्व-कमेटी—जिला-मंडली की यह सबसे मुख्य कमेटी समझी

जाती है। यही कमेटी बजट बनाती है एवं आय व खर्च का हिसाब रखती है। इस कमेटी के ६ सदस्य होते हैं। जिला मंडली का अध्यक्ष, इस कमेटी का अध्यक्ष तथा उसका मन्त्री इस कमेटी का मन्त्री होता है। मंडली की कमेटियों में बाहर के सदस्य भी लिये जा सकते हैं परन्तु उनकी संख्या एक-तिहाई से अधिक नहीं हो सकती।

तहसील-कमेटी—जिला मंडली के आधीन प्रत्येक तहसील के लिये एक तहसील कमेटी होती है। यह कमेटी तहसील से सम्बन्ध रखने वाले समस्त कार्यों को पूरा करने में मंडली की सहायता करती है। इस कमेटी के उस तहसील के निर्वाचित समस्त व्यक्ति सदस्य होते हैं। बाहर के लोग भी इस कमेटी में सहायक सदस्यों के रूप में मनोनीत किये जा सकते हैं।

शिक्षा-कमेटी—राजस्व-कमेटी के पश्चात् जिला मंडली की यह सबसे महत्त्वपूर्ण कमेटी होती है। शिक्षा सम्बन्धी विषयों में इस कमेटी को पूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं। चुनाव के पश्चात् यह कमेटी मंडली से स्वतन्त्र रहकर कार्य करती है। इसके १२ सदस्य होते हैं—८ जिला मंडली के सदस्य तथा ४ बाहर से लिये हुये सहायक सदस्य। अंतिम ४ सदस्यों में २ सदस्य प्रांतीय-शिक्षा विभाग के अधिकारी होते हैं, एक महिला तथा एक मुसलमानी मकतबों का प्रतिनिधि होता है। इस कमेटी का सभापति, कमेटी के सदस्य स्वयं निर्वाचित करते हैं। वह कोई सरकारी नौकर नहीं हो सकता। कमेटी के मन्त्री-पद पर जिले के डिप्टी-इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स कार्य करते हैं। जिले की ग्रामीण जनता की साधारण तथा औद्योगिक शिक्षा के लिये यही कमेटी उत्तरदायी होती है। इसके आधीन अनेक पाठशालायें तथा स्कूल कार्य करते हैं। प्राइवेट-स्कूलों को भी यह कमेटी आर्थिक सहायता प्रदान करती है।

इस कमेटी के निर्णय जिला-मण्डली के अधिवेशनों में केवल सूचनार्थ प्रस्तुत किये जाते हैं। मण्डली को उनमें परिवर्तन करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। मण्डली का अध्यक्ष भी शिक्षा-कमेटी के अध्यक्ष पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं रख सकता। शिक्षा कमेटी का अध्यक्ष स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है। वह जिला मण्डली के अध्यक्ष के मातहत रह कर कार्य नहीं करता।

जिला मण्डलियों के आय के साधन

जिला मंडलियों को अपना काम सुचारु रूप से चलाने के लिये, विधान द्वारा कुछ कर लगाने के अधिकार दिये गये हैं। इन करों के अतिरिक्त और भी कुछ स्रोतों से जिला मंडलियों को आय होती है। इन सब का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है :—

(१) भूमि कर पर जिला मण्डली का टैक्स—प्रान्तीय सरकार द्वारा जो मालगुजारी जमींदारों से वसूल की जाती है, उस पर जिला-मंडली का टैक्स लगाया जाता है। यह टैक्स प्रान्तीय सरकार द्वारा वसूल किया जाता है, परन्तु इसकी आय जिला मण्डलियों को दे दी जाती है। जिला-मण्डलियों की आय का यही सबसे मुख्य साधन है। पहिले इस टैक्स की दर १ आना रुपया थी परन्तु १९४८ के संशोधित कानून द्वारा यह बढ़ा कर लगभग २ आने रुपया कर दी गई है।

(२) हैसियत कर—गाँवों में रहने वाले जो व्यक्ति मालगुजारी नहीं देते तथा जिनकी वार्षिक आय २०० रुपये से अधिक होती है उन पर उनकी हैसियत के हिसाब से जिला मंडली कर लगा सकती है। परन्तु इस कर की दर रुपये में ४ पाई से अधिक नहीं हो सकती। ऐसी रुकावट इसलिए लगाई गई है जिससे जिला मंडलियाँ इनकम टैक्स की भाँति ही लोगों से कर वसूल न करने लगें।

(३) फैक्टरी कर—जो कारखाने जिला मंडली के अधिकार क्षेत्र में काम करते हैं उन पर वह उसी प्रकार टैक्स लगा सकती है जिस प्रकार नगर-पालिकाएँ अपने क्षेत्र में कारखानों से कर वसूल करती हैं।

(४) यातायात के साधनों जैसे गाड़ियों, बैल, ठेलों, लद्दू पशुओं पर कर।

(५) बाजार लगाने अथवा पैंठ इत्यादि खोलने पर कर।

(६) जिला मण्डली की जायदाद से आय।

(७) पशुओं की बिक्री पर कर।

(८) मेलों से आय।

(९) पुल पार करने पर टैक्स या नावों से होने वाली आय।
(१०) जिला मंडली की भूमि में उगने वाले पेड़ों व फलों इत्यादि की बिक्री से आय।
(११) भूमि की बिक्री से आय।
(१२) काँजी हाउस से आय।
(१३) दलालों, अढ़तियों तथा तौलने वालों पर लाइसेंस कर।
(१४) प्रान्तीय सरकार से आर्थिक सहायता।
(१५) ऋण।

जिला मंडलियों की आय के साधनों में वृद्धि के उपाय

नगर-पालिकाओं की भाँति भारतवर्ष में जिला मंडलियों की आय के साधन एकदम अपर्याप्त हैं। भारत की समस्त जिला मंडलियों की आय १५ करोड़ रुपये से अधिक नहीं है। इस आय का लगभग ४० प्रतिशत भाग आबवाब अर्थात् मालगुजारी पर जिला मंडली के टैक्स से वसूल होता है। दूसरे साधनों से आय बहुत कम होती है। जिला मंडली के आधीन क्षेत्रों का विस्तार देखते हुए उनके शासन प्रबंध के लिए यह आय बहुत कम है। जिला मंडलियाँ अपनी आय उन्हीं सब उपायों से बढ़ा सकती हैं जिनका वर्णन हमने नगरपालिकाओं की आय का वर्णन देते समय किया था। इसके अतिरिक्त मेले इत्यादि करके, प्रदर्शनियों की व्यवस्था द्वारा, पशुओं की बिक्री को प्रोत्साहन देकर, अपनी भूमि में कृषि के द्वारा अथवा फलों के पेड़ एवं इमारती लकड़ी इत्यादि लगाकर, डाक बंगलों, पिकनिक क्लब, विश्रांति गृह, बोट क्लब, डेयरी, पोल्ट्री फार्म, मोटर बस, छोटी रेलों इत्यादि की व्यवस्था के द्वारा भी जिला मंडलियों की आय में समुचित बढ़ोत्तरी की जा सकती है। हमारे देश में अनेक ऐसे सुन्दर तथा आकर्षक गाँव हैं जहाँ यदि जीवन की वर्तमान सुविधाओं का प्रबन्ध किया जा सके तो हजारों परिवार प्रति वर्ष कुछ समय के लिये, अपना अवकाश का समय व्यतीत कर सकते हैं। यदि ऐसे स्थानों पर डाक बंगलों, विशाल खेल के मैदान, बोट क्लब, शिकार के स्थानों, होटल, रैस्ट्रां, आने जाने आदि के साधनों इत्यादि का कुशल प्रबंध किया जा सके तो न केवल इससे स्थानीय संस्थाओं की आय में भारी बढ़ोत्तरी

हो सकती है वरन् नगर के थकान पूर्ण जीवन से भी लोग कुछ समय के लिए छुटकारा पाकर अपने जीवन में कुछ काल के लिये आनन्द और उल्लास का अनुभव कर सकते हैं। गङ्गा, यमुना व भारत की दूसरी नदियों के किनारे एवं प्रकृति के सौंदर्यमयी वातावरण के बीच पहाड़ों पर हमारे देश में सहस्त्रों ऐसे स्थान हैं, जहाँ इस प्रकार के आमोद प्रमोद के स्थान बनाये जा सकते हैं। आशा है हमारे देश की जिला मंडलियाँ, स्वतन्त्रता के वातावरण में इस ओर ध्यान देंगी और भारतीय नागरिक जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक सिद्ध होंगी।

ग्राम पञ्चायतें

जैसा हम पहले ही देख चुके हैं, भारतवर्ष में ग्राम पंचायतें आदि काल से ही चली आ रही हैं। सहस्त्रों वर्षों तक यह पंचायतें शासन की स्थिरता तथा समाज की कुशल व्यवस्था की आधार-शिला थीं, वह समस्त स्थानीय विवादों का चाहे वह सामाजिक हों, अथवा नैतिक, आर्थिक हों अथवा न्याय सम्बन्धी निर्णय करती थीं। वह केन्द्रीय सरकार से स्वतन्त्र रहकर कार्य करती थीं। केवल कर देने तथा सैनिक सहायता प्रदान करने के लिये वह केन्द्रीय सरकार के आधीन थीं। ब्रिटिश राज्य के आरंभ काल में ही इन पञ्चायतों का जीवन उस समय समाप्त हो गया, जब सरकार ने शासन तथा न्याय क्षेत्रों में केन्द्रीयकरण की नीति का अवलंबन कर लिया।

सन् १६०८ में प्रथम बार ब्रिटिश सरकार ने एक विकेन्द्रीयकरण कमीशन नियुक्त करके भारत में ग्राम पञ्चायतों को पुनर्जीवित करने की ओर एक निश्चित कदम उठाया। इस कमीशन की सिफारिशों के आधार पर विभिन्न प्रांतीय सरकारों ने अपने यहाँ ग्राम पञ्चायत ऐक्ट बनाये और सन् १६१२ में पञ्जाब में, सन् १६२० में उत्तर प्रदेश में, तथा इसके पश्चात् दूसरे सभी प्रांतों में ऐसे ऐक्ट पास कर दिये गये।

हमारे नव संविधान में ग्राम पञ्चायतों के सङ्गठन का वही प्राचीन आदर्श अपनाने का प्रयत्न किया गया है जो भारतीय इतिहास के स्वर्णिम् काल में लागू था, और इसी आधार पर राज्य की समस्त सरकारों को आदेश दिया

गया है, कि वह अपने अपने अधिकार क्षेत्र में शीघ्रातिशीघ्र इस प्रकार की ग्राम पञ्चायतों का सङ्गठन करें। इसी दृष्टि से हमारी देश की विभिन्न प्रांतीय सरकारों ने अपने पुराने ग्राम पंचायत कानूनों में संशोधन किया है। नये कानूनों में ग्राम पंचायतों के अधिकार अधिक विस्तृत कर दिये गये हैं, तथा उनका संगठन वयस्क मताधिकार के आधार पर किया गया है।

उत्तर प्रदेश में ग्राम पंचायतों का संगठन।

हमारे अपने प्रांत में ग्राम पंचायत संबंधी कानून दिसंबर सन् १९४७ में पास किया गया। इस कानून के अन्तर्गत ग्राम्य स्वराज्य की जो स्थापना की गई है उसकी रूप-रेखा नीचे दी जाती है :—

निर्माण—इस कानून के अन्तर्गत प्रत्येक ऐसे गाँव के लिये जिसकी जनसंख्या १००० से अधिक है, एक ग्राम सभा बनाई गई है। यदि इससे छोटे गाँव हैं तो दो तीन गाँवों को मिला कर एक ग्राम सभा बना दी गई है, परन्तु तीन मील से अधिक दूरी वाले गाँवों के लिये अलग सभा बनाई गई है। इस प्रकार यदि छोटे-छोटे गाँव एक दूसरे से दूर हैं तो आबादी कम होने पर भी उनमें अलग ग्राम सभाएँ बना दी गई हैं।

सदस्यता—इस सभा का सदस्य गाँव का प्रत्येक व्यक्ति—स्त्री और पुरुष जिसकी आयु २१ वर्ष से अधिक है, होता है। परन्तु पागल, दिवालिया भीषण अपराध में सजा पाये हुए अपराधी तथा सरकारी नौकरी करने वाले लोगों को इसकी सदस्यता के अधिकार से वंचित कर दिया गया है।

ग्राम पंचायत—ग्राम सभा अर्थात् गाँव के सभी बालिग स्त्री-पुरुष अपने गाँव का दिन-प्रति-दिन का प्रबंध करने के लिये एक कार्य कारिणी सभा का चुनाव करते हैं। यह कार्यकारिणी ग्राम पंचायत कहलाती है। ग्राम पंचायतों के पंचों की संख्या गाँव की जनसंख्या के आधार पर रक्खी गई है। यह संख्या गाँव सभा के सभापति तथा उपसभापति को छोड़ कर ३० और ५१ के बीच रक्खी गई है। सभापति तथा उपसभापति का चुनाव सीधा जनता द्वारा किया जाता है, पंचायत के सदस्यों द्वारा नहीं। सदस्यों के पद की अवधि ३ वर्ष निश्चित की गई है, परन्तु गाँव सभा के एक-तिहाई सदस्य प्रति वर्ष रिटायर हो जायेंगे और उनके स्थान पर नये चुनाव किये

जायेंगे। चुनावों में इस बात का प्रबंध किया गया है कि अल्पसंख्यक जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या उनकी आबादी के अनुपात से हो। परन्तु, हरिजनों के लिये यह नियम रक्खा गया है कि ग्राम पंचायतों के लिए जो प्रथम निर्वाचन होगा उसमें तो उनके सदस्य उनकी गाँव में संख्या के हिसाब से चुने जायेंगे परन्तु बाद में, उनके प्रतिनिधियों की संख्या प्रांतीय धारा सभा द्वारा निश्चित की जायगी। चुनाव प्रणाली संयुक्त रक्खी गई है अर्थात् हिंदू, मुसलमान, हरिजन, सिख, ईसाई सब मिल कर एक दूसरे को राय देते हैं। चुनावों में अल्पसंख्यक जातियों के लिये सीटें इसलिये सुरक्षित रक्खी गई हैं जिससे ग्राम के सभी वर्गों का पंचायत को विश्वास प्राप्त हो सके। सुरक्षित स्थान रखने पर भी पृथक निर्वाचन प्रणाली का अन्त कर दिया गया है। इससे गाँव के सभी व्यक्ति एक दूसरे के साथ मेल जोल के साथ रह सकेंगे।

पंचायतों के कार्य—ग्राम पंचायतों के मुख्य कार्य निम्निलिखित हैं :— सड़कें, पुल व पुलियाँ बनाना, चिकित्सा तथा सफाई का प्रबन्ध करना, अस्पताल व औषधालय, पाठशालाएँ, प्रायमरी स्कूल, व पुस्तकालय तथा वाचनालय खोलना, उद्योग धन्धों, तथा कृषि की उन्नति का प्रबन्ध करना, मेला, हाट व बाजार का लगवाना, पशुओं की चिकित्सा व उन्नति, स्वास्थ्य की उन्नति के लिये अखाड़े व खेल कूद का प्रबन्ध करना, जल की व्यवस्था करना, खाद इकट्ठा करने के लिये स्थान नियत करना, रास्तों के दोनों ओर पेड़ लगवाना, मवेशियों की नस्ल सुधारना, भूमि को समतल करना, स्वयंसेवक दल बनाना, रेडियो का प्रबन्ध करना, सब दलों में प्रेम भाव बढ़ाना तथा और इसी प्रकार का काम करना, जिनसे गाँव की जनता की भौतिक और नैतिक उन्नति हो सके।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ग्राम पंचायतों को वह सभी काम सौंपे गये हैं जो हमारे ग्रामीण जीवन को सुन्दर तथा समुन्नत बनाने के लिये आवश्यक हैं। ग्राम पंचायतें कृषि, व्यापार तथा उद्योग धन्धों की उन्नति के लिये भी सुरक्षित कार्य कर सकेंगी। वह सरकार के अन्य विभागों के कर्मचारियों की आलोचना तथा उनके विरुद्ध रिपोर्ट तथा लिखा पढ़ी भी कर सकेंगी।

ग्राम सभा की बैठकें—ऐक्ट में कहा गया है कि ग्राम सभा की वर्ष में कम से कम दो बैठकें हुआ करेंगी—एक खरीफ कटने पर, दूसरी रबी के बाद। खरीफ़ की मीटिंग में बजट अर्थात् आगामी वर्ष की आमदनी तथा खर्च के आँकड़े पेश किये जायेंगे। इस बजट को पास करने तथा उस पर बहस करने का अधिकार ग्राम सभा के सभी सदस्यों अर्थात् गाँव के प्रत्येक बालिग स्त्री और पुरुष को होगा। रबी की मीटिंग में पिछले साल के हिसाब पर विचार किया जायगा। इस मीटिंग में सदस्य यह पूछ सकेंगे कि रुपये का खर्च ठीक प्रकार से किया गया हैं अथवा नहीं, और क्या उसी प्रकार किया गया है जिस प्रकार गाँव सभा ने पहली मीटिंग में उसकी स्वीकृति दी थी। दोनों सभाओं में गाँवों के लोग अपनी ओर से प्रस्ताव पेश कर सकेंगे जिनमें वह गाँव की दशा सुधारने के लिये पंचों के सम्मुख अपनी योजना रख सकेंगे। गाँव सभा को यह अधिकार होगा कि वह दो-तिहाई वोटों से सभापति को उनके पद से अलग कर दे। हर ग्राम पंचायत का एक सेक्रेटरी तथा और आवश्यक कर्मचारी होंगे जिनकी नियुक्ति पंचायत करेगी।

आमदनी के स्रोत—जो काम ग्राम सभाओं के सुपुर्द किये गये हैं उनको पूरा करने के लिए प्रत्येक गाँव सभा को कुछ टैक्स लगाने या कर आदि वसूल करने के अधिकार दिये गए हैं। ग्राम पंचायत किसानों के लगान पर एक आना फी रुपया और जमींदारों की मालगुजारी पर ६ पाई प्रति रुपया कर वसूल कर सकेगी। इसके अतिरिक्त उसे बाजारों तथा मेलों, व्यापार, कारोबार और पेशों तथा ऐसी इमारतों के स्वामियों पर भी टैक्स लगाने का अधिकार होगा जो दूसरे और टैक्स न देते हों। पंचायतों को प्रांतीय सरकार तथा जिला बोर्डों से भी सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त उनकी आमदनी का एक और बड़ा स्रोत न्याय पंचायतों द्वारा किये हुए जुर्माने होंगे। पंचायतों को कुछ नियन्त्रण के साथ ऋण लेने के भी अधिकार होंगे।

आदर्श पंचायतें

आरम्भ के दिनों में ग्राम सभाओं को शिक्षा-प्रदान करने के लिए प्रांत की प्रत्येक तहसील में एक आदर्श ग्राम सभा बनाई गई है जिसका कार्य एक ऐसी कमेटी द्वारा किया जाता है जिसके सदस्य डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, जिला काँग्रेस

तथा विकास बोर्ड के प्रधान, जिले का इन्स्पेक्टर आफ ऐजूकेशन, प्रांतीय रक्षा दल का कमांडर, हेल्थ आफीसर, सिंचाई विभाग, व सहकारी विभाग का अधिकारी, जिले का इन्जीनियर तथा जिले के सूचना विभाग का सचिव होता है। इस सभा के मन्त्री पद पर डिस्ट्रिक्ट पंचायत अफसर काम करता है। ऐसी आदर्श पंचायतों की संख्या २०७ है।

यह सभा इस प्रकार कार्य करती है कि तहसील की दूसरी सभी ग्राम सभाएँ उससे शिक्षा ग्रहण कर सकें। विशेष रूप से यह सभा गाँव में पंचायत घर, छोटे उद्योग धन्धे, अस्पताल, खाद बनाने के केन्द्र, शिक्षा का प्रबन्ध तथा गाँव की सफाई इत्यादि के लिये आदर्श व्यवस्था करने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार के कार्य से दूसरी सभाएँ नसीहत ले सकें, यही इन आदर्श पंचायतों का मुख्य उद्देश्य हैं।

पंचायती राज्य को सफल बनाने के लिये पंचों की शिक्षा तथा अधिकारियों की विशेष ट्रेनिंग का भी प्रबन्ध किया गया है। इस योजना को सफल बनाने के लिए ५०० पंचायत इंस्पेक्टरों की नियुक्ति भी की गई और लखनऊ में उन सब को अच्छी प्रकार ट्रेनिंग दी गई। प्रत्येक पंचायती अदालत के क्षेत्र के लिए ८००० वैतनिक सेक्रेटरियों की नियुक्ति का प्रबन्ध भी किया गया। यह सैक्रेटरी अदालती पंचायतों का रिकार्ड रखते हैं। तथा ३-४ ग्राम सभाओं के काम की देख-भाल करते हैं। पंचायत के सभी कर्मचारियों के काम की देख-भाल के लिए जिले में एक डिप्टी कलक्टर को जिला पंचायती अफसर भी नियुक्त किया गया।

न्याय पञ्चायतें

प्रान्त भर में कुछ ग्राम सभाओं को मिलाकर पंचायती अदालतें बनाई गई हैं। प्रायः तीन या चार ग्राम सभाओं के पीछे एक पंचायती अदालत है। इस पंचायती अदालत के चुनाव का तरीका यह है कि प्रत्येक गाँव सभा नियत योग्यता वाले ऐसे पाँच प्रौढ़ पंच चुनती है जो स्थाई रूप से उसके अधिकार क्षेत्र के भीतर रहने वाले हैं। इस प्रकार एक अदालत क्षेत्र के अन्तर्गत सभी ग्राम सभाएँ अलग-अलग अपने पंचों का चुनाव करती

हैं। सारे गाँवां को मिला कर पंचों के सम्मिलित चुनाव की व्यवस्था इसलिये नहीं की गई है जिससे बड़े गाँव छोटे गाँव के ऊपर न छा जाँय और छोटे गाँवों के लोगों को अदालतों में प्रतिनिधित्व न मिले। अदालत के इस प्रकार चुने हुए सभी पञ्च जिनकी संख्या १५-२० के बीच होती है, एक सरपञ्च चुनते हैं। सरपञ्च एक ऐसा व्यक्ति होता है जो लिखने-पढ़ने की योग्यता रखता हो। प्रत्येक पञ्च की कार्य अवधि ३ वर्ष होती है। पञ्च अपने पद से त्याग पत्र दे सकता है।

पञ्चायती अदालत के काम का तरीका—सरपञ्च प्रत्येक मुकदमें, नालिश या कार्यवाही के लिये पञ्च मंडल में से पाँच पञ्चों का एक बेंच नियुक्त करता है। इनमें कम से कम एक पञ्च ऐसा होता है जो लिखने-पढ़ने की योग्यता रखता हो। बेंच के इन पाँच पञ्चों में एक पञ्च उन दोनों ग्राम सभाओं के क्षेत्रों से लिया जाता है, जिनमें मुकदमें के दोनों फरीक रहते हों। कोई भी पञ्च या सरपञ्च ऐसे मुकदमों में भाग नहीं ले सकता जिसमें वह या उसका निकट सम्बन्धी, नौकर या मालिक हो।

पञ्चायती अदालतों के अधिकार—न्याय पञ्चायतों के अधिकार पहिले की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ा दिये गये हैं। पहले उनको दाखिल खारिज व जमीन सम्बंधी अधिकार नहीं थे, अब उन्हें यह अधिकार दे दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें बहुत से फौजदारी मुकदमों की सुनवाई का अधिकार भी दे दिया गया है। इन मुकदमों में ५० रुपया तक की चोरी या गबन या मामूली मारपीट या गाँव की सार्वजनिक इमारतों, जलाशय, तालाब, रास्ते इत्यादि को हानि पहुँचाने के अपराध भी शामिल हैं। न्याय पञ्चायतों को कैद की सजा देने का अधिकार नहीं दिया गया है, परन्तु वह १०० रुपया तक जुर्माने का दंड दे सकती हैं। पुराने अपराधियों के मुकदमें की सुनवाई करने का भी इन अदालतों को अधिकार नहीं दिया गया है। यह अदालत ऐसे अभियुक्तों को छोड़ सकेंगी जिन्होंने प्रथम बार जुर्म किया हो। दीवानी मामलों में १०० रुपये तक की मालियत के मुकदमों का फैसला करने का पञ्चायत को अधिकार दिया गया है।

न्याय पञ्चायत के निर्णय पाँच पञ्चों की सम्मति से होते हैं। यदि वह

सब सहमत न हों तो निर्णय बहुमत से होता है। इन अदालतों के निर्णय आखीरी होते हैं अर्थात् उनकी अपील नहीं होती। परन्तु मुंसिफ और सबडिविजनल आफीसर को यह अधिकार दिया गया है कि वह किन्हीं विशेष दशाओं में पञ्चायतों के फैसलों की निगरानी कर सकें। पञ्चायतों के सम्मुख वकील पेश नहीं हो सकते। इस प्रकार की रोक इसलिये लगाई गई है जिससे पञ्चायती न्याय वकीलों की चालबाजियों के कारण दूषित न हो सके।

पञ्चायत राज्य ऐक्ट के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में चुनाव

हमारे प्रान्त में कुल गाँवों की संख्या १,१५,२१५ और जनसंख्या ६३२,००,००० है। इन गाँवों के लिये ३४,७५५ गाँव सभाएँ बनाई गईं हैं। गाँव सभाओं के सब सदस्यों की संख्या वयस्क स्त्री और पुरुषों को मिला कर २,७०,२०,७६० है। इनमें चुने हुए पञ्चों की संख्या १३,५०,००० से ऊपर है। ३५,००० गाँव सभाओं के लिये ८,२२५ पञ्चायती अदालतों का आयोजन किया गया है। इन अदालतों में पञ्चों की संख्या लगभग-१,२५,००० है। दोनों ग्राम सभाओं तथा पञ्चायती अदालतों में मिला कर पञ्चों की संख्या लगभग १५,००,००० है।

यू० पी० के ४६ जिलों में चुनाव फरवरी और मार्च सन् १९४९ में पूरे हो गये थे, परन्तु पहाड़ी इलाकों में चुनाव जून से पहिले समाप्त न हो सके। चुनाव अत्यंत ही शांतिपूर्वक समाप्त हुये, और जैसा कि बहुत लोगों को डर था कि इन चुनावों में बड़े उपद्रव होंगे, गाँवों के अन्दर दलबंदियाँ हो जायेंगी, ऊँच-नीच और छूत-अछूत का प्रश्न उठाया जायगा, इत्यादि ऐसा कुछ स्थानों को छोड़कर, शेष जगह देखने में नहीं आया। ३४,७५५ पंचायतों में से २१,८७८ पंचायतों का चुनाव सर्व सम्मति से हुआ, शेष स्थानों पर ३३ ग्रामों को छोड़ कर बाकी सब जगह चुनाव शांतिपूर्वक समाप्त हो गये। इन चुनावों में हरिजन और अल्पसंख्यक जातियों के व्यक्ति भी समुचित संख्या में चुने गये। कुल मिलाकर, २,६०,८०० हरिजन तथा १,३७,३६७ मुसलमान ग्राम तथा अदालती पंचायतों के पंच चुने गये। बहुत से स्थानों पर हरिजन और मुसलमानों को सरपंच भी चुना गया। कितने ही स्थानों में हरिजनों ने सवर्ण हिंदुओं को करारी हार दी और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों

ने भी उनके पक्ष में वोट डाले। इस प्रकार इन चुनावों में अल्पसंख्यक और हरिजन जातियों को प्रधानता देकर हमारी जनता ने अपने विशाल हृदय का परिचय दिया।

पञ्चायतों की सफलता

प्रांत की सभी पंचायतों ने १५ अगस्त सन् १९४९ से कार्यारम्भ कर दिया। यह पंचायती राज्य कहाँ तक सफल होता है, अभी कहना कठिन है। परन्तु बहुत सी पंचायतों ने निसन्देह अत्यंत प्रशंसनीय कार्य किया है। देहरादून में एक पंचायत ने ४ मील लंबी नहर बनाई जिससे २०१० एकड़ भूमि को पानी मिलता है। नैनीताल जिले में बहुत सी पंचायतों ने सड़कें तथा पंचायतघर बनाये। आजमगढ़ जिले में, इसके अतिरिक्त पंचायतों ने गांधी चबूतरे, कुंवे, सार्वजनिक शौचालय, खाद्य के गढ़े, अस्पताल, नहर, बांध, पुस्तकालय इत्यादि बनाये हैं। बहुत सी पंचायतों ने शारीरिक विकास के लिये अखाड़ों तथा खेल के मैदानों इत्यादि की भी व्यवस्था की है।

पंचायतों की कठिनाइयाँ

ग्राम पंचायतों की सबसे बड़ी समस्या अर्थ की समस्या है। हमारी ग्राम पंचायतों के आर्थिक साधन बहुत कम हैं। साधारण सभाओं की आय ५०० या ६०० रुपये वार्षिक से अधिक नहीं है। विदित है कि इतनी कम रकम से कोई भी पंचायत अपना काम सुचारु रूप से नहीं चला सकती। इसलिये हमारी सरकार को चाहिये कि वह उनके आर्थिक साधन बढ़ाने की ओर विशेष ध्यान दे। साथ ही गाँवों में शिक्षा प्रसार तथा दलबन्दी को तोड़ने के लिये विशेष प्रयत्न किया जाना चाहिये।

भारत में स्थानीय स्वशासन की सफलता

इस अध्याय के आरंभ में ही हमने उन उद्देश्यों का उल्लेख किया है, जिनको लेकर भारतवर्ष में स्वायत्त शासन संस्थाओं का संगठन किया गया था। हमें देखना है कि यह उद्देश्य कहाँ तक पूर्ण हुए हैं। स्थानीय संस्थाओं का प्रथम उद्देश्य केन्द्रीय शासन के कार्य भार को कम करना था। हम कह सकते हैं कि यह उद्देश्य समुचित रूप में पूरा हुआ है, कारण कि सरकार के जिला अधिकारी अब उस भारी अरुचिकर तथा अप्रिय काम से मुक्त हो गये

हैं, जो उन्हें विभिन्न क्षेत्रों की स्थानीय आवश्यकताओं को देखने तथा उन्हें पूरा करने के लिये करना पड़ता था। परन्तु स्थानीय संस्थाओं का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य अर्थात् व्यक्तियों में नागरिक भावनाओं की जाग्रति उत्पन्न करना पूरा नहीं हो सका है।

इसके विपरीत इन संस्थाओं ने हमारे देश के छोटे छोटे गाँव व नगरों में, स्वार्थ सिद्धि की भावना से पूर्ण, दलबंदी की प्रथा को जन्म दिया है। स्थानीय संस्थाओं के चुनावों के समय देश में क्षुद्र जातीय, साम्प्रदायिक व परिवारिक सम्बन्धों के आधार पर राय माँगी जाती है। योग्य व्यक्तियों को राय नहीं दी जाती, चुनावो में पारस्परिक वैमनस्य से काम लिया जाता है। एक दूसरे उम्मीदवार के विरुद्ध आरोप लगाये जाते हैं तथा बिना किसी सिद्धांत के गाँवों व नगरों में विरोधी दल खड़े हो जाते हैं। चुनावों के पश्चात् भी यह दलबन्दियाँ कायम रहती हैं, और इससे नागरिक जीवन एक हर्ष और उल्लास का केन्द्र बनाने के स्थान पर कलह और विषाद का क्षेत्र बन जाता है। यही कारण है, स्थानीय संस्थायें हमारे देश में नागरिक जाग्रति उत्पन्न करने में सफल न हो सकी हैं। उन्होंने हमारे देश की जनता में उन भावनाओं को जन्म नहीं दिया है जिनके द्वारा ही किसी देश को प्रजातन्त्र शासन की सफलता प्राप्त होती है।

असफलता के कारण तथा उन्हें दूर करने के उपाय

भारत में स्वायत्त शासन संस्थाओं की असफलता के अनेक कारण हैं। इनमें सबसे बड़ा यह है कि हमारे देश में इन संस्थाओं की सफलता के लिये आवश्यक वातावरण वर्तमान नहीं है। स्थानीय स्वराज्य की संस्थायें केवल उस दशा में सफल हो सकती हैं जब कि उन मनुष्यो में जिन पर वह शासन करती हैं, निम्नलिखित गुण विद्यमान हों।

(१) प्रथम यह कि जनता में नैतिक सदाचार, ईमानदारी तथा सहयोग का उच्च आदर्श और सार्वजनिक कर्तव्यों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना विद्यमान हो। यदि किसी देश की जनता सामाजिक हित के कार्यों के प्रति उदासीन रहती है या सुस्त, स्वार्थी तथा अभिमानी है तो स्वायत्त शासन संस्थायें सफल नहीं हो सकतीं। इन गुणों का निर्माण करने के लिये जनता का

शिक्षित होना अत्यन्त आवश्यक है, इसलिये सरकार को चाहिये कि वह स्थानीय संस्थाओं की सफलता के लिये शिक्षा पर अत्यन्त जोर दे।

(२) दूसरे, स्थानीय संस्थायें उस समय तक सफल नहीं हो सकतीं जब तक नगरों की जनता अपने प्रतिनिधियों के कार्यों के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक न हो। जनता को चाहिये कि वह म्युनिसिपल संस्थाओं के कार्य की सदा रचनात्मक दृष्टि से आलोचना करती रहे जिससे उनके प्रतिनिधि अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये नहीं वरन् जनता की भलाई के लिये काम करें।

इसी उद्देश्य से प्रत्येक नगर में मतदाताओं की सभाएँ तथा नागरिक संस्थाएँ बननी चाहिये जिससे वह स्वतन्त्र रूप से सार्वजनिक प्रश्नों पर विचार कर सकें और म्युनिसिपल सदस्यों को जनता के मत का बोध करा सकें।

(३) तीसरे, चुनाव के समय निर्वाचकों को चाहिये कि वह अपने प्रतिनिधियों को मत देते समय उनकी योग्यता का ध्यान रक्खें और पारिवारिक बन्धनों से प्रभावित न हों।

(४) केन्द्रीय सरकार को भी चाहिये कि वह स्थानीय संस्थाओं के काम में अधिक हस्तक्षेप न करें। हस्तक्षेप केवल उसी दशा में किया जाना चाहिये जब कि स्थानीय संस्था का प्रबन्ध इतना दूषित हो जाय कि उसके सुधारने का और उपाय ही शेष न हो।

(५) स्थानीय संस्थाओं के पास आमदनी के भी समुचित साधन होने चाहिए जिससे वह नागरिकों की सुविधा के लिये अधिक से अधिक काम कर सकें। प्रायः भारतीय स्वायत्त शासन संस्थायें रुपये की कमी के कारण जनता की अधिक सेवा नहीं कर सकतीं।

यदि उपरोक्त सभी सुझावों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया जाय तो कोई कारण नहीं कि भारत में स्वायत्त शासन संस्थायें वही सफलता प्राप्त न कर सकें जो उन्होंने दूसरे प्रगतिशील देशों में की हैं।

योग्यता प्रश्न

(१) स्थानीय स्वशासन से आप क्या समझते हैं। अपने प्रांत में नगरपालिकाओं का संगठन तथा उनके कर्तव्यों का वर्णन करो। (यू० पी०, १९४२)

(२) अपने प्रान्त की स्वायत्त शासन संस्थाओं के नाम बतलाओ। और किसी एक के कार्यों की विवेचना करो। (यू० पी०, १९४०)

(३) जिला मंडली या नगर-पालिका की कार्य शैली का वर्णन कीजिए। इनका नागरिक जीवन में क्या स्थान है? (यू० पी०, १९३८)

(४) नगर-पालिकाओं के मुख्य कार्य क्या हैं? वह कहाँ तक पूरे किए जाते हैं? उनके आर्थिक अधिकारों का वर्णन करो? (यू० पी०, १९२५)

(५) भारतीय स्वायत्त शासन संस्थाओं के कार्य में कौन से दोष हैं? वह किस प्रकार दूर किए जा सकते हैं? (यू० पी०, १९४६)

(६) नगर-पालिकाओं के आय और व्यय के क्या मद होते हैं? उनकी आय कैसे बढ़ाई जा सकती है? (यू० पी०, १९२९, ३३, ३९)

(७) जिला मंडली का संगठन, उसके कार्य, तथा आय के साधनों का विवरण दीजिए? (यू० पी०, १९२७, ४६)

(८) ग्राम पंचायतों का सङ्गठन कैसे किया गया है? उनके अधिकारों तथा कर्तव्यों का वर्णन कीजिए? (यू० पी०, १९५१)

(९) भारत में स्वायत्त शासन संस्थाओं की असफलता के कारणों पर प्रकाश डालो?

(१०) हाल ही में नगर-पालिका तथा जिला मंडलियों के विधान में क्या महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये गये हैं?

अध्याय १५

भारत में शिक्षा

शिक्षा का वास्तविक अर्थ

शिक्षा का अर्थ है मनुष्य जीवन का संपूर्ण विकास व उसकी सर्वोपरि उन्नति। वास्तविक शिक्षा वही है जो मनुष्य की सुप्त शक्तियों का विकास कर उसको समाज का एक उपयोगी व्यक्ति बनाने में सफल हो सके तथा उसे अपने सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक, नागरिक, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय जीवन में सक्रिय भाग लेने के योग्य बनायें। शिक्षा अच्छे सामाजिक जीवन की कुंजी है। यही मनुष्य में उन भावनाओं का संचार करती है जिनके कारण ही एक सभ्य मनुष्य और पशु में अन्तर किया जाता है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपनी कुत्सित भावनाओं को अनुचित मार्ग पर जाने से रोक कर एक अनुशासित जीवन व्यतीत करने में सफल होता है।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में नागरिकों को जिस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है उसके अन्तर्गत मनुष्यों के व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास नहीं होता। हमारी शिक्षा प्रणाली चरित्र निर्माण व जीवन के संतुलित विकास की ओर ध्यान नहीं देती। हमारी शिक्षा संस्थायें मस्तिष्क के विकास का तो विचार अवश्य रखती हैं परन्तु वह विद्यार्थियों के हृदय व शरीर के शिक्षण की ओर समुचित ध्यान नहीं देती। यही कारण है कि बहुत कम शिक्षा संस्थायें हमारे देश में ऐसी हैं जहाँ मनुष्य को श्रम का आदर करना सिखाया जाय, जहाँ मनुष्य के हृदय को निर्मल व स्वच्छ विचारों से परिपूर्ण करने के लिये उसे सब धर्मों की समानता एवं एकरूपता का ज्ञान कराया जाय, तथा जहाँ उसकी कर्मेन्द्रियों के शिक्षण के लिये हर प्रकार की ललित कलाओं जैसे चित्रकारी, संगीत; नृत्य, फोटोग्राफी, तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्योग धन्धों की शिक्षा

प्रदान की जाय। आदर्श शिक्षा वह है जिसे प्राप्त कर मनुष्य जीवन की सर्वोत्मुखी उन्नति हो सके तथा जो व्यक्ति के अन्दर श्रम का आदर, मानव व्यक्तित्व की महत्ता एवं आर्थिक संघर्ष की क्षमता प्रदान कर सके।

प्राचीन भारत में शिक्षा

प्राचीन भारत अपनी शिक्षा व सांस्कृतिक उन्नति के लिये संसार भर के देशों में अग्रगण्य था। हमारे देश के विश्वविद्यालय संसार के बड़े-बड़े पंडितों व विद्वानों के ज्ञानोपार्जन के केन्द्र थे। काशी, नालंद, तक्षशिला, विक्रमशिला, मिथिला, नवद्वीप, नादिया, व श्रीनगर इत्यादि स्थानों में हमारे देश की अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा संस्थायें स्थापित थीं। इन विश्वविद्यालयों में संसार के कोने-कोने से सहस्रों विद्यार्थी आकर, मनमोहक प्राकृतिक सौंदर्य के उपवन में, नगरों के कोलाहल व संघर्ष से दूर, अत्यंत सुन्दर व सौम्य वातावरण के बीच शिक्षा ग्रहण करते थे।

प्राचीन भारत में शिक्षा का आदर्श मस्तिष्क व हृदय का शिक्षण था। उस शिक्षा प्रणाली में औद्योगिक शिक्षा को विशेष महत्व नहीं दिया जाता था। शिक्षा के द्वारा पैसा कमाना, या किसी व्यापार में सफलता प्राप्त करने के लिये उसे एक साधन बनाना, एक हेय आदर्श समझा जाता था। शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य था मनुष्य जीवन की सर्वांगीण उन्नति। इस उन्नति के लिये आर्थिक क्षेत्र में सफलता कोई आवश्यक वस्तु नहीं समझी जाती थी। समाज में उन व्यक्तियों का अधिक मान था जो अत्यन्त ज्ञानवान, धर्मनिष्ठ, आचारवान व अपने धर्मशास्त्रों के पंडित थे। ऐसे व्यक्तियों का सर्वत्र सम्मान होता था। राजाओं के दरबार में भी उन्हें विशेष आदर का स्थान दिया जाता था।

वर्तमान युग में, समाज में आदर व सम्मान, किसी व्यक्ति के पांडित्य व ज्ञान पर निर्भर नहीं रहता; वह उसकी आर्थिक शक्ति के आधार पर निश्चित किया जाता है। आज का संसार धनिकों का संसार है। इसलिये समाज में केवल वही लोग बड़े समझे जाते हैं तथा उनका सब स्थानों पर आदर व सत्कार होता है जो बड़े बड़े बंगलों में रहते हैं, मोटर गाड़ियों में सवारी करते हैं तथा जिनका घर धनधान्य से परिपूर्ण होता है। पढ़े-लिखे विद्वान व्यक्ति

धनिकों द्वारा अपनी न बुझने वाली धन पिपासा को शांत करने के लिए केवल एक साधन (Tool) के रूप में काम में लाये जाते हैं । उनका कहीं सम्मान नहीं होता । उनका मूल्य इस बात से आँका जाता है कि उन्हें कितने रुपये मासिक वेतन मिलता है अन्यथा उनमें रुपया कमाने की कितनी शक्ति है । इसलिए स्वभावतः आजकल के युग में शिक्षा के आर्थिक पहलू पर विशेष जोर दिया जाता है ।

परन्तु प्राचीन भारत में ये सब बातें न थीं । उस काल में समाज का सबसे महान् व प्रतिष्ठित व्यक्ति वह समझा जाता था जो धन व माया के जाल से दूर रह कर सरस्वती देवी का पुजारी था, जिसकी विद्वत्ता व चरित्र अद्वितीय था, जो रुपये पैसे से प्यार न करता था तथा जो एक अत्यंत संयमी अनुशासित, सादा एवं निर्मल जीवन व्यतीत करने की क्षमता रखता था । यही कारण था कि प्राचीन शिक्षा प्रणाली में शिक्षा के आर्थिक व औद्योगिक दृष्टिकोण को अधिक महत्व प्रदान नहीं किया जाता था ।

प्राचीन भारत के अध्यापक—हमारी वैदिक शिक्षा प्रणाली में इसलिए शिक्षा प्रदान करने का कार्य भी उन्हीं लोगों के हाथ में सौंपा जाता था जो अपने जीवन का ध्येय पैसा कमाना न बना कर, विद्या-दान ही सबसे बड़ा धर्म समझते थे । उनके सम्मुख शिक्षा प्रदान करना किसी और उद्देश्य की पूर्ति का साधन नहीं वरन् स्वयं एक आदर्श था । वह अपना सारा जीवन इसी कार्य के लिए अर्पण कर देते थे । पाठशालाओं में रहकर एक आश्रम के रूप में, कुछ विद्यार्थियों को एकत्रित कर लेना और फिर उनको निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना तथा उनके दैनिक जीवन के प्रत्येक पहलू पर स्वयं दृष्टि रखना, उस काल की शिक्षा प्रणाली का सबसे प्रमुख अंग था । अधिकतर विद्यार्थी अपने घरों पर रहकर नहीं वरन् आश्रमों में रह कर शिक्षा ग्रहण करते थे । इन आश्रमों में धनी और निर्धन, ऊँच और नीच छोटे और बड़े विद्यार्थियों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं बरता जाता था । सब विद्यार्थियों को एक ही प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी तथा उन्हें एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करना पड़ता था । यही कारण था कि प्राचीन भारत में कृष्ण और सुदामा एक ही पाठशाला में पढ़े और एक ही गुरु के चरणों में बैठ कर

उन्होंने शिक्षा ग्रहण की। आश्रमों का व्यय नागरिकों व राज्य की दानशीलता के आधार पर चलता था। दिन-प्रति-दिन के व्यय के लिए पाठशाला के शिष्य आस-पास के गाँवों से भिक्षा माँग लेते थे। यह भिक्षा धनी और निर्धन, राज पुत्र और दास पुत्र सभी को माँगनी पड़ती थी। इस प्रकार विद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों के जीवन से ऊँच-नीच और छोटे-बड़े का भेद भाव नष्ट होकर उनमें भ्रातृभाव व समानता की भावना जन्म लेती थी।

शिक्षा की समाप्ति पर प्रत्येक विद्यार्थी अपनी सामर्थ्य के अनुसार गुरु को भेंट देता था। यह उत्सव गुरु दक्षिणा उत्सव कहलाता था। इस अवसर पर गुरु अपने शिष्यों से रुपये पैसे की भेंट नहीं माँगते थे। वह अपनी योग्यतानुसार उन्हें जन सेवा व लोक कल्याण के लिये कार्य करने की दीक्षा देते थे, और उसी कार्य की सफलता में वह अपनी सबसे बड़ी गुरु दक्षिणा मानते थे। महर्षि कणाद् के आश्रम का एक स्थान पर वृतांत मिलता है। उनके तीन शिष्य जिस समय अपनी शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात् अपने गुरु से गुरु दक्षिणा माँगने का आग्रह करने लगे तो उन्होने अपने तीनों शिष्यों से अलग अलग इस प्रकार गुरु दक्षिणा माँगी। उन्होंने एक शिष्य से कहा, "वत्स, तुमने वेद वेदांतों की शिक्षा प्राप्त की है। जैसे मैंने निःस्वार्थ भाव से प्रेम के साथ तुम्हें पुत्रवत शिक्षा दी है, तुम भी उसी प्रकार जाकर संसार के लोगों का कल्याण करो, उन्हें ज्ञान दो, उन्हें सत्य पथ पर चलाओ।"

दूसरे शिष्य से उन्होंने कहा, "मेरी दक्षिणा यही है कि अपने ज्ञान के आधार पर तुम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास आश्रमों के नियम बनाओ, जिनके द्वारा समाज की आदर्श व्यवस्था चल सके।"

तीसरे शिष्य से उन्होंने कहा, "तुम वैदिक यज्ञों का संविधान करो।"

इस प्रकार प्राचीन भारत के गुरु त्याग, बलिदान और निस्वार्थ सेवा का आदर्श जनता के सम्मुख रखते थे। इसी काल में भारत में अनेक धर्म ग्रन्थ लिखे गये। वैषेशिक, साँख्य, न्याय, पूर्व मीमाँसा, योग व दूसरे दर्शनों का इसी प्रकार निर्माण हुआ।

शिक्षा की श्रेणियाँ—प्राचीन भारत में आश्रमों के आधार पर विद्यार्थियों की शिक्षा २५ वर्ष की आयु तक होती थी। कुछ विद्यार्थी इसके पश्चात्

भी ३५ वर्ष की आयु तक विद्याध्ययन करते थे। विद्या का आरम्भ ५ वर्ष की आयु से होता था। इस अवस्था की प्राप्ति पर शिशु का अक्षरारम्भ संस्कार किया जाता था। इस संस्कार में गुरु बालक की जिह्वा पर सोने या चन्दन की लेखनी से ओम् मंत्र लिखता था। आठ वर्ष की अवस्था में बालक का उपनयन संस्कार होता था। उपनयन का अर्थ है 'पास आना'। इस अवस्था की प्राप्ति के पश्चात् बालक इस बात का अधिकारी हो जाता था कि वह गुरु अथवा आचार्य के आश्रम में भरती होकर शिक्षा ग्रहण करे।

विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सभी वर्णों के विद्यार्थियों को प्राप्त था। शूद्र व चाँडालों के बच्चों को गुरु के आश्रमों में उसी प्रकार भरती किया जाता था जैसे किसी राज पुत्र को। शूद्रों को वेदों की शिक्षा दी जाती थी। महीदास जिन्होंने तैत्तरीय ब्राह्मण नामक ग्रन्थ का निर्माण किया जन्म से शूद्र थे।

शिक्षा का विभाजन तीन श्रेणियों में किया जाता था—प्रारंभिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा। उच्च शिक्षा के पश्चात् कुछ विद्यार्थी अनुसंधानात्मक अध्ययन करते थे और इसके लिये वह भारत की विभिन्न विश्वविद्यालयों में जाकर वहाँ के अध्यापकों तथा विद्वान शिष्यों के साथ शास्त्रार्थ करते थे। इन शास्त्रार्थों के द्वारा नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता था तथा अनेक नये ग्रन्थ लिखे जाते थे।

प्रारंभिक व माध्यमिक श्रेणियों में विद्यार्थियों को संस्कृत, व्याकरण, धर्म शास्त्र, आचार शास्त्र, उपनिषद, साहित्य, इतिहास, गणित व भूगोल की शिक्षा दी जाती थी। इसके पश्चात् विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में प्रवेश करते थे। भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों में अलग-अलग विषयों के विशेष अध्ययन का प्रबन्ध था। उदाहरणार्थ तक्षिला विद्यालय में आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, सैन्य शिक्षण व राजनीति की विशेष शिक्षा दी जाती थी। बनारस नृत्य, संगीत व शिल्प कला का प्रधान केन्द्र था। नालन्द शास्त्रों एवं नीति का विश्वविद्यालय था। इस अन्तिम विद्यालय में १५०० अध्यापक तथा ८५०० से अधिक छात्र थे। इसमें प्रति दिन २०० से अधिक व्याख्यान दिये जाते थे।

इन विद्यालयों के अतिरिक्त नगरकोट, गान्धार, पुष्कर, काश्मीर,

जालन्धर, मथुरा, प्रयाग, अयोध्या, कौशाम्बी, कपिलवस्तु, सारनाथ आदि प्रदेशों में शिक्षा के केन्द्र थे। इन स्थानों में प्रति वर्ष सहस्रों छात्र बौद्ध तथा वैदिक धर्म शिक्षा ग्रहण करते थे। उस समय भारत के विद्यालयों में संपूर्ण एशिया के विद्यार्थी पढ़ने आते थे और भारत के विद्वान दूसरे देशों में शिक्षा देने जाते थे।

शिक्षा पद्धति—प्राचीन भारत की शिक्षा संस्थाओं में विद्यार्थियों के ऊपर बाहर का ज्ञान लादने का प्रयत्न नहीं किया जाता था। उन्हें सिखाया जाता था कि वह स्वयं अपने अन्दर विचारने व मनन करने की शक्ति किस प्रकार उत्पन्न कर सकते हैं। विचारों की स्वतंत्रता उस शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा गुण था। विद्यार्थियों को शास्त्रों के गुण व दोष निकालने व उनकी विवेचना करने का पूर्ण अधिकार था। स्वयं आचार्य विद्यार्थियों के वाद-विवाद में भाग लेते थे और किसी बात की सत्यता स्थिर होने पर अपने शास्त्रों में संशोधन कर लेते थे।

यही कारण था कि प्राचीन भारत में यदि एक ओर चारवाक जैसे विचारक हुए जिन्होंने शरीर के सुख के लिये प्रत्येक काम करना उचित ठहराया तो दूसरी ओर हमारे देश में शङ्कराचार्य जैसे ऋषि भी हुए जिन्होंने आत्मा की शांति को ही सबसे अधिक महत्ता दी और इसके लिये शरीर सुख को अत्यंत हेय समझा। शास्त्रार्थ करना तथा सत्य की खोज करना उस समय की शिक्षा का सबसे बड़ा आदर्श था। विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद जो विद्यार्थी ३५ वर्ष की आयु तक अपनी शिक्षा जारी रखना चाहते थे उनके शिक्षण का ढंग यही था कि वह देश के भिन्न-भिन्न भागों में स्थित विश्वविद्यालयों व ऋषियों के आश्रमों में जाकर उनके आचार्यों के दर्शनों व धर्म शास्त्रों के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ करते थे और इस प्रकार इन विवादों में अपनी योग्यता का परिचय देकर वह देश की सबसे उच्च शिक्षा-उपाधि से विभूषित किये जाते थे।

प्राचीन भारत के आश्रमों में शिक्षा देने का ढंग अत्यंत ही मनोरंजक था। प्रातःकाल होते ही, नित्य कर्म से निवृत होने के पश्चात् विद्यार्थी अपने गुरु के सम्मुख उपस्थित होते थे। हवन, ईश्वर-स्तुति व संध्या के

पश्चात् वह अपना पिछला पाठ गुरु को सुनाते थे। गुरु प्रश्नों के द्वारा उनके ज्ञान की गहराई का पता लगाते थे। दोपहर में विद्यार्थी स्वयं अध्ययन करते थे और गुरु केवल उनकी कठिनाइयों को हल करने के लिये उनके पास आते थे। तीसरे पहर गुरु विद्यार्थियों को स्वयं शिक्षा देते थे तथा उन्हें धर्म ग्रन्थों का ज्ञान कराते थे। साँझ ढले, सब विद्यार्थी अपने गुरु के साथ जंगलों की सैर करने जाते थे। वहाँ पर विद्यार्थियों को प्रकृति, विज्ञान, भूगोल, खगोल, ज्योतिष, आकाश, तारागण, वनस्पति शास्त्र, जन्तु शास्त्र इत्यादि विद्याओं का ज्ञान कराया जाता था। इस अध्यापन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि विद्यार्थी अनुभव के द्वारा सब बातें बहुत आसानी से समझ जाते थे और खेल और मनोरंजन के साथ साथ उनके ज्ञान में समुचित वृद्धि हो जाती थी।

प्राचीन शिक्षा प्रणाली के गुण

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली आधुनिक शिक्षा प्रणाली से कहीं अच्छी थी। इसी शिक्षा प्रणाली के गुणों का विचार रखते हुए हमारे यूनीवर्सिटी कमीशन ने जिसके अध्यक्ष डाक्टर सर राधाकृष्णन थे, यह सिफारिश की है कि भारत में ग्रामीण विश्वविद्यालय स्थापित किये जायँ जिनमें प्राचीन आदर्शों के आधार पर शिक्षा की व्यवस्था हो। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हिन्दुओं की शिक्षा-पद्धति में निम्नलिखित गुण थे:—

(१) इस शिक्षा पद्धति में मनुष्य के मस्तिष्क के शिक्षण पर ही जोर नहीं दिया जाता था वरन् उसके हृदय के शिक्षण को भी उतना ही आवश्यक समझा जाता था। यही कारण था कि शिक्षा का स्वरूप केवल मानसिक ही नहीं वरन् नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक भी था।

(२) शिक्षा नगर के गन्दे तथा विलासी जीवन से परे ऐसे क्षेत्रों में दी जाती थी जहाँ विद्यार्थी प्रकृति की गोद में बैठकर अत्यंत सुन्दर वातावरण में अपने ज्ञान की वृद्धि तथा अपने चरित्र का निर्माण कर सकते थे।

(३) शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी के मस्तिष्क को बाहरी ज्ञान से भर देना नहीं वरन् उसकी सुप्त शक्तियों एवं विचार-शक्ति का विकास था।

(४) इस प्रणाली के अन्तर्गत विद्यार्थी ऊँच-नीच, छोटे-बड़े और धनी-निर्धन का विचार छोड़कर एक दूसरे के साथ समानता एवं भाईचारे के भाव के आधार पर व्यवहार करते थे।। वह आश्रम में रहकर एक अत्यंत संयमी, सादा तथा सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे।

(५) सब विद्यार्थी एक दूसरे से सगे भाई के समान व्यवहार करते थे तथा एक दूसरे की सेवा-सुश्रूषा करने के लिये सदा तत्पर रहते थे।

(६) गुरु किसी लोभवश शिक्षा का प्रचार नहीं करते थे। वह सारा जीवन ईश्वर उपासना व विद्यादान में ही लगा देते थे। समाज में उनका बड़ा मान था। उनका त्यागमय तपस्वी जीवन सब विद्यार्थियों के लिये अनुकरणीय होता था।

(७) प्राचीन भारत में स्त्रियों व शुद्रों को भी शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था, परन्तु आगे चल कर, ब्राह्मणों के युग में उन्हें इस अधिकार से वंचित कर दिया गया।

मुस्लिम काल में शिक्षा

मुसलमानों के काल में शिक्षा का स्वरूप मुख्यतः धार्मिक था। वैसे तो हिंदुओं के काल में भी धार्मिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाता था परन्तु इसके साथ-साथ उनके समय में दूसरी विद्याओं के अध्ययन का भी समुचित प्रबंध था। विचारों की स्वतन्त्रता हिंदुओं की शिक्षा प्रणाली का सबसे महान् गुण थी। परन्तु मुसलमानों के काल में विद्यार्थियों को जिस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी उसमें विचार स्वातन्त्र्य के लिये कहीं भी स्थान नहीं था। उनके काल में शिक्षा का अर्थ कुरान मज़ीद की शिक्षा थी। यह शिक्षा बिना सोचे-समझे सभी विद्यार्थियों को ग्रहण करनी पड़ती थीं। कुरान की आयतों को रट कर याद कर लेना ही इस शिक्षा प्रणाली का मुख्य रूप था।

मुसलमानी शिक्षा मस्जिदों में दी जाती थी। उच्च शिक्षा के लिये दिल्ली, मुल्तान, बदायूँ, जौनपुर आदि स्थानों में मदरसे थे। इन मदरसों में धर्म, इतिहास, हदीस, राजनीति व यूनानी हिकमत इत्यादि की पढ़ाई होती थी। मदरसों तथा मकतबों को सरकारी सहायता मिलती थी। हिंदुओं की शिक्षा पाठशालाएँ, टोल तथा विद्यापीठों में होती थीं। उन्हें किसी प्रकार की

सरकारी सहायता नहीं मिलती थी। कुछ दानी व्यक्तियों की सहायता से ही उनका पूरा व्यय चलता था।

मुसलमानों की स्कूलों की शिक्षा में कई दोष थे। उसमें धर्म का प्रमुख स्थान था। संगीत तथा चित्र कला आदि विद्याओं की अवहेलना की जाती थी, क्योंकि उन्हें इस्लाम धर्म के विरुद्ध समझा जाता था। दूसरे धर्मों का अध्ययन न होने से विद्यार्थियों में धार्मिक संकीर्णता व असहिष्णुता आ जाती थी। इस पद्धति में रटाई को समझ से अधिक महत्व दिया जाता था और भारतीय भाषाओं की पढ़ाई नहीं होती थी।

ब्रिटिश काल में शिक्षा

भारत में शिक्षा का सबसे अधिक ह्रास उस समय हुआ जब मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् हमारे देश से केन्द्रीय सत्ता का लोप हो गया और ईस्ट इण्डिया कंपनी भारत की राजनीति में भाग लेकर गृह युद्ध की ज्वाला को और भी अधिक भड़का दिया। उस समय कोई कुशल सरकारी व्यवस्था न होने के कारण, प्रायः ३०० वर्षों तक भारत में राज्य की ओर से जनता के शिक्षण में किसी प्रकार का भाग नहीं लिया गया और समस्त देश में अशिक्षा और अज्ञान का अंधकार फैल गया। ईस्ट इण्डिया कंपनी का प्रभुत्व स्थापित हो जाने के पश्चात् भी, १९वीं शताब्दि के आरंभ तक; भारत में शिक्षा के सम्बन्ध में विशेष उन्नति सम्भव न हो सकी। इसका मुख्य कारण यह था कि कंपनी के डाइरेक्टरों को भय था कि कहीं शिक्षा के प्रचार से भारतीयों में राजनैतिक चेतना का संचार न हो जाय और उन्हें अपने साम्राज्य से उसी प्रकार हाथ न धोना पड़े जैसे अमरीका में हुआ था। अठारहवीं शताब्दि में इसलिये केवल इतना किया गया कि सन् १७९१ में कलकत्ते में एक फारसी मदरसा तथा काशी में एक संस्कृत पाठशाला खोल दी गई। इसके पश्चात् सन् १८१३ प्रथम बार ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारतीयों के प्रति अपने कर्तव्य को समझ कर शिक्षा की वृद्धि के लिये सरकारी खजाना से एक लाख रुपया देना स्वीकार किया। तीस करोड़ व्यक्तियों के देश में, शिक्षा कार्य के लिये एक लाख रुपये की रकम वैसे तो अत्यंत हास्यास्पद थी, परन्तु इस रकम की स्वीकृति का महत्व इसलिये था कि इस

वर्ष के पश्चात् ब्रिटिश सरकार की शिक्षा नीति में एक विशेष परिवर्तन हुआ और उसने अपना यह कर्तव्य समझा कि भारतीयों के शिक्षण में सहयोग देना उसका भी एक धर्म है।

भाषा का प्रश्न—शिक्षा के प्रचार के लिये हमारे देश में सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि समस्त भारत के लिये कोई ऐसी भाषा नहीं थी जिसके आधार पर सब देश वासियों को उच्च शिक्षा प्रदान की जा सके। प्राचीन भारत में संस्कृत भाषा उच्च शिक्षा का माध्यम थी। मुसलमानों के काल में इसका स्थान फारसी ने ले लिया था और वही हमारी न्यायालयों की भाषा बन गई थी। परन्तु इन दोनों भाषाओं में सबसे बड़ा दोष यह था कि १६वीं सदी में वह जनता की भाषा नहीं थी और उसके द्वारा शिक्षा प्रसार का कार्य नहीं किया जा सकता था। इसलिये विवाद यह उठ खड़ा हुआ कि भारत में उच्च शिक्षा संस्कृत और फारसी के माध्यम द्वारा दी जाय अथवा अंग्रेजी के द्वारा। इस समय के एक बहुत बड़े भारतीय नेता राजा राममोहन राय अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में थे। उनका विचार था कि अंग्रेजी के ज्ञान के द्वारा भारतवासी दूसरे प्रगतिशील देशों के साहित्य का अध्ययन एवं अंग्रेजी सरकार के नीचे उच्च सरकारी पद प्राप्त कर सकेंगे। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने एक दूसरे अंग्रेज मित्र श्री डैविड हारे के साथ मिल कर सन् १८१६ में कलकत्ते में एक कौंसिल की स्थापना की। इसके पश्चात् बम्बई, मद्रास तथा बंगाल में दूसरे अंग्रेजी स्कूल खोले गये। इन स्कूल व कालेज के छात्रों को तुरन्त ही अच्छी-अच्छी सरकारी नौकरियाँ मिल जाती थीं, इस कारण उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की कभी कमी न रहती थी।

लार्ड मैकाले का लेख—सन् १८३५ में भारत सरकार के न्याय सदस्य लार्ड मैकाले ने सरकार के सम्मुख एक योजना रक्खी जिसमें उन्होंने कहा कि भारत के सब स्कूल व कालिजों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना देना चाहिये। ऐसा उन्होंने इसलिये कहा जिससे हमारे देश में सदा के लिये ब्रिटिश सत्ता की जड़ें मजबूत हो जायँ और जहाँ एक ओर सरकार को सस्ते क्लर्क और बाबू मिल जायँ, वहाँ दूसरी ओर भारत में एक ऐसे प्रभावशाली व्यक्तियों की श्रेणी उत्पन्न हो जाय जो केवल जन्म स्थान व अपने रंग के

कारण तो भारतीय प्रतीत हों परन्तु और सभी बातों, जैसे बनाव-शृङ्गार; ड्रेस, पहनावा, बोली, सभ्यता, धर्म, आचार-विचार, खाना-पीना इत्यादि में वह अंग्रेजों के समान ही आचरण करें। मैकाले का विचार था कि अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा अनेक भारतवासी ईसाई बन जायेंगे और वह अपने धर्म और संस्कृति से घृणा करने लगेंगे। ऐसे व्यक्तियों से उसे आशा थी कि वह भारत में ब्रिटिश सरकार के सबसे बड़े मित्र व सहयोगी बन सकेंगे।

लार्ड मैकोले की यह नीति ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकार कर ली गई और सन् १८४४ में उसने यह घोषणा कर दी कि सरकार के आधीन केवल उन्हीं लोगों को नौकरी मिल सकेगी जो अंग्रेजी जानते होंगे। उसी वर्ष न्यायालयों की भाषा भी अंग्रेजी कर दी गई। इन दोनों बातों ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के लिये विस्तृत क्षेत्र खोल दिये और सहस्रों विद्यार्थियों ने अंग्रेजी में शिक्षा प्राप्त करना आरंभ कर दिया। सन् १८५५ तक भारत में अंग्रेजी स्कूलों की तादाद १५१ हो गई।

अंग्रेजी शिक्षा की उचित व्यवस्था के लिए भारत सरकार ने समय समय पर जो कमेटियाँ इत्यादि नियुक्त कीं तथा जिस प्रकार उनकी सिफारिशों के आधार पर कार्य किया उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :—

१. १८५४ में वुड का शिक्षा सम्बन्धी पत्र—सन् १८५३ में शिक्षा की उचित व्यवस्था के लिए भारत सरकार ने श्री वुड से एक योजना बनाने को कहा। यह योजना सन् १८५४ में सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की गई। इस योजना की, जिसके आधार पर आगे चल कर हमारे देश की शिक्षा संस्थाओं का संगठन किया गया, मुख्य मुख्य बातें इस प्रकार थीं :—

(१) भारत के प्रत्येक प्रांत मे एक डाइरेक्टर के आधीन शिक्षा विभाग खोला जाय।

(२) देश में जगह जगह विश्वविद्यालय स्थापित किये जायँ।

(३) अध्यापकों की ट्रेनिंग के लिये शिक्षण संस्थायें खोली जायँ।

(४) प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के प्रचार पर जोर दिया जाय।

(५) स्कूलों व कालिजों की संख्या बढ़ाई जाय।

(६) प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को प्रोत्साहन देने के लिये उन्हें सरकार की ओर से आर्थिक सहायता दी जाय।

(७) आरंभ में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

(८) स्त्रियों की शिक्षा के लिये विशेष प्रबन्ध किया जाय।

श्री वुड की योजना के आधीन सन् १८५७ में भारत में तीन विश्वविद्यालय कलकत्ता, बंबई तथा मद्रास में स्थापित कर दिये गये।

(२) हंटर कमीशन की नियुक्ति—सन् १८८२ में भारत सरकार ने एक दूसरी कमीशन की नियुक्ति की। इस कमीशन के प्रधान श्री हंटर थे और इसमें कई प्रमुख भारतीय व अंग्रेज विद्वान सम्मिलित थे। कमीशन ने सिफारिश की कि सरकार माध्यमिक शिक्षा की अपेक्षा प्रारम्भिक शिक्षा पर अधिक जोर देना चाहिये। प्राइवेट संस्थाओं को अधिक आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिये भी उन्होंने सुझाव रक्खा।

(३) १९०४ की यूनिवर्सिटी कमीशन—सन् १९०४ में लार्ड कर्जन के काल में, एक यूनिवर्सिटी ऐक्ट पास किया गया जिसके द्वारा भारत सरकार ने विश्वविद्यालयों के ऊपर अपना नियन्त्रण बढ़ा लिया। साथ ही उसने विश्वविद्यालयों को इस बात की स्वन्त्रता दे दी कि वह माध्यमिक शिक्षा के स्तर को अपनी आवश्यकतानुसार बनाए रखने के लिये विशेष नियम बना सके।

(४) १९१९ के सुधार—१९११ में गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में एक शिक्षा सदस्य की नियुक्ति कर दी गई जिसका अर्थ विभिन्न प्रांतों की शिक्षा संबंधी नीतियों का समन्वय करना था। सन् १९१९ के सुधारों के आधीन शिक्षा का विषय प्रांतों में लोकप्रिय मन्त्रियों के हाथ में सौंप दिया गया। इसके पश्चात विभिन्न प्रांतों में शिक्षा की समुचित प्रगति हुई। जगह-जगह पर विश्वविद्यालय खोले गये, स्कूल और कालिजों की संख्या बढ़ गई, व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध किया गया तथा माध्यमिक शिक्षा के नियन्त्रण का कार्य हाई स्कूल और इन्टरमीजियट बोर्डों को दे दिया गया। परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी अगस्त सन् १९४७ तक जिस समय भारत स्वतन्त्र हुआ, हमारे देश में साक्षर जनता की संख्या केवल २२ प्रतिशत थी।

ब्रिटिश राज्य से उत्पन्न शिक्षा की कुछ समस्याएँ

भारत में अंगरेजी साम्राज्य के विरुद्ध सबसे भीषण आरोप यह लगाया जाता है कि २०० वर्ष से भी अधिक लंबे समय में अंग्रेज हमारी केवल १४ प्रतिशत जनता को साक्षर बनाने में सफल हो सके। टर्की, रूस और जापान में वहाँ की सरकारों ने दस वर्ष से भी कम समय में अपनी समस्त जनता को शिक्षित बना दिया। आधुनिक युग में शिक्षा प्रदान करने के इतने सुगम तथा प्रबल साधन हैं कि यदि उन सब की शरण ली जाय तो समस्त देश की जनता को कुछ ही वर्षों में साधारण शिक्षा प्रदान की जा सकती है। इतना सब कुछ होने पर भी हमारे विदेशी शासकों ने हमें शिक्षित बनाने का कोई शक्तिशाली प्रयत्न नहीं किया और जिस प्रकार की शिक्षा उन्होंने हमें दी, वह भारत की विशेष परिस्थिति व आवश्यकता के विचार से बिलकुल अनुपयुक्त थी। इसलिए अगस्त सन् १९४७ में जिस समय अंग्रेज हमारे देश से विदा हुए तो हमारे देश में शिक्षा की स्थिति इस प्रकार थी :—

(१) **निरक्षता**—हमारे देश में सन् १९४१ की जन-गणना के अनुसार साक्षर जनता की संख्या केवल १४ प्रतिशत थी। इस संख्या में पुरुषों की संख्या २५ प्रतिशत तथा स्त्रियों की संख्या केवल ३ प्रतिशत थी। भिन्न-भिन्न प्रांतों में पढ़ी-लिखी जनता की संख्या अलग-अलग थी। सबसे अधिक साक्षर ट्रावनकोर रियासत में थे और सबसे कम शिक्षा राजपूताना की रियासतों में थी।

(२) **साधारण शिक्षा संस्थायें**—हमारे देश में शिक्षा संस्थाओं की भारी कमी थी। ३५ करोड़ जनता के शिक्षण के लिये हमारे देश में विश्वविद्यालयों की संख्या १८, डिग्री कालेजों की संख्या २३०, इंटर कालेजों की संख्या १८८, हाई स्कूलों की संख्या ३,६३७, मिडिल स्कूलों की संख्या ४,७८६ तथा प्राइमरी स्कूलों की संख्या १,३४,००० थी। इन सब शिक्षा संस्थाओं पर कुल मिला कर केवल ४५ करोड़ रुपया प्रति वर्ष व्यय किया जाता था। इंगलैंड में इसके विपरीत जहाँ की जनसंख्या केवल ८ करोड़ है शिक्षा संस्थाओं पर ४८० करोड़ रुपया प्रति वर्ष व्यय किया जाता है। जनसंख्या के विचार से यदि हमारे देश में एक विद्यार्थी पर २ रुपया ४ आना व्यय किया जाता है तो इंगलैंड में ८० रुपया और अमरीका में १२० रुपया व्यय किया जाता है।

(३) व्यावसायिक शिक्षा—हमारे देश में विद्यार्थियों को जिस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी उसे प्राप्त कर वह केवल सरकारी दफ्तरों में क्लर्की का काम कर सकते थे। उनमें इस बात की योग्यता उत्पन्न नहीं होती थी कि वह कारखानों में नौकरी कर सकें या किसी प्रकार का स्वतन्त्र व्यवसाय कर सकें कलाकौशल व व्यावसायिक शिक्षा संबंधी संस्थाओं की हमारे देश में भारी कमी थी। सन् १९४७-४८ में ऐसी संस्थाओं को संख्या इस प्रकार थी :—

	संस्था संख्या	विद्यार्थी-संख्या
१. कृषि तथा बन कॉलिज	१५	४,०१५
२. व्यापारिक कॉलिज	१८	१४,६५८
३. इंजीनियरिंग कॉलिज	१७	६,४३७
४. मैडिकल कॉलिज	२६	७,९६२
५. आर्ट स्कूल	१४	१,६९८
६. टैकनीकल स्कूल	५०६	३१,३१५
७. व्यापारिक स्कूल	३०२	१५,०८५
८. मैडीकल स्कूल	२०	४,३८७

(४) स्त्री शिक्षा—स्त्रियों की शिक्षा की हमारे देश में और भी हीन अवस्था थी। कुल मिला कर स्त्रियों के लिए हमारे देश में केवल ३१ आर्ट्स कॉलिज, ९ व्यवसायिय कॉलिज, ४१० हाई स्कूल, १०३० मिडिल स्कूल तथा ३२,००० प्राइमरी स्कूल थे। यह देखते हुए कि हमारे देश में सहशिक्षा का अधिक रिवाज नहीं है, इन संस्थाओं की संख्या बहुत ही कम थी। किसी भी देश में प्रजातन्त्र शासन उस समय तक सफल नहीं हो सकता जब तक पुरुषों के साथ साथ उस देश की स्त्रियों को भी शिक्षित न बनाया जाय। यह शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे स्त्रियाँ कुशल गृहिणी बनने के साथ साथ समाज के नागरिक जीवन में भी उपयोगी भाग ले सकें। परन्तु दुर्भाग्यवश जिस प्रकार शिक्षा हमारे स्कूल और कालिजों में स्त्रियों को दी जाती थी उससे दोनों में से कोई भी आदर्शपूर्ण नहीं होता था।

(५) शिक्षा प्रणाली—हमारे अंग्रेज शासकों ने जिस प्रकार की शिक्षा प्रणाली हमारे देश पर लादनी चाही वह हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल

न थी। हमारी शिक्षा संस्थाओं में हमें अपने देश की संस्कृति, सभ्यता, धर्म, आचार-विचार, इतिहास व साहित्य की बातें नहीं पढ़ाई जाती थीं। हम शेक्सपियर और मिल्टन, बायरन और कीट्स का साहित्य पढ़ते थे, परन्तु स्वयं अपने प्राचीन कवियों व साहित्यिकों के सम्बन्ध में हमें कुछ भी ज्ञान प्रदान नहीं किया जाता था। हम दूसरे देशों के इतिहास से अनभिज्ञ रहते थे। हम 'श्रम का आदर' करना नहीं सीखते थे और पश्चात्य शिक्षा प्राप्त कर अपने पारिवारिक व्यवसाय व हाथ के काम से घृणा करने लगते थे।

(६) **शिक्षा का माध्यम**—अंग्रेजों के काल में हमें माध्यमिक व उच्च शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम के द्वारा दी जाती थी। इससे न केवल हम अपनी भाषा व अपने साहित्य से ही अपरिचित रहते थे वरन् अपने विद्यार्थी जीवन का अमूल्य समय, ज्ञानोपार्जन के स्थान पर अंग्रेजी व्याकरण के नियमों को रटने में ही लगा देते थे। यह सच है कि अंग्रेजी के ज्ञान के कारण हमें दूसरे देशों के साहित्य को पढ़ने का अवसर मिलता था, परन्तु इसके लिये यदि अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य विषय न बनाकर उसे केवल एक ऐच्छिक विषय ही बनाया जाता तो अधिक उपयुक्त होता। आज भी अंग्रेजी हमारी विश्व-विद्यालयों में अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है, परन्तु आशा है बहुत शीघ्र हमारी अपनी राष्ट्रभाषा उसका स्थान ग्रहण कर लेगी।

(७) **योजना की कमी**—अंग्रेजों के काल में हमारी शिक्षा प्रणाली का एक और बड़ा दोष यह था कि शिक्षा का प्रसार किसी विशिष्ट योजना के आधीन नहीं किया गया। जिस समय ईस्ट इंडिया कंपनी को अपने आरंभ काल में बहुत से सस्ते भारतीय क्लर्कों की आवश्यकता प्रतीत हुई तो उसने बहुत से स्कूल और कॉलिज खोल दिये। बाद में इन स्कूलों और कॉलिजों में तैयार होने वाले क्लर्कों की संख्या शासन की माँग से कहीं से अधिक बढ़ गई। फल यह हुआ कि हमारे देश में बेकारी निरंतर बढ़ती गई, परन्तु उसे कम करने के लिये शिक्षा योजना में किसी प्रकार का सुधार नहीं किया गया। भारत के विभिन्न प्रान्तों में शिक्षा का प्रसार अलग-अलग ढंग से हुआ और समस्त देश के लिये एक ही प्रकार की शिक्षा नीति का अवलंबन नहीं किया गया। इसी प्रकार प्रारंभिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा का स्तर, अलग-अलग

प्रान्तों में अपने ही ढंग का रहा और सब प्रान्तों में उसे एक ही स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न नहीं किया गया।

स्वतंत्र भारत में इन समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस समय अंग्रेज हमारे देश से गये तो उन्होंने एक इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था हमारे देश में छोड़ी जो हर प्रकार से दोषपूर्ण थी और जो भारत की विशेष परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थी। आज हमारे देश को स्वतन्त्र हुए कुछ ही वर्ष हुए हैं। इतने थोड़े समय में भी भारत सरकार ने अपनी शिक्षा प्रणाली को सुधारने का समुचित प्रयत्न किया है। परन्तु सैकड़ों वर्षों के दोष किसी जादू के प्रयोग से दूर नहीं किये जा सकते। उन्हें दूर करने के लिये वर्षों के सतत् एवं निरंतर परिश्रम की आवश्यकता पड़ेगी। अभी तक भारत सरकार एवं हमारे देश की प्रान्तीय सरकारों ने इस दिशा में जो रचनात्मक कार्य किया है उसका विवरण इस प्रकार है :—

(१) साक्षरता आंदोलन—भारत से निरक्षरता दूर करने के लिये प्रायः प्रत्येक प्रान्त की सरकार ने साक्षरता आंदोलन आरंभ किया है जिसके अंतर्गत प्रौढ़ व्यक्तियों को शिक्षा प्रदान की जाती है। इस आंदोलन में रेडियो, सिनेमा, मैजिक लैंटर्न, थ्येटर स्टेज, संगीत, पोस्टर, चार्ट प्रदर्शनी व हर प्रकार के उपायों को काम में लाया जा रहा है। देश के प्रायः प्रत्येक भाग में ही प्रौढ़ शिक्षा-केन्द्र स्थापित कर दिये गये हैं और प्रत्येक प्रान्तीय सरकार ने इस प्रकार की योजनाएँ बनाई हैं जिसके अंतर्गत लगभग १० वर्ष में हमारे देश की अधिकतर जनता शिक्षित हो सकेगी।

प्रारंभिक शिक्षा के दोष

(२) प्रारंभिक शिक्षा—हमारे देश की प्रारंभिक शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह था कि जिस प्रकार के स्कूलों में ४ वर्ष तक यह शिक्षा प्रदान की जाती थी उन स्कूलों में विद्यार्थियों के आकर्षण व उनके व्यक्तित्व के विकास के लिये उपयुक्त वातावरण विद्यमान नहीं था। हमारी पाठशालाएँ हर्ष और उल्लास का केन्द्र नहीं थीं। उनमें विद्यार्थियों की ज्ञानेन्द्रियों के शिक्षण के लिये उपयुक्त साधन नहीं थे। उनके अध्यापक शिक्षा के आधुनिक

तरीकों से अपरिचित थे; उन्हें इतना वेतन नहीं दिया जाता था कि वे अपने काम में पूर्ण रुचि ले सकें और बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिये नये-नये उपाय काम में लायें अथवा नये-नये प्रयोगों का उपयोग करें। शिक्षा को जीवन की आवश्यकताओं से संबंधित कराने का भी कोई प्रयत्न नहीं किया जाता था। ग्रामीण क्षेत्रों के बालक स्कूलों में पढ़ने के पश्चात् खेती व घरेलू उद्योग-धन्धों से घृणा करने लगते थे। अनिवार्य शिक्षा न होने के कारण केवल २० प्रतिशत बालक ही चौथी कक्षा तक पहुँच पाते थे। शेष बच्चे बीच में ही शिक्षा छोड़ देते थे। इसका परिणाम यह होता था कि वर्षों का प्रयत्न निष्फल हो जाता था और अधपढ़े-लिखे बालक शीघ्र ही पढ़ा-लिखा भूल कर अशिक्षितों की श्रेणी में मिल जाते थे। इन सब दोषों के अतिरिक्त प्रारंभिक शिक्षा में सबसे बड़ा दोष यह था कि उनका प्रबन्ध नगर-पालिकाओं और जिला मंडलियों के हाथ में छोड़ दिया जाता था। इन संस्थाओं के पास रुपयों की कमी होती थी और वह शिक्षा के प्रसार में अधिक धन व्यय नहीं कर सकती थीं।

सुधार के उपाय—प्रारंभिक शिक्षा के इन सभी दोषों को दूर करने के लिये हमारी प्रान्तीय सरकारों ने समुचित कार्य किया है। उन्होंने अनेक क्षेत्रों में अनिवार्य शिक्षा की घोषणा कर दी है जिससे विद्यार्थी कुछ वर्षों पश्चात् विद्याध्ययन का कार्य न छोड़ दें। अनेक स्कूलों में बुनियादी शिक्षा (Basic Education) के आधार पर शिक्षा दी जाती है। इन स्कूलों में ६ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया है। अक्षर ज्ञान के अतिरिक्त इन स्कूलों में विद्यार्थियों को कृषि, पौधों की रक्षा, कताई, बुनाई, ग्रामीण अर्थशास्त्र व विविध उद्योग धन्धों की शिक्षा दी जाती है। अध्यापकों के वेतन में समुचित बढ़ोतरी कर दी गई है तथा उन्हें नई तालीम की शिक्षा देने के लिये स्थान-स्थान पर शिक्षण केन्द्र खोल दिये गये हैं। नगर-पालिकाओं और जिला मंडलियों को भी प्रान्तीय सरकारें शिक्षा प्रसार के कार्य के लिये विशेष आर्थिक सहायता प्रदान करती हैं।

यह सच है कि अभी तक आर्थिक साधनों की कमी के कारण हमारे देश की प्रारंभिक शिक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन नहीं हुआ है परन्तु इस

ओर धीरे-धीरे अत्यंत ठोस कार्य किया जा रहा है और आशा है कि कुछ ही वर्षों में हमारे देश के सभी प्रारंभिक स्कूल बुनियादी शिक्षा के आधार पर बालकों को ६ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक अनिवार्य शिक्षा प्रदान कर सकेंगे।

(३) माध्यमिक शिक्षा—प्रारंभिक शिक्षा के अतिरिक्त हमारी प्रांतीय सरकारों ने माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में भी सुधार करने का प्रयत्न किया है। माध्यमिक शिक्षा वर्नाकुलर मिडिल स्कूल, इंगलिश मिडिल, हाई स्कूल तथा इंटरमीजियेट कालेजों में दी जाती है। विभिन्न प्रान्तों में माध्यमिक शिक्षा की श्रेणियों का विभाजन अलग-अलग प्रकार से किया जाता है। कहीं चौथी कक्षा से दसवीं कक्षा तक, कहीं सातवों से १२वीं तक और कहीं पाँचवीं से ११वीं तक माध्यमिक शिक्षा का क्षेत्र माना गया है। देहली प्रांत में ५वीं कक्षा से ११वीं कक्षा तक माध्यमिक शिक्षा दी जाती है। उत्तर प्रदेश में यही शिक्षा बारहवीं कक्षा तक दी जाती है। कुछ प्रान्तों में माध्यमिक शिक्षा का प्रबन्ध हाई स्कूल बोर्डों के हाथ में है, कुछ दूसरे प्रान्तों में यही प्रबन्ध रजिस्ट्रार आफ डिपार्टमैंटल एक्जामिनेशन्स के द्वारा किया जाता है। कहीं-कहीं इंटरमीजियेट शिक्षा का प्रबन्ध यूनिवर्सिटियों के हाथ में भी है। हमारे अपने प्रान्त में माध्यमिक शिक्षा का प्रबन्ध एक 'शिक्षा बोर्ड' द्वारा किया जाता है। वर्नाकुलर फाईनल की परीक्षा के लिये हमारे प्रांत में एक दूसरी संस्था है। यह संस्थायें अपने आधीन सभी स्कूलों का निरीक्षण करती हैं, विभिन्न कक्षाओं के लिये पाठ्य-क्रम का निश्चय करती हैं। परीक्षाओं का आयोजन करती हैं तथा विभिन्न श्रेणियों के लिये पुस्तकों का चुनाव करती हैं।

माध्यमिक शिक्षा के दोष

हमारी इस शिक्षा प्रणाली में सबसे बड़ा दोष यह है कि भिन्न-भिन्न प्रांतों में माध्यमिक शिक्षा का संगठन अलग-अलग ढंग से किया जाता है। इसीलिये विद्यार्थियों को एक प्रांत से दूसरे प्रान्त में शिक्षा प्राप्त करने में भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस दोष को दूर करने के लिये भारत सरकार ने निश्चय किया है कि वह सारे देश की माध्यमिक शिक्षा प्रणाली की जाँच करने के लिये एक कमेटी नियुक्त करेगी। अभी तक इस कमेटी के

सदस्यों के नामों की घोषणा नहीं की गई है, परन्तु आशा है कि अब शीघ्र ही यह कमेटी नियुक्त कर दी जायगी। हमारी वर्तमान माध्यमिक शिक्षा प्रणाली के दूसरे दोष यह हैं :—

(१) माध्यमिक शिक्षा का सम्बन्ध विद्यार्थियों के बाहरी जीवन से नहीं है। जिस प्रकार की शिक्षा हमारे स्कूलों में दी जाती है उसे प्राप्त कर विद्यार्थी अपने व्यावहारिक जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

(२) शिक्षा प्रदान करते समय विद्यार्थियों की रुचि व उनके मानसिक दृष्टिकोण का विचार नहीं रक्खा जाता। सभी विद्यार्थियों को प्रायः एक ही प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है। हमारे स्कूलों में मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञों को नौकर नहीं रक्खा जाता जो विद्यार्थियों की योग्यता व उनकी विशेष विषयों में रुचि का पता लगा सकें।

(३) वर्तमान शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों के सांस्कृतिक विकास में सहायता प्रदान नहीं करती, न ही उसके द्वारा उनमें साधारण ज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। विद्यार्थियों को ऐसे विषयों की शिक्षा कम दी जाती है जिसे प्राप्त कर वह अपने देश के सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठा सकें अथवा उनमें इस बात की योग्यता उत्पन्न हो जाय कि वह अपने देश व संसार की समस्याओं पर स्वतन्त्र रूप से विचार कर सकें।

(४) हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति में परीक्षाओं को विशेष महत्त्व दिया जाता है। विद्यार्थी किसी प्रकार पुस्तकों को रट कर परीक्षाओं को पास कर लेने में ही शिक्षा की इतीश्री समझ लेते हैं। वह वास्तविक ज्ञान व सत्य की खोज में नहीं निकलते। उनका ज्ञान अत्यंत सीमित होता है। उनमें तार्किक शक्ति का विकास नहीं होता।

(५) इस शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजों को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। पाठ्य पुस्तकें अधिकतर अंग्रेजी में होती हैं। इससे विद्यार्थियों का बहुत सा अमूल्य समय विषय को समझने की अपेक्षा अंग्रेजी समझने में लग जाता है।

(६) स्कूल के अध्यापकों को बहुत कम वेतन दिया जाता है जिससे वह पूरी रुचि के साथ अपने काम में भाग नहीं लेते। स्कूलों में केवल ऐसे ही

लोग अध्यापक का कार्य करते हैं जो दूसरे हर स्थान में नौकरी प्राप्त करने के प्रयत्न में निराश होकर अंतिम दिशा में अध्यापक बनना स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे लोग सदा इसी प्रयत्न में लगे रहते हैं कि किसी प्रकार उन्हें सरकारी नौकरी मिल जाय। वह अध्यापन के कार्य को अपने जीवन का आदर्श नहीं बनाते। इससे न केवल शिक्षा संस्थाओं के कार्य में ही रुकावट पड़ती है वरन् अध्यापकों को बदलते रहने से विद्यार्थियों की शिक्षा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। विद्यार्थियों के हृदय में अपने गुरू के प्रति श्रद्धा का निर्माण नहीं होता है और वह समझने लगते हैं कि उनके गुरू विद्या की अपेक्षा रुपये से अधिक प्रेम करते हैं।

(७) माध्यमिक शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा पर जोर नहीं दिया जाता। हमारी शिक्षा संस्थाओं में इस बात का प्रबन्ध नहीं है कि जो विद्यार्थी पाठ्य विषयों में रुचि न लें उन्हें विभिन्न उद्योग-धन्धों व ललित कलाओं की शिक्षा दी जा सके। हमारे देश के कितने ही होनहार नवयुवक ज्योमेट्री, गणित, अंग्रेजी, भूगोल, विज्ञान व इसी प्रकार के विषयों में प्रवीण न होने के कारण प्रति वर्ष परीक्षाओं में फैल हो जाते हैं। ऐसे विद्यार्थियों की योग्यता का उन्हें किसी प्रकार के उद्योग-धन्धों व कलाकौशल के काम में लगा कर उपयोग नहीं किया जाता।

सुधार के उपाय

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हमारे देश की प्रांतीय सरकारों ने माध्यमिक शिक्षा के इन दोषों को दूर करने का सक्रिय प्रयत्न किया है। देहली प्रान्त में जो केन्द्रीय सरकार के आधीन है, माध्यमिक शिक्षा के स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया गया है। इस प्रान्त में आठवीं कक्षा के पश्चात विद्यार्थी के माता-पिता को इस बात का निश्चय करना पड़ता है कि वह अपने बालक को क्या बनाना चाहता है, इंजीनियर, डाक्टर, कारीगर, व्यापारी, वैज्ञानिक अथवा साधारण ग्रैज्युएट। आठवीं कक्षा के पश्चात ३ वर्ष तक विद्यार्थी को ऐसे विषयों की शिक्षा दी जाती है जिसका ज्ञान प्राप्त कर वह एक विशेष दशा में अपने जीवन का मार्ग निश्चित कर सकता है। परन्तु इस प्रान्त में भी अभी तक विद्यार्थियों के औद्योगिक शिक्षण के लिये समुचित प्रबन्ध नहीं

किया गया है। देहली में केवल एक ही "पौलीटैकनिक" संस्था है। हमारे देश में इस प्रकार की सहस्रों संस्थाओं की आवश्यकता है जिससे विद्यार्थी पढ़ाई के समय विभिन्न उद्योग-धन्धों का अध्ययन करें और फिर अपने मन में इस बात का निश्चत कर सकें कि उन्हें किस प्रकार का कार्य अधिक रुचिकर प्रतीत होता है ? बहुत से उद्योग-धन्धों व कलाकौशल के कामों को स्वयं देखे बिना हम विद्यार्थियों से किस प्रकार आशा कर सकते हैं कि वह अपने माता-पिता को यह बता सकेंगे कि उनकी रुचि अमुक काम में है। सरकार को चाहिये कि वह प्रत्येक शिक्षा संस्था में इस प्रकार के प्रवीण मनोवैज्ञानिक रक्खे जो पाँचवीं से आठवीं कक्षा के बीच प्रत्येक विद्यार्थी के कार्य की जाँच-पड़ताल करें और फिर उसके आधार पर बच्चों के माता-पिताओं को इस बात का परामर्श दें कि उनका बालक किस उद्योग व विषय में प्रवीणता प्राप्त कर सकता है।

उत्तर प्रदेश की सरकार द्वारा भी माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था में समुचित परिवर्तन किया गया है। वहाँ पर हायर सेकेण्डरी स्कूलों की योजना स्वीकार कर ली गई है। सरकार ने निश्चय किया है कि वह इन्टर-मीजियेट कालिजों को तोड़ कर उन्हें हायर सेकेण्डरी स्कूलों में बदल देगी। परन्तु दिल्ली प्रांत की भाँति वहाँ पर हायर सेकेण्डरी स्कूलों का पाठ्य क्रम ३ वर्ष का नहीं रक्खा गया। उसके स्थान पर यह पाठ्य क्रम ४ वर्ष का ही निश्चित किया गया है। हायर सेकेण्डरी स्कूलों के नीचे जूनियर हाई स्कूलों की व्यवस्था की गई है जिनमें ८वीं कक्षा तक पढ़ाई होगी। शिक्षा का माध्यम हिंदी कर दिया गया है और अंग्रेजी को केवल एक ऐच्छिक विषय बना दिया गया है। गणित को भी अंग्रेजी के समान ऐच्छिक विषय का स्थान दिया गया है। अध्यापकों के वेतनों में भी बढ़ोतरी करने का प्रयत्न किया गया है और जगह-जगह उनके शिक्षण के लिये ट्रेनिंग कालिज खोल दिये गये हैं।

भारत के दूसरे प्रांतों में भी इसी प्रकार के सुधार किये गये हैं, परन्तु उन सुधारों से केवल उस समय विशेष लाभ हो सकता है जब भारतीय संघ के अन्तर्गत सभी राज्यों में एक ही योजना के आधीन कार्य किया जाय। इसी बात को दृष्टि में रख कर जैसा पहले भी बताया जा चुका है, भारत सरकार

ने निश्चय किया है कि वह माध्यमिक शिक्षा की जाँच के लिये शीघ्र ही एक विशेषज्ञों की कमेटी नियुक्त करेगी।

उच्च शिक्षा

विश्वविद्यालय

हमारे देश की विश्वविद्यालयों में जिनकी संख्या २६ है, कला, विज्ञान कामर्स, इंजीनियरिंग, कानून व डाक्टरी की शिक्षा प्रदान की जाती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहिले हमारे देश में विश्वविद्यालयों की संख्या केवल १८ थी। इस समय हमारे देश में जो विश्वविद्यालय हैं उनके नाम इस प्रकार हैं :—

आगरा (१९२७), अलीगढ़ (१९२०), इलाहाबाद (१८८७), आँध्र (१९२६), अन्नामलाई, (१९२९), बड़ौदा (१९४९) बंबई, (१८५७), कलकत्ता (१८५१), दिल्ली (१९२२), पंजाब (१८८२) गोहाटी (१९४९), काश्मीर (१९४९), लखनऊ (१९२०), मद्रास (१८५७), मैसूर (१९१६), नागपुर (१९२३), उस्मानिया (१९१८), पटना (१९१७), पूना (१९४९), कर्नाटक (१९४०) राजपूताना (१९४७), रुढ़की (१९४९), सागर (१९४६), ट्रावनकोर (१९३८), उत्कल (१९४८), विश्व भारती शांतिनिकेतन (१९५१)

इन विश्वविद्यालयों में गोहाटी, काश्मीर, पूना, राजपूताना, रुढ़की, सागर व उत्कल की यूनिवर्सिटियाँ अभी हाल ही में बनाई गई हैं। रुढ़की यूनिवर्सिटी इंजीनियरिंग की शिक्षा प्रदान करने के लिये भारत की प्रथम यूनिवर्सिटी है! गोरखपूर में एक और यूनिवर्सिटी बनाई जा रही है जिसका उद्देश्य विद्यार्थियों को प्राचीन आदर्श पर, ग्रामीण वातावरण में शिक्षा प्रदान करना होगा। बनारस में एक और संस्कृत यूनीवर्सिटी बनाने की भी योजना है। मध्य भारत में भी एक यूनीवर्सिटी स्थापित करने का प्रयत्न हो रहा है।

भारत की विश्वविद्यालयों को हम दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं—(१) शिक्षक (टीचिंग) विश्वविद्यालय और (२) सम्मेलक (ऐफलियेटिंग)

विश्वविद्यालय। कुछ विश्वविद्यालय दोनों ही प्रकार के काम करती हैं— शिक्षा प्रदान करने का कार्य और अपने आधीन कॉलिजों में परीक्षा लेने व उनकी देख-भाल करने का कार्य। कलकत्ता, बंबई, मद्रास, नागपुर, आँध्र व जयपुर में इसी प्रकार के विश्वविद्यालय हैं। हमारे अपने प्रांत में इलाहाबाद लखनऊ, बनारस, अलीगढ़ व रुढ़की में शिक्षक विश्वविद्यालय है जहाँ विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है। आगरा की विश्वविद्यालय केवल सम्मेलन विश्वविद्यालय है जिसका मुख्य कार्य कॉलिजों को स्वीकृति प्रदान करना, उनका निरीक्षण करना एवं उनमें परीक्षाओं की व्यवस्था करना है। सम्मेलन विश्वविद्यालयों की अपेक्षा शिक्षक विश्वविद्यालयों में अध्यापन व अनुसंधान के कार्य का स्तर ऊँचा होता है और वहाँ पर अत्यंत योग्य व अनुभवी आचार्यों द्वारा शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाती है।

विश्वविद्यालयों का प्रबंध एक 'सीनेट' अथवा 'कोर्ट' द्वारा किया जाता है जिसके कुछ सदस्य निर्वाचित होते हैं और कुछ मनोनीत। प्रत्येक विश्व-विद्यालय में एक वाइसचांसलर होता है जिसका चुनाव 'सीनेट' अथवा 'कोर्ट' के सदस्यों द्वारा किया जाता है और जिसे विश्वविद्यालय का दिन प्रति दिन का कार्य चलाने के लिये हर प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं। विश्व-विद्यालय स्वायत्त संस्थाओं के रूप में कार्य करती हैं और प्रांतीय व केन्द्रीय सरकार उनके काम में हस्तक्षेप नहीं करती। देहली, अलीगढ़ व बनारस की विश्वविद्यालयों का सीधा संबंध केन्द्रीय सरकार से है। दूसरी विश्वविद्यालय प्रांतीय कानूनों के अन्तर्गत कार्य करती हैं। विश्वविद्यालयों का व्यय सरकारी सहायता व फीस के आधार पर चलता है। सब प्रान्तों में मिला कर यूनिवर्सिटी की शिक्षा पर ३ करोड़ ४० लाख रुपया प्रति वर्ष व्यय किया जाता है। जिसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार अपने कोष में से ४६ लाख रुपया वार्षिक विश्व-विद्यालयों की शिक्षा पर व्यय करती है।

सन् १६४७-४८ में हमारे देश की विश्वविद्यालयों में कुल विद्यार्थियों की संख्या १,२६,००० थी। इनमें से इन्टरमीजियेट कक्षाओं में ८२,००० विद्यार्थी, बी० ए० व बी० एस० सी० कक्षाओं में ३८,००० विद्यार्थी और एम० ए० व एम० एस सी० कक्षाओं में ८००० विद्यार्थी थे। इसी वर्ष मैट्रिक

की परीक्षा में ४,१०,००० विद्यार्थी प्रविष्ट हुए इसका अर्थ यह हुआ कि मैट्रिक की परीक्षा पास करने के पश्चात लगभग ७५ प्रतिशत विद्यार्थी अपनी पढ़ाई जारी नहीं रखते।

दूसरे देशों में विश्वविद्यालय

कुछ लोगों का विचार है कि हमारे देश में बहुत अधिक विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते हैं और उनकी संख्या कम करने के लिये हमें विश्वविद्यालयों व कॉलिजों की संख्या कम कर देनी चाहिये। इस संबंध में कुछ दूसरे देशों के आँकड़े नीचे दिये जाते हैं। इन्हें देखने से प्रतीत होगा कि हमारा देश यूनिवर्सिटी के क्षेत्र में कितना पिछड़ा हुआ है और विश्वविद्यालयों अथवा कॉलिजों की संख्या कम करने के स्थान पर हमारे देश में ऐसी और अनेक संस्थाओं की आवश्यकता है।

नाम देश	जन संख्या जिसके पीछे एक विद्यार्थी विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करता है
भारत	२,८००
इंगलैंएड	८८५
फ्रांस	५१७
दक्षिणी अफ्रीका	२३८
कैनाडा	२२७
अमरीका	१२४

उच्च शिक्षा के दोष

(१) हमारे देश में सबसे अधिक कमी इंजीनियरिंग कौलिज, मैडिकल कौलिज एवं टैक्निकल संस्थाओं की है। सब मिलाकर हमारे देश में केवल २,५०० विद्यार्थियों को प्रति वर्ष इंजीनियरिंग शिक्षा प्रदान की जाती है। अमरीका में इस प्रकार की संस्थाओं में २,४०,००० विद्यार्थी प्रतिवर्ष शिक्षा ग्रहण करते हैं।

(२) हमारी विश्वविद्यालयों में पुस्तकों का ज्ञान सैद्धान्तिक होता है व्यावहारिक नहीं। रसायन शास्त्र में एम० एस सी० की परीक्षा पास करने के पश्चात् भी विद्यार्थियों में इतना व्यावहारिक ज्ञान नहीं आता कि वह अपने

घर के लिये साधारण साबुन अथवा बूट पालिश भी बना सकें। इसी प्रकार अर्थशास्त्र, व्यापार शास्त्र, राजनीति, नागरिक शास्त्र इत्यादि विषयों का अध्ययन मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में अधिक सहायक सिद्ध नहीं होता।

(३) विश्वविद्यालयों में अधिकतर विद्यार्थी इसलिये भरती होते हैं कि उनके पास कुछ और काम करने के लिये नहीं होता। उन्हें यूनिवर्सिटी के विषयों में रुचि नहीं होती, फिर भी वह बेकारी की समस्या को कुछ वर्षों के लिये स्थगित करने के लिये पढ़ने के कार्य में लग जाते हैं। वह कभी विज्ञान पढ़ते हैं तो कभी समाज शास्त्र, कभी एक विषय में एम० ए० की परीक्षा पास करते हैं तो कभी किसी दूसरे विषय में। कभी वकालत पढ़ते हैं तो कभी जनरलिज्म। और इसी प्रकार वह बेकारी के भूत से बच निकलने का सतत् प्रयत्न करते हैं।

(४) हमारी विश्वविद्यालयों की विभिन्न कक्षाओं में इतने विद्यार्थी होते हैं कि अध्यापक भाषण देने के अतिरिक्त उनसे किसी प्रकार का संबन्ध स्थापित नहीं कर सकते। बहुत बार अध्यापकों को यह भी पता नहीं होता कि अमुक विद्यार्थी उनके कौलिज में भी पढ़ता है अथवा नहीं। सच्ची शिक्षा प्रदान करने के लिये विद्यार्थियों तथा उनके अध्यापकों के बीच का सम्पर्क नितांत आवश्यक है। यही कारण है कि जहाँ प्राचीन भारत के आश्रमों में विद्यार्थियों के जीवन पर उनके गुरू के चरित्र की गहरी छाप पड़ती थी, वहाँ आजकल के कौलिज व यूनिवर्सिटियों के विद्यार्थी एक सच्चे गुरू के अभाव में अपने व्यक्तित्व का विकास करने में सफल नहीं होते।

(५) विश्वविद्यालयों के अन्दर शिक्षा प्राप्त करने में इतना अधिक धन व्यय होता है कि गरीब माता-पिताओं के बच्चे कभी उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा तक नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, हमारे कौलिजों और यूनिवर्सिटी के छात्रों का जीवन इतना फैशनप्रिय और विलासी बनता जाता है कि परीक्षा पास करने के पश्चात् जब उन्हें नौकरी नहीं मिलती तो वह अपने पारिवारिक जीवन के साथ सामंजस्य पैदा नहीं कर सकते। इस दशा में न केवल उनका अपना ही जीवन निरर्थक हो जाता है वरन् वह अपने माता-पिताओं के लिये भारस्वरूप हो जाते हैं।

(६) हमारी यूनिवर्सिटियों में अंग्रेजी की शिक्षा को बहुत अधिक प्रधानता दी जाती है। प्रायः सभी विषय अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही पढ़ाए जाते हैं। इससे विद्यार्थियों की समस्त शक्ति अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करने में लग जाती है और उन्हें इतना अवकाश नहीं मिलता कि वह अपने विषय का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकें।

परीक्षाओं को यूनिवर्सिटी शिक्षा में अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। विद्यार्थी अपनी कक्षा में दिन प्रति दिन क्या कार्य करता है, वह अपने विषय में कितनी रुचि लेता है, उसके अध्यापक उसके कार्य के विषय में क्या राय रखते हैं, इन बातों की ओर परीक्षा के समय कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। परिणाम यह होता है कि परीक्षा से कुछ ही महीने पहले विद्यार्थी कुछ आवश्यक प्रश्नों के उत्तर रट लेते हैं और फिर उन्हें परीक्षा के समय दोहरा कर पास हो जाते हैं। ऐसे विद्यार्थियों में अपने विषय की वास्तविक योग्यता नहीं होती और वह जीवन में सच्ची सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

(८) सब विश्वविद्यालयों में एक ही प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है। उनमें इस बात का प्रयत्न नहीं किया जाता कि अलग-अलग विषयों में विशेषता प्राप्त की जाय। उदाहरणार्थ यदि एक यूनिवर्सिटी में अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ तैयार हों तो दूसरी यूनिवर्सिटी में राजनीति के और तीसरे में दर्शनशास्त्रों के इत्यादि। प्राचीन भारत में विश्वविद्यालयों में जैसा हम पहले देख चुके हैं, इसी प्रकार की व्यवस्था थी।

यूनिवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट—दोषों को दूर करने के उपाय

हमारी उच्च शिक्षा प्रणाली के इन्हीं दोषों का विचार रखते हुए भारत सरकार ने सन् १९४८ में सर राधाकृष्णन के नेतृत्व में एक कमेटी बिठाई थी और उसे आदेश दिया था कि वह इन दोषों को दूर करने के लिये अपने रचनात्मक सुझाव सरकार के सम्मुख रक्खे। इस यूनिवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट मार्च सन् १९५० में प्रकाशित कर दी गई। संक्षेप में हम कमीशन के सुझावों का विवरण इस प्रकार दे सकते हैं :—

(१) भारत में प्राचीन आदर्श पर ग्राम्य यूनिवर्सिटियाँ खोली जायँ, जहाँ विद्यार्थियों को कृषि व ग्राम सुधार सम्बन्धी इस प्रकार की शिक्षा प्रदान

की जाय कि वह परीक्षा पास करने के पश्चात भारतीय गाँवों के जीवन में सक्रिय भाग ले सकें।

(२) यूनिवर्सिटी कक्षाओं में केवल ऐसे ही विद्यार्थियों को भरती किया जाय जो वहाँ के विषयों की पढ़ाई से वास्तविक लाभ उठा सकें। शेष विद्यार्थियों के लिये औद्योगिक व टेकनिकल शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाय।

(३) यूनिवर्सिटी व उसके आधीन कौलिजों में विद्यार्थियों की अधिक से अधिक संख्या क्रमशः ३,००० व १,५०० निश्चित की जाय जिससे अध्यापक अपने शिष्यों के साथ वैयक्तिक संपर्क स्थापित कर सकें।

(४) विश्वविद्यालयों में छुट्टियों की संख्या कम की जाय जिससे अधिक पढ़ाई की जा सके।

(५) विद्यार्थियों के साथ अध्यापकों का वैयक्तिक संपर्क स्थापित करने के लिये प्रत्येक यूनिवर्सिटी व कौलिज में ट्यूटोरियल क्लास खोली जायँ। इन क्लासों में अध्यापक विद्यार्थियों के लिखित काम की जाँच करें एवं उन्हें पुस्तकालय से अधिक से अधिक पुस्तक पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दें।

(६) यूनिवर्सिटी कक्षाओं में किन्हीं विशेष पुस्तकों के द्वारा पढ़ाई नहीं की जाय। अध्यापकों को चाहिये कि वह विद्यार्थियों को उस विषय की सभी उपयोगी पुस्तकों को पढ़ने के लिए बाध्य करें।

(७) यूनिवर्सिटी में विद्यार्थियों का प्रवेश स्कूल की १२ कक्षाओं को पास करने के पश्चात किया जाय। प्रथम डिगरी कोर्स तीन वर्ष का रक्खा जाय। आनर्स की परीक्षा पास कर लेने के पश्चात एम० ए० की परीक्षा का समय एक वर्ष हो और बी० ए० की परीक्षा पास करने के पश्चात दो वर्ष।

(८) राष्ट्रभाषा हिंदी का अध्ययन प्रत्येक छात्र के लिये अनिवार्य कर दिया जाय। अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन एक ऐच्छिक विषय बना दिया जाय। कमीशन ने अभी यह उचित नहीं समझा कि सभी विषयों का अध्ययन हिंदी के माध्यम के द्वारा ही किया जाय। इस सम्बन्ध में कमीशन को सबसे बड़ा डर यह था कि हिंदी में प्रमाणिक पुस्तकों का अभाव है और जब तक भिन्न-भिन्न विषयों की बहुत सी पुस्तकें हिंदी में नहीं लिखी जातीं, उस समय

तक राष्ट्रभाषा को सभी विषयों के पठन पाठन के लिए माध्यम नहीं बनाया जा सकता।

(६) यूनिवर्सिटी के अध्यापकों का वेतन बढ़ाने के सम्बन्ध में भी कमीशन ने अपने सुझाव रक्खे हैं। उसने कहा है कि किसी कौलिज के अध्यापक को १५० रुपये मासिक से कम और यूनिवर्सिटी के अध्यापक को २०० रुपये मासिक से कम वेतन नहीं मिलना चाहिये।

भारत सरकार ने यूनिवर्सिटी कमीशन की उपरोक्त सभी सिफारिशें मान ली हैं और आशा है कि अब शीघ्र ही हमारे देश में यूनिवर्सिटी शिक्षा के इतिहास में एक नया अध्याय आरंभ होगा।

निष्कर्ष

भारत की प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा के विवरण से पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि हमारे अंग्रेज शासकों ने जिस प्रकार की शिक्षा प्रणाली हमारे देश में छोड़ी वह भारत की विशेष परिस्थिति के प्रतिकूल थी। हमारे देश की प्रांतीय सरकारों व केन्द्रीय सरकार ने इस अवस्था में सुधार करने का समुचित प्रयत्न किया है, परंतु कोई भी सरकार इस प्रकार का कार्य कुछ ही दिनों में पूर्ण नहीं कर सकती। यह सच है कि शिक्षा अच्छे सामाजिक जीवन की कुञ्जी है। उसी के प्रसार पर किसी देश में प्रजातन्त्र शासन की सफलता निर्भर करती है। वह किसी राष्ट्र के चरित्र का निर्माण करती है। उसी के द्वारा नागरिकों को अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का ज्ञान होता है। और इसलिये यह नितांत आवश्यक है कि हमारी शिक्षा प्रणाली से उन दोनों दोषों को शीघ्रातिशीघ्र दूर किया जाय जिनके कारण हम अपनी नवप्राप्त स्वतन्त्रता से पूर्ण लाभ उठाने में असमर्थ हैं। हमारी शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जो हमारे जीवन का सर्वाङ्गीण विकास कर सके। हमें अपनी शिक्षा-पद्धति में प्राचीन भारत व आधुनिक समाज की सभी अच्छी बातों का समन्वय करना चाहिये। हमें अपने नागरिकों को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करनी चाहिये जिसके द्वारा हम अपनी प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता से प्रेरणा प्राप्त कर सकें। साथ ही हमारी शिक्षा प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिये जो हममें किसी भी प्रकार के संकीर्ण विचार व संकुचित

भावना का संचार न करे। विचारों की स्वतंत्रता हमारी शिक्षा-पद्धति का सदा से गुण रहा है और इस गुण का किसी देश में भी हमें परित्याग नहीं करना चाहिये। हमारे नव संविधान के नियामक सिद्धांतों में स्पष्ट आदेश दिया गया है कि भारत सरकार संविधान लागू होने के १० वर्ष के अन्दर इस बात का प्रयत्न करेगी कि भारत का प्रत्येक नागरिक १४ वर्ष की आयु तक निःशुल्क और अनिवार्य रूप में एक इस प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर सके जिसका आधार विचारों की स्वतन्त्रता, मानव व्यक्तित्व की गरिमा, धर्म, विश्वास और उपासना की स्वतन्त्रता और राष्ट्र की एकता हो। हमें पूर्ण आशा है कि बहुत शीघ्र हमारी प्रांतीय व केन्द्रीय सरकारें इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने में सफल होंगी और हमारे देश में एक इस प्रकार की आदर्श शिक्षा प्रणाली का प्रदुर्भाव होगा जिस पर हमारी आने वाली पीढ़ियाँ गर्व कर सकेंगी।

शिक्षा विभाग का संगठन

वैसे तो शिक्षा का विषय एक प्रांतीय विषय है और भारतीय संघ के अंतर्गत राज्यों की सरकारों को इस बात का पूर्ण अधिकार है कि वह अपनी अधिकार क्षेत्र में जिस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था रखना चाहें रक्खें, परन्तु केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत भी सारे राज्यों के शिक्षा सम्बन्धी कार्य का समन्वय करने तथा समस्त देश के लिये एक ही शिक्षा-नीति का संचालन करने के लिये, एक शिक्षा विभाग होता है। यह विभाग एक शिक्षा मन्त्री के आधीन कार्य करता है वैसे तो सन् १९११ के पश्चात् से वायसराय की कार्यकारिणी में सदा एक शिक्षा सदस्य नियुक्त किया जाता था, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहिले उसे शिक्षा के अतिरिक्त तीन और विभागों की देख-भाल करनी पड़ती थी। पिछले तीन वर्षों में शिक्षा का विषय पूर्ण रूप से एक कैबिनेट मन्त्री के आधीन सौंप दिया गया है। भारत सरकार इस विषय को कितना महत्त्व प्रदान करती है तथा किस प्रकार समस्त देश के लिये एक ही शिक्षा नीति का सञ्चालन करना चाहती है, यह परिवर्तन उसी बात का द्योतक है।

शिक्षा मंत्री की सहायता के लिये उनके आधीन एक पूरा सचिवालय

कार्य करता है जिसका अध्यक्ष शिक्षा मंत्री (Education Secretary) एवं शिक्षा सलाहकार कहलाता है। उसके आधीन सयुक्त शिक्षा सलाहकार डिप्टी शिक्षा सलाहकार तथा कई सहायक शिक्षा सलाहकार कार्य करते हैं।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय को उनके नीति सम्बंधी कार्य में सहायता प्रदान करने के लिये कई समितियाँ होती हैं इन समितियों में सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों ही प्रकार के सदस्य होते हैं।

दूसरे देशों में भारतीय विद्यार्थियों की सहायता करने के लिये शिक्षा सचिवालय अपने प्रतिनिधि नियुक्त करता है। विदेशों में स्थित भारतीय दूतावासों में अपने सांस्कृतिक दूतों की नियुक्ति करना भी केन्द्रीय शिक्षा सचिवालय का ही कार्य है।

केन्द्रीय सरकार अपनी ओर से कई शिक्षा संस्थाओं का स्वयं संचालन करती है उदाहरणार्थ पबलिक स्कूल लवडेल, मद्रास, प्रिंस आफ वेल्स स्कूल देहरादून, केन्द्रीय शिक्षा इन्स्टीट्यूट (Central training institute) देहली इत्यादि। इसके अतिरिक्त अलीगढ़, बनारस व देहली की विश्वविद्यालयों का सीधा संपर्क केन्द्रीय सरकार से है। वह उन्हें स्वयं आर्थिक सहायता प्रदान करती हैं।

आजकल देश की कठिन आर्थिक स्थिति के कारण हमारी केन्द्रीय सरकार भारत में शिक्षा के प्रसार के लिये अधिक कार्य नहीं कर रही है परन्तु जैसे ही इस स्थिति में सुधार होगा, वह अनेक योजनाओं पर एक साथ कार्य करेगी।

शिक्षा की प्रान्तीय व्यवस्था

केन्द्र की भाँति भारतीय सङ्घ के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य के मन्त्री मंडल में एक शिक्षा मन्त्री होता है। उसके आधीन एक शिक्षा सचिवालय काय करता है जिसका सर्वोच्च अधिकारी डाईरेक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन कहलाता है। उसकी सहायता के लिये कई डिप्टी तथा असिस्टेंट डाइरेक्टर होते हैं। शिक्षा प्रबंध की दृष्टि से सारा राज्य कुछ डिविजनों, जिलों तथा तहसीलों में बाँट दिया जाता है। इन भागों के शिक्षा कर्मचारी क्रमशः इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स, डिस्ट्रिक्ट इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स तथा सब डिप्टी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स कहलाते हैं। प्रांतीय सरकार अपनी ओर से कितने ही इन्टरमीजियेट कौलेज, हाई

स्कूल तथा व्यावसायिक स्कूलों का स्वयं प्रबंध करती है। इसके अतिरिक्त प्राइवेट संस्थाओं द्वारा भी अनेक हाई स्कूल, मिडिल स्कूल, प्रायमरी स्कूल तथा कॉलिज इत्यादि खोले जाते हैं। इन सब संस्थाओं पर नियंत्रण रखना भी प्रांतीय शिक्षा विभाग का कार्य है।

प्रायः प्रत्येक राज्य में ही प्रारंभिक शिक्षा का प्रबंध नगर पालिकाओं व जिला मंडलियों द्वारा किया जाता है। शिक्षा विभाग के अधिकारियों का काम इन संस्थाओं के कार्य की देख-रेख करना होता है। माध्यमिक शिक्षा की देख-भाल हाई स्कूल व इन्टरमीजियेट शिक्षा बोर्डों द्वारा की जाती है। उच्च शिक्षा का प्रबंध विश्वविद्यालय करते हैं।

दूसरे प्रगतिशील देशों की अपेक्षा हमारे अपने देश में शिक्षा विभाग एवं शिक्षा संस्थाओं की स्थिति अधिक अच्छी नहीं है। शिक्षा विभाग को सरकार के दूसरे सभी विभागों से कम आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। जब कभी कटौती का प्रश्न उठता है तो सबसे पहिले उसका प्रभाव शिक्षा विभाग पर ही पड़ता है। हमारे देश की अधिकतर शिक्षा संस्थाओं की स्थिति भी इस प्रकार की है। उनकी आर्थिक दशा अत्यन्त खराब होती है और वह इस प्रकार की व्यवस्था नहीं कर सकतीं जिसके अन्तर्गत विद्यार्थी एक सुन्दर वातावरण में अत्यन्त योग्य तथा अनुभवी अध्यापकों के द्वारा आदर्श शिक्षा ग्रहण कर सकें। भारतवर्ष के परिवर्तित वातावरण में हमें पूर्ण आशा है कि अब इन दोषों को शीघ्र ही दूर करने का प्रयत्न किया जायगा और हमारे देश में एक इस प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का जाल बिछा दिया जायगा जिनमें शिक्षा प्राप्त कर भारत के भावी नागरिक अपने चरित्र का निर्माण एवं अपने राष्ट्र की अधिकाधिक सेवा कर सकेंगे।

योग्यता प्रश्न

(१) अपने प्रांत की शिक्षा प्रणाली के मुख्य लक्षण बताओ। इस प्रणाली में सुधार किस प्रकार किया जा सकता है? (यू० पी० १९३६, ४४)

(२) भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली में क्या गुण थे। उन्हें आजकल की शिक्षा प्रणाली में किस प्रकार कार्यान्वित किया जा सकता है?

(३) कहा जाता है कि हमारा आधुनिक शिक्षा-संगठन, भारत की आवश्यकताओं के प्रतिकूल है। इसमें सुधार कैसे किया जा सकता है? (यू० पी० १९३३)

(४) आधुनिक शिक्षा प्रणाली के क्या दोष हैं? उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है? (यू० पी० १९४३)

(५) भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली के क्या दोष हैं? यूनीवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट में उन्हें किस प्रकार दूर करने का प्रयत्न किया गया है?

(६) केन्द्रीय तथा प्रांतीय शिक्षा विभागों के संगठन की विवेचना कीजिये।

(७) बुनियादी शिक्षा किसे कहते हैं? भारत में इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के क्या साधन हैं?

(८) भारत तथा दूसरे देशों की शिक्षा प्रणाली की तुलना कीजिये।

अध्याय १६

धर्म तथा धर्म सुधार आंदोलन

संसार के आरंभ से ही मनुष्य समाज धर्म को विशेष महत्व देता रहा है। यदि धर्म के वास्तविक तत्व को समझा जाय तो यह मनुष्य को मानसिक वेदना, क्लेश और सांसारिक दुखों से छुड़ाकर उसे संतोष, प्रसन्नता और शांति प्रदान करता है। गार्हस्थ्य जीवन का स्थायित्व और अस्तित्व धर्म के परिणामस्वरूप ही होता है। धर्म के प्रभाव से ही मनुष्य परमात्मा की सर्वज्ञता में विश्वास रखते हैं और परस्पर वैर भाव और द्वेष को छोड़कर प्रेमपाश में बँध जाते हैं। धर्म में आस्था रखने वाले पुरुष मृत्युलोक को तुच्छ मान कर परलोक और अक्षय जीवन की बातें सोचते हैं और पाप और पुण्य के सिद्धांतों को मान कर अच्छे कामों में प्रवृत्त होते हैं जिससे उन्हें मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग तथा मुक्ति की प्राप्ति हो सके।

परन्तु शोक है कि मतवादियों ने धर्म को बिगाड़कर उसके मिथ्या अर्थ निकाले हैं। प्रेम और सहानुभूति के स्थान पर उसे वैर भाव और निष्ठुरता तथा स्वार्थसिद्धि का साधन बना दिया हैं। अपने मनमाने सिद्धांतों, भ्रमात्मक रीतियों, धर्मांधता और साम्प्रदायिकता जैसे दुर्गुणों का प्रयोग आज धर्म की दुहाई देकर ही किया जाता है। सब प्रकार के पाप और कुकर्म आज धर्म के नाम पर ही होते हैं। यहाँ तक कि रक्तपात, मनुष्यों की बलि, मदिरा-पान, जुआ, वेश्यावृत्ति, व्यभिचार और अस्पृश्यता आदि भी धर्म के नाम पर ही स्तुत्य ठहराये जाते हैं।

धर्म का वास्तविक स्वरूप

भारत में, जो कि मतमतांतरों का केन्द्र है, उपरोक्त बुराइयाँ सर्वत्र फैली हुई हैं। हमारा देश जो कभी संसार का गुरू था, आज अधःपतन की

पराकाष्ठा को पहुँच गया है। यहाँ के लोग बाल विवाह, देवदासीपन, स्त्रियों का परदा, जात-पाँत तथा बाल्काल में भी विधवा होने पर पुनर्विवाह का विरोध केवल धर्म का आश्रय लेकर ही करते हैं। हम यह भूल गये हैं कि धर्म, अविद्या, भय और दुराग्रह का नाम नहीं। धर्म तो वह जीवन है जो कि स्त्री-पुरुषों की आत्मा में उस शक्ति और उष्णता का संचार करता है जो उन्हें ऊँचे और उत्तम काम करने में सहायक होती है। वास्तव में धर्म, रीति-रिवाज, आचार शास्त्र तथा लोक-मत का नाम भी नहीं है। यह तो वह ज्योति है जो मनुष्य को उसके अपने अन्दर निहित परमात्मा का साक्षात्कार कराती है और उसे बताती है कि यदि वह अपने आत्मा के स्वरूप को पहचाने तो वह इस मृत्युलोक को भी स्वर्गलोक बना सकता है।

भारत में धर्म का प्रभाव

भारतीय जनता धर्म के तत्व को भूलकर आडम्बरवाद में फँस गई है। धर्म की बाहरी वेष भूषा का यहाँ इतना प्रभाव है कि करोड़ों लोगों की जीवन-चर्या का आधार यही धार्मिक आडम्बर ही है। हम समझते हैं कि सन्ध्या, गंगास्नान, दरिद्रों को दान और बड़े बूढ़ों की आज्ञापालन करके पांडित्य के सूत्र में बद्ध हो जाना ही धर्म के मुख्य अंग हैं। इसी कल्पित धर्म के प्रसाद में हम छूत अछूत, बाल विवाह, मूर्ति पूजा और चूल्हे-चौके की पवित्रता को भी सम्मिलित कर लेते हैं। धर्म यह नहीं है। धर्म वह है जो कि प्रत्येक समय की परिस्थिति के अनुसार हमें ठीक मार्ग पर चलने का आदेश दे। वह काल और समय के साथ साथ परिवर्तित हो जाय। जाति पाँति की पद्धति उस समय तो ठीक थी जब कि जाति को परम्परागत एक ही कार्य करने वालों की आवश्यकता थी। परन्तु आजकल इस कला और यन्त्र के युग में, इस जर्जरित विधान से चिमटे रहना मूर्खता मात्र ही तो है। इस प्रकार बाल विवाह, घूँघट, बुरका, छूतछात और संयुक्त गृह पद्धति भी समय के प्रतिकूल है।

हम यह तो भूल ही जाते हैं कि धर्म एक वैयक्तिक विषय है वह परमात्मा और सत्य को पाने का मार्ग है। हमारी सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। लेकिन कितने दुख की बात है कि भारत में उपरोक्त सब समस्याएँ भी धार्मिक दृष्टिकोणों से ही देखी जाती हैं।

हमारे देश में हिन्दू और मुसलमान आपस में इसलिये नहीं मिल सके कि उनका धर्म अलग-अलग है। वह एक दूसरे के पर्व, त्यौहारों, शादी और सहभोज अथवा सामाजिक और धार्मिक समागमों में सम्मिलित नहीं होते। मुसलमान का छुआ पानी हिंदू नहीं पीते। वह मुसलमानों की बस्ती में रहना पसन्द भी नहीं करते। अपने ही हिंदू भाइयों के साथ उनका व्यवहार संकोच-रहित नहीं होता। हरिजन अर्थात् अछूत हिंदुओं से मेल-जोल नहीं रखते। अपनी उपजाति से बाहर वह शादी ब्याह नहीं करते। शादी तो दूर रही, कई ऊँची जाति वाले अपनी जाति छोड़कर दूसरे के हाथ का खाना भी ग्रहण करना पसन्द नहीं करते। कुछ साल पहिले समुद्र यात्रा को भी वर्जित समझा जाता था।

परन्तु अब धीरे धीरे काल और परिस्थिति के प्रभाव से यह सब भ्रमात्मक शङ्काएँ हटती जाती हैं। परन्तु ग्रामीण लोगों में अब भी जागृति नहीं हो पाई है।

आर्थिक क्षेत्र में भी कौन सी जाति को क्या-क्या काम-धन्धा करना है, इसका निर्णय भी धर्म धुरन्धरों ने किया है। कोई अछूत (हरिजन), ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्यों का व्यापार नहीं कर सकता। धर्माचार्यों ने उसके भाग्य में सदा के लिये पानी भरना और भार ढोना ही लिख दिया है।

राजनैतिक क्षेत्र में स्वराज्य प्राप्ति के लिये भी हिंदू और मुसलमान एक नहीं हो सके क्योंकि वे धार्मिक भेदभाव के कारण एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते रहे। देश में इसी सन्देह के कारण और धार्मिक सन्देहों को भड़काने से हिंदू मुसलिम बलवे होते रहे। इसी धर्मान्धता के कारण पाकिस्तान की रचना हुई और इससे पूर्व प्रथम निर्वाचन प्रणाली का आरम्भ हुआ।

हिंदू विश्वविद्यालय और मुसलिम कॉलिज, हिंदू अनाथालय और मुसलिम यतीमखाना, हिंदू पानी और मुस्लिम पानी की जड़ में भी यही भेद काम करता है।

भारत में धर्म से एक दूसरे को विभक्त करने का ही काम लिया गया है। यहाँ धर्म के नाम पर ही कत्ल होते हैं। आरती और नमाज के कारण महाउपद्रव होते हैं। यह भुला दिया गया है कि धर्म का आधार तो प्रेम

और सहिष्णुता है। कोई भी धर्म एक दूसरे के सिर फोड़ने या पीठ में छुरा भोंकने की शिक्षा नहीं देता। धर्म का सच्चा अनुगामी तो वह है जो मनुष्य मात्र से प्रेम करता है।

धम के कारण भारत में आर्थिक तथा राजनैतिक अवनति

हमारी राजनैतिक दासता और पराजय के कारणों में हिंदू धर्म की वैराग्य और त्याग भाव की शिक्षा का भी बहुत कुछ हाथ था। हमारे आचार्य सांसारिक जीवन और उसके वैभव को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखते रहे। सदैव परलोक पर ही उनकी दृष्टि लगी रही। इस संसार के सुखों को त्याग कर जङ्गलों, वनों अथवा तीर्थ स्थानों पर जा कर भगवान् का चिंतन करना ही उनका अन्तिम लक्ष्य रहा आया। हमारे पूर्वजों ने हमें अलौकिक शक्तियों और दिव्य सिद्धियों में विश्वास करना सिखलाया। इस प्रकार हमारा दृष्टि-कोण यथार्थवाद से बहुत परे हट गया। इसलिये जब मुसलमान इस देश में लूट-मार करते आये तो उनका सङ्गठित विरोध करने के स्थान पर हम देवी-देवताओं से रक्षा की याचना करने लगे। इससे पहले जब भारतवासी स्वतन्त्र थे, तो उन्होंने समुद्रयात्रा की छूत भय से विदेश विजय का प्रयत्न नहीं किया। जब अंग्रेज आये तो हमने अपनी धर्म पुस्तकों को छोड़कर मुसल-मानों के साथ मिलकर उनका मुकाबिला नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों ने भी यहाँ लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक राज्य किया।

आर्थिक क्षेत्र में भी धर्म ने हमें संतोष का पाठ पढ़ाकर रुपये-पैसे की ओर से मुँह मोड़े रखने का उपदेश दिया। उसने हमें सिखाया कि भगवान तो दरिद्रों के घर में वास करते हैं। चारों वर्णों के लिये स्थाई कर्म नियत करके उसने लोगों को स्वतन्त्रता पूर्वक व्यापार करने के मार्ग में बाधा डाली। लोग पराक्रम और साहस छोडकर दब्बू और एक स्थान वासी बन गये। धर्म ने हमें भाग्य पर आश्रित करके कर्म करने से रोका। परिणाम यह हुआ कि हम दरिद्रता में प्रसन्न और दुर्भाग्य में संतुष्ट रहने वाले बन गये।

भारतीय धार्मिक आंदोलन

आंदोलनों के कारण—मुसलमानों के भारत में आने से पूर्व ही हिंदू धर्म

में इतनी कुरीतियाँ उत्पन्न हो गई थीं कि लोग इस धर्म के अपनाने में लज्जा का अनुभव करने लगे थे। इसलिए जब अंग्रेजी राज्य के काल में ईसाई मत के सीधे साधे सिद्धांतों का प्रचार हुआ तो हिंदू नवयुवक उससे अति प्रभावित हुये। सहस्रों की संख्या में वह ईसाई धर्म में प्रविष्ट होने लगे। ऐसा प्रतीत होने लगा कि हिंदू धर्म की इतीश्री हो जायगी। ऐसे समय में भारत में ऐसे हिंदू सुधारक और विचारक पैदा हुये जिन्होंने हिंदू धर्म की पुरानी विचारमाला का संशोधन करके उसे तार्किक नींव पर ला खड़ा किया। यह धार्मिक क्रान्ति उन्नीसवीं सदी में हुई।

अब हम कुछ ऐसे महत्वपूर्ण धार्मिक आंदोलनों का वर्णन करते हैं जो हिंदू धर्म के सुधार के कारण हुए।

ब्रह्म समाज

१६वीं शताब्दी में सबसे पहली धर्म सुधारक संस्था ब्रह्म समाज थी। इसके प्रवर्तक उस काल से अद्वितीय महापुरुष राजा राममोहन राय थे। इनका जन्म सन् १८७२ में बंगाल के एक कुलीन ब्राह्मण घराने में हुआ था जिसका बंगाल के शाही घराने से पुराना सम्बन्ध था। राजा राममोहन राय हिंदी, अरबी, उर्दू, फारसी, संस्कृत, यूनानी भाषाओं के भारी विद्वान थे। आप ईसाई, मुसलिम और हिंदू धर्म की पूरी जानकारी रखते थे। उन्होंने देखा कि प्राचीन हिंदू धर्म और उपनिषदादि ग्रन्थों में जाति-पाँति, छुआ-छूत, मूर्तिपूजा, बहु विवाह, भ्रूण हत्या और सती आदि की कुप्रथाओं की कहीं भी आज्ञा नहीं है। इसलिए उन्होंने इनका घोर विरोध किया। उन्होंने अपने अनुयायियों को बताया कि वैदिक हिंदू धर्म बड़ा सरल, सम्पूर्ण और युक्त संगत है। राममोहन राय ने हिंदू धर्म को ईसाइयों के आक्रमणों से बचाया जिसके प्रभाव से हजारों हिंदू ईसाई बनते चले जा रहे थे। वह एक बहुत बड़े सुधारक थे। उन्होंने विधवा विवाह का प्रचार किया। सती प्रथा, पशुओं की बलि और मूर्ति पूजा का भी खंडन किया। लार्ड विलियम बैंटिक ने भी सती बन्दी का कानून राजा राममोहन राय के आग्रह से ही लागू किया था।

राजा राममोहन राय पर ईसाई मत का काफी प्रभाव पड़ा था। परन्तु

उन्होंने ईसाई धर्म और अंग्रेजी शिक्षा से लाभदायक अंश ही अपनाये। बन्दरों की तरह विदेशियों की नकल को वह बहुत बुरा समझते थे। परायी अच्छी बातों को स्वीकार करने पर भी आप पूरे भारतीय थे।

आप नये युग के ऋषि थे। आपने अपनी जाति को पुनर्जीवित करने और सामाजिक तथा जातीय पुनरुत्थान के लिये योरप की सब अच्छी बातों को संकलित करने की शिक्षा दी। इसी कार्य के प्रोत्साहन के लिए उन्होंने अगस्त, सन् १८२८ में ब्रह्म समाज की नींव डाली।

ब्रह्म समाज के नियम

ब्रह्म समाज के मुख्य-मुख्य नियम निम्नलिखित हैं :—

१. परत्मामा एक व्यक्ति है जो कि सम्पूर्ण सद्गुणों का केन्द्र और भण्डार है।

२. परमात्मा ने कभी जन्म नहीं लिया न देह ही धारण किया है।

३. परमात्मा प्रार्थना सुनता है और स्वीकार करता है।

४. सब जाति और वर्णों के लोग परमात्मा की पूजा कर सकते हैं। परमात्मा की पूजा और भक्ति के लिए मन्दिर, मस्जिद और आडम्बर की आवश्यकता नहीं। केवल आत्मा से उसकी पूजा होनी चाहिये।

५. पाप का त्याग और पाप कर्म से पश्चात्ताप ही मोक्ष के साधन हैं।

६. मानसिक ज्योति और विशाल प्रकृति ही परमात्मा के ज्ञान के साधन हैं। किसी पुस्तक को दैवी मानने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि कोई पुस्तक त्रुटिरहित नहीं होती।

ब्रह्म समाज की स्थापना के चार वर्ष बाद ही राममोहन राय का इंगलैंड में देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु के पश्चात ब्रह्म समाज में फूट पड़ गई और उसमें दो दल बन गये। एक दल के नेता जगद्विख्यात कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता श्री देवेन्द्र नाथ टैगोर थे। वह हिन्दू धर्म के अधिक निकट थे और उपनिषदों में विश्वास रखते थे। वह जाति पाँति तोड़ने पर अधिक बल न देते थे। दूसरा दल श्री केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में ईसाई मत के अधिक निकट था और वह ईसा की बहुत प्रशंसा करते थे। वह हिन्दू समाज में समूल

परिवर्तन करना चाहते थे, इस दल को 'प्रार्थना समाज' भी कहते हैं। श्री टैगोर की शाखा को आदि समाज कहते हैं।

ब्रह्म समाज एक विचार सुधारक संस्था थी। जिस पर कि ईसाई धर्म का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था इसीलिए यह आन्दोलन सर्वसाधारण में लोकप्रिय नहीं हुआ। आजकल इसके अनुयायी केवल बंगाल में ही हैं और वह भी पाँच-छः हजार से अधिक नहीं।

ब्रह्म समाज के कृत्य

ब्रह्म समाज ने ऐसे काल में हिन्दू समाज की बहुत सेवा की, जब बाहरी और आंतरिक आक्रमणों से वह अत्यन्त पीड़ित थी। उसने उसे ईसाई मत का आहार बनने से बचाया। 'सती' की प्रथा का बन्दीकरण, स्त्रियों का उद्धार, और अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार उसी के प्रयत्न के फल हैं।

आर्य समाज

आर्य समाज की स्थापना गुजरात, काठियावाड़ के रहने वाले एक सन्यासी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने की। वह एक अत्यन्त शक्तिशाली तथा प्रभावशाली वक्ता थे। ब्रह्म समाज ने तो बंगाल के अंग्रेजी पठित समाज पर ही अपना प्रभाव डाला था, परन्तु आर्य समाज का प्रभाव सर्वसाधारण में फैला।

स्वामी दयानन्द काठियावाड़ प्रांत के एक साधारण से ग्राम (टंकरा) में सन् १६२४ में उत्पन्न हुए थे। बाल्यकाल से ही वह धर्म के प्रेमी और वैदिक ग्रन्थों के रसिक थे। उनके पिता पंडित अम्बाशङ्कर ने २२ वर्ष की आयु में ही उन्हें ब्याहने की योजना रची। परन्तु, नवयुवक मूल शङ्कर चोरी-चोरी घर से भाग निकला और एक सद्गुरु की खोज में भारत का चक्कर लगाने लगा। अन्त में १४ वर्ष के अनुसंधान के पश्चात् सन् १८६० में उसे एक अन्धे दंडी सन्यासी मथुरा में मिले जिनका नाम पण्डित बृजानन्द सरस्वती था। इनकी शिक्षा से दयानन्द को संतोष और सांत्वना प्राप्त हुई। बृजानन्द ने कहा कि वेद में पूर्ण सत्य विद्यमान है और पाश्चात्य शिक्षा ने संसार में मिथ्याकार मतान्तरों का प्रचार किया है।

स्वामी दयानन्द ने सन् १८३३ की मई में अपने गुरु से विदा ली और

उत्तरी भारत में विशेष उत्साह और पराक्रम से प्रचार कार्य आरम्भ किया। उन्होंने हिन्दी और संस्कृत में कई पुस्तकें लिखीं। सत्यार्थ प्रकाश में जो कि उनकी सबसे महत्वपूर्ण रचना है उन्होंने हिन्दू धर्म की सब दूसरे धर्म में श्रेष्ठता सिद्ध की है। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि वेदों में मूर्ति पूजा, जन्म पर निर्भरित जाति-पाँति, छूत-छात, सती प्रथा इत्यादि का कहीं भी बखान नहीं है और केवल एक परमात्मा की पूजा का ही आदेश है जो कि निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी और दयालु है। स्वामी दयानन्द राजा राममोहन राय से अधिक प्रभावशाली सुधारक सिद्ध हुए। उन्होंने जाति-पाँति हटाने, विधवाओं के पुनर्विवाह और आपस में सम्मिलित खान-पान पर बहुत बल दिया। उन्होंने हिंदू धर्म को प्रचारक और अन्य धर्मावलम्बियों को शुद्ध करके मिलाने वाला धर्म बना दिया। उन्होंने लोगों में आत्म-सम्मान, देश प्रेम, स्वतन्त्रता और अपने पूर्वजों पर गौरव करने का भाव भर दिया। यही भाव बाद में भारत में स्वतन्त्रता आंदोलन के कारण हुए।

स्वामी दयानन्द समाज सुधार कार्य में तो ब्रह्म समाज, थियोसॉफिकल सोसाइटी और ईसाई पादरियों से सहमत थे परन्तु धार्मिक सिद्धान्तों में उनके पूर्ण विरोधी थे। उनका नाद था "वेद की शरण लो"। ब्रह्म-समाज को 'वेदों में परमात्मा की वाणी है' इस सिद्धान्त में विश्वास नहीं था। ईसाई केवल बाइबिल को ईश्वरीय ज्ञान मानते थे और थियोसॉफिस्ट सब धर्मों की पुस्तकों को इश्वरीय मानते हैं। परन्तु स्वामी जी ने कहा कि वेद की संहिता ही ईश्वरीय ज्ञान है और परमात्मा के अंतिम वाक्य। ब्रह्म समाज पर ईसाइयत का बहुत प्रभाव था, परन्तु स्वामी दयानन्द केवल प्राचीन हिंदू सभ्यता के पुनरुत्थान के पक्षपाती थे।

स्वामी जी ने पहिली आर्य समाज बंबई में सन् १८७५ में खोली। दो वर्ष पश्चात् लाहौर में भी आर्य समाज की स्थापना हुई। लाहौर वाली समाज की बहुत उन्नति हुई और यह सारे आर्य समाज आंदोलन का केन्द्र बन गई।

आर्य समाज के नियम

आर्य समाज के दस नियम इस प्रकार हैं :—

(१) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानंदस्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वांतर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

(३) वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिए।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिए।

(६) संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(७) सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य व्यवहार करना चाहिए।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालन करने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में स्वतन्त्र।

आर्य समाज के कृत्य

आज उत्तरी भारत के कोने-कोने में आर्य समाज की शाखाएँ विद्यमान हैं। यह एक जीवित संस्था है जिसके कार्यकर्ताओं का समूह उत्थान से परिपूर्ण है। आर्य समाज ने हिंदुओं को व्यर्थ के भ्रमजाल और मिथ्या आडम्बरों से मुक्त करा कर अपने पुरातन धर्म में निष्ठावान होना सिखाया है। शुद्धि करना और अन्य मतावलम्बियों को मिलाना इसी ने दर्शाया है। जातीय ज्योति का जागरण और सुव्यवस्थित सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी सुधार इसी के प्रताप से आविर्भूत हुए हैं। गुरुकुल, दयानन्द कौलिज और अन्य

संस्थायें स्थापित करके इसने वैदिक शिक्षा और अध्ययन का प्रचार किया है। लड़कियों और अछूतों को शिक्षित करने में भी इसका बहुत बड़ा हाथ है। विधवा आश्रम और अन्य आश्रम स्थापित करके विधवाओं और अनाथों को अन्य धर्मों में जाने से रोकना और हिंदुओं के मरण-जीवन, शादी व्याह आदि की रीतियों को सरल करने के कार्य भी इसी ने किये हैं।

सन् १८८२ में ब्रह्म समाज के समान आर्य समाज में भी फूट पड़ गई। एक पक्ष कौलिज पार्टी और दूसरा महात्मा या गुरुकुल पार्टी के नाम से घोषित हुआ। कौलिज पार्टी खान-पान में स्वतन्त्र और गुरुकुल पार्टी निरामिष भोजी है।

आर्य समाज अब अपने लाभदायक जीवन के दिन बिता चुकी है। सनातन धर्म ने अब उसके समाज सुधार कार्य को अपना लिया है। शेष कार्य कांग्रेस कर रही है। यदि आर्य समाज ने कोई और सजग कार्यक्रम न अपनाया तो उसका अंत अनिवार्य है। जीवन गति के मन्द पड़ जाने के चिह्न तो उसमें अभी से दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

थियोसॉफिकल सोसाइटी

थियोसॉफिकल सोसायटी की स्थापना मैडम ब्लैंडवस्की और कर्नल अल्काट ने ७ दिसम्बर, १८७५ को न्यूयार्क में की। इसके चार साल पश्चात दोनों संस्थापक भारत में आये और मद्रास प्रांत के अन्तर्गत अदयार में उन्होंने अपना मुख्य केन्द्र स्थापित किया। मैडम ब्लैंडस्की के जीवन के विषय में बहुत सी प्रमोत्पादक बातें कही जाती हैं और उसके आजीवन ब्रह्मचारिणी होने पर भी बहुत संदेह किया जाता है। परन्तु हम उसके व्यक्तिगत जीवन से संपर्क न रखते हुये उसके सिद्धान्तों और शिक्षा का ही उल्लेख करेंगे।

थियोसोफी समस्त धर्मों की मौलिक सत्यता में विश्वास रखती है। उसकी दृष्टि में सब धर्मों की शिक्षा और सार एक ही हैं। परन्तु वह बौद्ध तथा हिंदू धर्म को सत्य का सबसे उत्तम तथा पूर्ण रूप मानती है। यह धर्म परिवर्तन में विश्वास नहीं रखती और सब धर्मावलम्बी इसके सदस्य बन सकते हैं। यह

आवागमन और कर्म के सिद्धान्त में भी विश्वास रखती है और जाति-पाँति, ऊँच-नीच, काले-गोरे के भेद को नहीं मानती। यह एक ऐसे भेद भाव रहित व्यक्तियों के समाज की रचना करना चाहती है जो कि सत्य का अनुसंधान और मनुष्य मात्र की सेवा करना चाहते हैं। इसके निम्न तीन ध्येय हैं:—

१. जाति, उपजाति, धर्म और रङ्ग के भेद को हटा कर विश्वव्यापी भ्रातृत्व के लिये एक केन्द्र स्थापित करना।

२. समस्त धर्मों, सिद्धान्तों और विज्ञान का संक्षेप अध्ययन करना।

३. मनुष्य की गुप्त शक्तियों और प्रकृति के गूढ़ नियमों का स्पष्टीकरण करना।

थियोसाफिकल सोसायटी को जगद्विख्यात करने में एक आयरि महिला श्रीमती एनी बीसेंट का बहुत बड़ा हाथ है। वह भारत को अपनी मातृ भूमि मान कर हिन्दू बन गई थीं। उन्होंने हिन्दू धर्म की ईसाइयत के आक्रमणों से रक्षा की और भारत के लिये राजनैतिक और सामाजिक सुधार का बहुत काम किया। पूरे ४० वर्ष तक इस महान् महिला ने भारत में रह कर अपनी समस्त शक्तियाँ हिंदू जाति की सेवा में लगा दीं। उसने मूर्ति पूजा आदि का भी जिसे युक्ति युक्त सिद्ध करना कठिन था, प्राचीन और अर्वाचीन विज्ञान की सहायता से मुंडन किया। सत्य तो यह है कि किसी भी एक व्यक्ति ने हिंदू धर्म की श्रेष्ठता स्थापित करने में इतना काम नहीं किया जितना एनी बीसेंट ने।

थियोसॉफिकल सोसाइटी के कृत्य

थियोसाफिकल सोसाइटी ने भारतीय समाज की बड़ी सेवाएँ की हैं। इसने सब धर्मों में सद्भाव बढ़ाने के लिये सहिष्णुता का प्रचार किया और अपनी सभ्यता पर हमें गर्व करना सिखाया। इसने संसार भर में हिंदुत्व का प्रचार किया। इसके नेताओं ने राजनैतिक क्षेत्र में भी काम किया।

वेदान्त समाज

थियोसाफिकल सोसायटी यद्यपि हिंदू धर्म और भारत की प्राचीन संस्कृति का मण्डन करती थी, परन्तु वह समस्त हिंदू धर्म का आख्यान न करती थी

और न ही अपने कथन का आधार वेदान्त पर स्थापित करती थीं। यह काम एक बंगाली साधु श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने किया। उन्होंने सारे संसार में उपनिषदों की शिक्षा का प्रचार किया और संसार को हिंदू फिलासफी का प्रशंसक बना दिया। उन्होंने जिस समाज की स्थापना की वह वेदान्त समाज कहलाता है।

स्वामी रामकृष्ण—श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस सन् १८३४ में हुगली परगने के एक धनहीन ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। बाल काल से ही उनकी स्मृति तीव्र और धर्म प्रेम असाधारण था। वह बहुत पंडित नहीं थे और इसलिये एक साधारण पुजारी के व्यवसाय से ही अपना निर्वाह करते थे। काली देवी को वह संसार की और अपनी माता समझते थे और उनके चिंतन में लीन होकर तन मन की सुधि भुला देते थे। उनका विश्वास था कि परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है, इसलिये कई वर्षों तक उन्होंने कठिन तपस्या और भक्ति का जीवन बिताया। एक बार ६ मास तक समाधि अवस्था में रहे और इसके पश्चात् उन्हें अनुभव हुआ कि उन्हे भगवान कृष्ण के साक्षात दर्शन हुए हैं। उनकी इस सिद्धि में उन्हें एक परम विद्वान ब्राह्मण साध्वी सन्यासी तोतापुरी महंत से बहुत सहायता मिली। उन्होंने परमहंस जी को वेदांत और योग के गूढ़ रहस्य बतलाये।

परमात्मा के दर्शन के पश्चात श्री रामकृष्ण ने अछूतों और अन्य मतावलंबियों से घृणा दूर करने का अभ्यास किया। इसके लिये उन्होंने चांडाल की वृत्ति धारण की और पाखाना और गन्दी नालियाँ साफ कीं। मुसलमान और ईसाइयों का धर्म समझने के लिये उन्होंने उन जैसा रहनसहन अख्तियार किया। अन्त में उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि सब धर्म सच्चे हैं और एक ही स्थान पर पहुँचने के वे भिन्न भिन्न साधन हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी—परमहंस श्री रामकृष्ण के सबसे योग्य शिष्य स्वामी विवेकानंद हुए जो कलकत्ता के एक बड़े घराने के उच्च शिक्षा पाये हुए नवयुवक थे। सन् १८८६ में गुरु के स्वर्गवास पर उन्होंने गुरु के संदेश को चारों ओर फैलाने का भार अपने कंधे पर लिया। वह कोलंबो होते हुए अमेरिका, कनैडा और इंगलैंड पहुँचे और इन सब देशों में उन्होंने हिंदू

धर्म का प्रचार किया। सन् १८९३ में शिकागो के सर्व धर्म सम्मेलन में आपने हिंदू सिद्धांतों का वह महत्त्व बताया कि समस्त सदस्य उनकी भारी प्रशंसा करने लगे। इसी समय न्यूयार्क हेरल्ड पत्र ने लिखा :—

"सर्व धर्म सम्मेलन में विवेकानंद की दिव्य मूर्ति ही समस्त सभा मण्डल पर छा रही है। उनके प्रवचन सुनने के बाद हम ऐसा अनुभव करते हैं कि इतनी महान् शिक्षित जाति को ईसाई मिशन भेजने में हम कितनी मूर्खता करते हैं।"

स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु के नाम पर रामकृष्ण मिशन की स्थापना की और प्रचारक तैयार करने के लिये कलकत्ता के निकट बैलूर और अल्मोड़ा के निकट मायावती में मठ स्थापित किये। जब कभी देश में कहीं अकाल, बाढ़ या महामारी पड़ जाती है तो यही मठ सन्यासी पीड़ितों की सहायता के लिये सबसे आगे होते हैं।

स्वामी रामतीर्थ—वेदान्त के प्रचार कार्य में स्वामी रामतीर्थ ने भी बहुत बड़ी सहायता दी। वह आरम्भ में लाहौर के गवर्नमेंट कालेज में प्रोफेसर थे परन्तु बाद में नौकरी छोड़कर वह सन्यासी हो गये। उन्होंने जापान, अमेरिका तथा योरप में भ्रमण करके वेदान्तवाद का प्रचार किया। उनके भाषण की शैली इतनी प्रभावयुक्त तथा मनमोहिनी थी कि हजारों की संख्या में पुरुष और स्त्रियाँ उनका भाषण सुनने के लिये उतावली रहती थीं। अमेरिका के पूर्व प्रधान रूजवेल्ट भी आपके भक्त बन गये थे। इनकी मृत्यु सन् १९०३ में बहुत अल्प आयु में ही हो गई जब वह केवल ३७ वर्ष के ही थे।

वेदान्तवाद के मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार हैं:—

१. सब धर्म एक समान अच्छे और सत्य हैं। अतः हर व्यक्ति को अपने ही धर्म में रहना चाहिये।

२. परमात्मा अव्यक्त, अज्ञेय और प्रतिबन्ध रहित है। उसका साक्षात-कार संसार के किसी भी भाग में सभी मनुष्यों को हो सकता है। मनुष्य की आत्मा सचमुच ईश्वरीय है। सब मनुष्य सन्त हैं। मूर्ति पूजा, अति शुद्ध और उच्चकोटि की आत्मिक पूजा है। हिंदू धर्म के सब अङ्ग सच्चे और रक्षणीय हैं।

३. हिंदू सभ्यता अति प्राचीन और सुन्दर है तथा आध्यात्मिकता से परिपूर्ण है।

४. पाश्चात्य सभ्यता, स्थूल, स्वार्थी और लंपट हैं इसलिये हर एक हिंदू को अपने धर्म, जाति और समाज को पाश्चात्य सभ्यता के विष से बचाने के लिये भरसक प्रयत्न करना चाहिये।

वेदान्तवादियों के कृत्य

वेदान्तवादियों ने भारत के पढ़े-लिखे नवयुवकों को बहुत प्रभावित किया है। उन्होंने भारतीयों को अपने पाँव पर खड़ा होना और स्वावलम्बी बनना सिखलाया है। उन्होंने हिंदू संस्कृति का पोषण किया है। उन्होंने रोगियों की सेवा और शिक्षा के प्रचार का भी बहुत बड़ा कार्य किया है। अमेरिका के नगरों न्यूयार्क, बोस्टन, वाशिंगटन, पिट्सबर्ग और सैन्फ्रासिस्को में भी वेदान्त सभा विद्यमान हैं।

राधास्वामी मत

राधास्वामी विचार धारा उन मतों में से एक है जिसका कार्य क्षेत्र अधिक विस्तृत नहीं और जिसने सार्वजनिक रूप धारण नहीं किया है। राधास्वामी सत्सङ्ग की स्थापना सन् १८६१ में आगरा के एक क्षत्री श्री विश्वदयाल जी महाराज ने की थी। उन्होंने घोषणा की कि परमात्मा ने स्वयं उनको राधा-स्वामी का सन्त सत्गुरू बना कर भेजा है। उनका देहान्त १८७६ में हो गया।

इनके पश्चात् राय सालिग्राम और श्री ब्रह्म शङ्कर जी गुरू की गद्दी पर बैठे। चौथे गुरू आनन्द स्वरूप जी ने धार्मिक शिक्षा के अनन्तर औद्योगिक उन्नति की ओर भी ध्यान दिया और दयालबाग आगरे का सुन्दर नगर बनाया जहाँ इञ्जीनियरिंग कालिज, गोशाला और कई अन्य प्रकार के कारखाने हैं।

सत्संग की शिक्षा सदस्यों के अतिरिक्त और किसी को नहीं बताई जाती। सत्संगी गुरु को ही सब क्रियाओं का केन्द्र तथा भगवान् का अवतार और सांसारिक विकास का उच्चतम स्वरूप मानते हैं। वह हर पदार्थ को जिसे गुरू छू लेता है अति पवित्र मानते हैं। वह समझते हैं कि गुरू की पूजा से ही भगवान् की प्राप्ति हो सकती है।

सत्संगी जाति पाँति में विश्वास नहीं रखते और आपस में भातृ-भाव से बर्ताव करते हैं। यह धर्म सनातन धर्म का एक अंग है। इसके सदस्य भक्ति मार्ग में विश्वास रखते हैं।

राधास्वामियों ने औद्योगिक विकास के लिये कई उद्योग शालाएँ स्थापित की हैं। जाति पाँति का भाव नष्ट करने तथा स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने कार्य किया है। हिन्दुओं के भक्ति मार्ग को पुनर्जीवित करने में भी उनका हाथ है।

सब धार्मिक आंदोलनों में समान बातें

१८वीं शताब्दी में हिन्दू धर्म और सभ्यता का अधःपतन पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। ऐसे समय में देश में कई धार्मिक प्रचारक और समाज सुधारक प्रकट हुए जिन्होंने हिंदू धर्म का पुनरुत्थान किया। इन धार्मिक आंदोलनों का संक्षिप्त वर्णन हमने ऊपर दिया है। अब हम इन आन्दोलनों की मौलिक समानताओं का वर्णन करेंगे।

१. सब आंदोलनों ने प्रेरणा प्राचीन हिन्दू संस्कृति से ली है।

२. अधिकांश आन्दोलनों का ध्येय हिंदू धर्म से कुरीतियों तथा अन्ध-विश्वास को दूर करना था।

३. एक परमात्मा की पूजा सब आन्दोलनों का ध्येय था।

४. सब ने शुद्ध आचार और निराकार ईश्वर की पूजा सिखाई।

५. आर्य समाज को छोड़ कर, सब आंदोलनों ने सब धर्मों की एकता तथा सहिष्णुता का प्रचार किया है।

६. सब मतों ने भारतीय स्त्रियों को उनका वास्तविक ऊँचा स्थान दिलवाने का प्रयत्न किया है।

७. सब ने जाति पाँति के कड़े प्रतिबन्धों को हटाकर समयानुकूल युक्ति-युक्त समाज निर्माण करने का प्रयत्न किया है।

८. सब आंदोलनों ने भारतीय विचारधारा और हिंदू विचारधारा को प्रगतिवाद की ओर अग्रसर किया है।

९. इनका प्रभाव भारत की समस्त जातियों को संगठित करने और उनके भेद भावों को मिटाने में परिणत हुआ।

१०. भारत में राष्ट्रीयता के निर्माण के लिये उन्होंने बहुत बड़ा कार्य किया है।

धर्म और राष्ट्रीय भावना

हम बता चुके हैं कि सामाजिक, राजनैतिक और भारत के आर्थिक जीवन में धर्म का बड़ा भारी प्रभाव है। हम यहाँ देखने का प्रयत्न करेंगे कि वास्तविक धर्म राष्ट्रीय भावना का विरोधी है या पोषक।

सच्चा धर्म राष्ट्रीयता अथवा अन्तर्राष्ट्रीयता का विरोधी नहीं वरन् उसका रक्षक होता है। वह हमें एक अच्छा अनुशासनपूर्ण, सेवाभाव से ओत-प्रोत, ईश्वर-भक्त नागरिक बनना सिखाता है। वह हममें सहानुभूति, सेवा, सौंदर्य तथा त्याग के भाव उत्पन्न करता है जो कि एक देशभक्त व्यक्ति के लिये आवश्यक गुण हैं।

भारत में अज्ञानवश लोग धर्म का वास्तविक अर्थ नहीं समझते। वह धर्म के नाम पर एक दूसरे का सिर फोड़ते हैं। संसार का कोई धर्म भी घृणा और असहिष्णुता की शिक्षा नहीं देता। सब धर्म परमात्मा की प्राप्ति का उपदेश देते हैं। धर्म को राजनीतिक क्षेत्र में न लगाकर उसे परमात्मा और आत्मा के संबन्ध तक ही सीमित रखना चाहिये। इस दृष्टिकोण से यदि हम धर्म को देखें तो वह राष्ट्रीय भावना का शत्रु नहीं वरन् उसका पोषक है।

योग्यता प्रश्न

(१) उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक आंदोलनों में किन्हीं दो आंदोलनों की मुख्य बातें बताइये। (यू० पी० १९३२)

(२) विभिन्न धार्मिक आंदोलनों में आप क्या समानता पाते हैं? (यू० पी० १९३०)

(३) भारतीय नागरिक जीवन पर धर्म का क्या प्रभाव पड़ा है? (यू० पी० १९३५)

(४) भारत के विभिन्न धार्मिक आंदोलनों का वर्णन करो तथा उनके प्रभाव की व्याख्या करो। (यू० पी० १९४२)

(५) भारत के प्राचीन धर्म को सुधारने के लिये उन्नीसवीं शताब्दी में कौन से धार्मिक आंदोलन हुये (यू० पी० १९३९)

(६) धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है? क्या धार्मिक दृष्टिकोण के कारण भारत की आर्थिक और राजनैतिक अवनति हुई है?

(७) क्या धर्म राष्ट्रीय भावना का विरोधा है?

(८) पिछले पचास वर्षों में भारतीय समाज सुधार की प्रगति का वर्णन कीजिए। उसका नागरिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है? (यू० पी० १९५१)

अध्याय १७

सामाजिक संगठन तथा समाज सुधार आंदोलन

हमारा धर्मपरायण सामाजिक जीवन

हमारे देश के सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता उस पर धर्म का सर्वोपरि प्रभाव है। हमारी साधारण जनता प्रायः प्रत्येक विषय में ही धर्म और अधर्म की भावना से प्रेरित होती है और किसी भी काम को करने से पहिले यह सोचती है कि कहीं वह कार्य धर्म के विरुद्ध तो नहीं है, खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, उत्सव-त्यौहार, शादी-विवाह, जन्म-मरण, गृह-प्रवेश, गृह-त्याग, यात्रा, संस्कार, अर्थात् जीवन संबंधी प्रत्येक विषय में ही वह धार्मिक विचारों से प्रभावित होती है। यह सच है कि भारत के नगरों में रहने वाली पढ़ी-लिखी जनता के जीवन से धर्म का प्रभाव अब बहुत कुछ उठता चला जा रहा है, परन्तु भारत की असली जनता तो आज भी गाँवों में ही रहती है और यही जनता हमारे देश की आत्मा कहलाती है। इसी जनता के सामाजिक जीवन को हम भारतीय जीवन का तत्व कह सकते हैं। हमारे गाँव के लोग हल चलाने के समय, खेती काटने के समय, अपनी फसल की बिक्री के समय, घर बनाने के समय, कोई यात्रा करने से पहले, पुत्र जन्म, नाम-करण, जन्म दिन, यज्ञोपवीत, परोजन, विवाह, कन्यादान, भात, छूछक, काज अर्थात् संक्षेप में दिन प्रतिदिन के जीवन में किसी काम को करने से पहिले अपने ब्राह्मण, पंडे, पुजारी अथवा पुरोहित से पूछते हैं कि उस काम को करने के लिये शुभ मुहूर्त है अथवा नहीं।

भारत के सामाजिक जीवन में यह धर्म का प्रभाव आज से नहीं इतिहास के आरम्भ से चला आ रहा है। वंश परम्परागत् से हम अपने त्यौहार, उत्सव, व्रत, संस्कार तथा धार्मिक कृत्य एक विशेष पद्धति के अनुसार करते

चले आ रहे हैं। एकादशी को व्रत रखना चाहिये, मङ्गल के दिन मन्दिर में जाकर हनुमान की पूजा करनी चाहिये, शनिवार को तेल का दान देना चाहिये, कार्तिक में गङ्गा स्नान करना चाहिये, वर्षा ऋतु में शादी-विवाह नहीं रचाने चाहिये, कोई शुभ काम करने से पहिले किसी विद्वान पंडित से राय लेनी चाहिये, विशेष अवसरों पर यज्ञ तथा सहभोज करना चाहिये। दीवाली, होली, रक्षा बन्धन, दशहरा, संक्रांति, नाग पंचमी, अमावस्या; पूर्णिमा, शिव-चतुर्दशी, राम नौमो, और न जाने कितने इ ी प्रकार के. त्यौहारों को एक विशेष परम्परा के अनुसार मानना चाहिये। यह कुछ बातें हैं जो हमारी ग्रामीण जनता के जीवन को ही नहीं, नगर में रहने वाली शिक्षित और विदेशी वाता-वरण में पली जनता के जीवन को भी प्रभावित करती हैं और जीवन में एक धार्मिक दृष्टिकोण को बनाये रखने में सहायता देती हैं।

परन्तु, कैसे दुर्भाग्य की बात है कि ऐसे धर्म परायण देश में भी अधिकतर व्यक्ति ऐसे हैं जो इन रीति-रिवाजों, उत्सव व त्यौहारों को किसी विशेष धार्मिक भावना अथवा श्रद्धा व भक्ति भाव से नहीं देखते, न ही इन कार्यों को करने से पहिले वह यह ही सोचते हैं कि उनका वास्तविक महत्व क्या है या वह इस प्रकार क्यों मनाये जाते हैं या उनके पीछे क्या इतिहास छिपा है या समाज की वर्तमान दशा में उनमें किसी परिवर्तन की आवश्यकता है अथवा नहीं, या हमारी बुद्धि की कसौटी पर वह रीति-रिवाज अथवा रस्म पूरे उतरते हैं कि नहीं? पढ़े-लिखे, शिक्षित और बुद्धिवादी नवयुवक भी इन सब बातों को अपने जीवन का साधारण अंग मानकर उदासीन वृत्ति से उनको मना लेते हैं। परंतु आज तक इतने विशाल जन समाज में किसी संस्था अथवा व्यक्ति ने यह प्रयत्न नहीं किया है कि वह हमारे विभिन्न रीति-रिवाजों, रस्मों, उत्सवों इत्यादि का वैज्ञानिक विश्लेषण करें, उनके इतिहास अथवा उद्गम की खोज करें, उनकी उपयोगिता के विषय में अनुसंधानात्मक अध्ययन करें तथा संसार के शिक्षित एवं सभ्य समाज को समझाने का प्रयत्न करे कि भारत के धार्मिक जीवन का आधार कितना वैज्ञानिक है अथवा उसमें बदले हुये जमाने में किन्हीं परिवर्तनों की आवश्यकता है अथवा नहीं? हमें ऐसे अध्ययन की आवश्यकता है जिससे धर्म की वास्तविकता का ज्ञान हो सके और हम उन सभी घास-फूस

तथा कूड़े-करकट को अपने धार्मिक कृत्यों के ऊपर से दूर कर सकें जिनके कारण हमारे धर्म का वास्तविक निर्मल स्वरूप छिप गया है और हम बाहरी दिखावे, रीति-रिवाजों, रहन-सहन, पूजा, माला, मन्दिर, उत्सव व तीर्थों में ही अपने धार्मिक कर्तव्यों की इतिश्री समझने लगे हैं।

भारत एक राष्ट्र

बहुत से लोग भारत में विभिन्न धर्मों, मत मतांतरों तथा विश्वासों के लोगों की बहुतायत देखकर कहते हैं कि हमारा देश एक राष्ट्र नहीं वरन् विभिन्न जातियों एवं उपजातियों का अजायबघर है। वास्तव में ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि हमारे देश की सबसे बड़ी विशेषता अनेकता में है। यह सच है कि हमारे देश में अनेक मत मतान्तरों, धर्म, भाषा, नस्ल तथा जातियों के लोग रहते हैं, परन्तु हमारे देश ने उन सब को एक रूप करके एक ही संस्कृति का अविच्छिन्न अंग बना लिया है। हमारे देश की संस्कृति में विभिन्न जातियों तथा धर्मों का सामंजस्य होकर एक मिली-जुली संस्कृति का निर्माण हो गया है। सब लोग जानते हैं कि एशिया के भिन्न-भिन्न हिस्सों से द्रविण, आर्य, शक, मंगोल, अरब, तुर्क, तातार, अफ़गान आदि जातियाँ हमारे देश में आईं, परन्तु वह सब यहाँ आकर एक रूप हो गईं। आज हममें से कोई यह नहीं कह सकता कि वह शुद्ध आर्य, या शुद्ध तुर्क या शुद्ध मुसलमान है और उसकी जाति के रक्त मे किसी दूसरी जाति के रक्त का मिश्रण नहीं हुआ है। हमारे संगीत, चित्रकला, मंदिर व भवन निर्माण कला में सब धर्मों व जातियों की कलायें सम्मिलित हैं; और उन सब की विशेषताएँ विद्यमान हैं। भारत के किसी भी प्रान्त में रहने वाले हिंदू विभिन्न भाषाओं तथा रीति-रिवाज में विश्वास रखते हुये भी सब समान मूलगत सिद्धान्तों में विश्वास रखते हैं। वह सब वेदों, स्मृतियों, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा गीता को पवित्र धम पुस्तक मानते हैं, सब राम और कृष्ण की पूजा करते हैं। गऊ को अपनी माता के तुल्य मानते हैं। सब गंगा, यमुना तथा गोदावरी के जलों को पवित्र समझते हैं। उनके तीर्थ स्थान भारत के सभी प्रान्तों मे स्थित हैं और सब प्रान्तों के लोग अपनी आत्मा की शांति के लिये इन

स्थानों पर जाना अपना धर्म समझते हैं। पुरी, द्वारिका, बद्रीनाथ तथा रामेश्वरम् हमारे देश के पावन तीर्थ हैं। राष्ट्रीय एकता के निर्माण की दृष्टि से यह तीर्थ देश के चार कोने में बसे हुये हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न प्रान्तों में रहते हुये विभिन्न रीति-रिवाजों पर चलते हुये तथा विभिन्न भाषा बोलते हुये भी सब हिंदू एक विशाल हिंदू समाज के अविभाज्य अंग हैं। वह सब गङ्गा, गायत्री, गीता और गौ को पवित्र मानते हुये एकादशी, अमावस्या व पूर्णिमा के पुण्य पर्वों में विश्वास रखते हुये तथा एक ही धर्म की डोरी में पिरोए हुये एक राष्ट्र के अंग हैं।

इसी प्रकार बाहर से देखने पर चाहे हिंदू और मुसलमान ऐसे लगें कि उनमें किसी प्रकार की समानता नहीं है और वह भिन्न राष्ट्रों के सदस्य हैं, परन्तु यदि गूढ़ दृष्टि से देखा जाय तो पता चलेगा कि उनके रीति रिवाज, विश्वास, रहन-सहन, खान-पान तथा संस्कारों में एक दूसरे के धर्म का गहरा पुट है· हिंदू और मुसलमानों की कला, आर्ट, भाषा, रीति-रिवाज, उत्सव-मेले, शादी-विवाह, पूजा के तरीकों, पहिनाव, व्यवहार तथा रहन-सहन पर एक दूसरे धर्म का गहरा प्रभाव पड़ा है। हमारे गाँवों में रहने वाले हिंदू और मुसलमानों में कोई आदमी किसी प्रकार का भेद भाव नहीं कर सकता है। दोनों एक ही प्रकार के वस्त्र पहनते हैं, एक ही प्रकार की वन्दना करते हैं, एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं तथा सब एक दूसरे के के उत्सवों, त्यौहारों तथा मेलों-ठेलों में भाग लेते हैं। मुसलिम लीग की साम्प्रदायिक नीति के कारण हमारे देश के हिंदू और मुसलमानों में कुछ मन-मुटाव हो गया था, परन्तु पाकिस्तान बन जाने के पश्चात् मुसलमान अब समझ गये हैं कि वह एक ही राष्ट्र के घटक हैं और उन सब के समान हित हैं।

हिन्दुओं का सामाजिक जीवन

हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में दो बातें मुख्य रूप से पाई जाती हैं। (१) जाति व्यवस्था और (२) सम्मिलित कुटुम्बों की प्रथा।

जाति प्रथा (Caste System)

जाति-पाँति की प्रथा हमारे समाज की एक अत्यन्त प्राचीन परम्परा है।

इस प्रथा का वेदों में तो वृत्तांत नहीं मिलता परन्तु स्मृतियों में इसका वर्णन किया गया है। जातियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक स्मृति में कहा गया है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से, क्षत्री उसकी भुजाओं से, वैश्य जङ्घा से तथा शूद्र पैरों से उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मा के पुत्र होने के कारण प्राचीनकाल में सब वर्णों में समानता थी। एक वर्ण दूसरे से नीचा नहीं समझा जाता था। सब वर्णों के लोगों को बराबर के अधिकार प्राप्त थे। वर्णों का विभाजन काम करने की योग्यता तथा कार्य विभाजन के सिद्धान्त पर किया गया था। ब्राह्मण शिक्षा देने तथा ज्ञान का प्रसार करने का कार्य करते थे। क्षत्रियों पर राष्ट्र के शासन तथा उनकी रक्षा का भार था। वैश्य कृषि, व्यापार व व्यवसायों को सगठित करते थे और शूद्रों के जिम्मे दूसरे वर्णों की सेवा का कार्य था। इस काल में वर्ण व्यवस्था का निश्चय जन्म से नहीं वरन् कर्म से किया जाता था। यदि किसी शूद्र की सन्तान ब्राह्मण कर्म के योग्य होती थी तो वह ब्राह्मण वर्ण में सम्मिलित मान ली जाती थी। सभी वर्णों में सहयोग और पारस्परिक प्रेम की भावना थी।

जाति-पाँति की व्यवस्था के लाभ

इस वर्ण व्यवस्था के मुख्य रूप से निम्न लाभ थे :—

(१) कार्य कुशलता—सर्व प्रथम इस व्यवस्था के कारण प्राचीन काल में समाज का कार्य अत्यन्त सुचारु रूप से चलता था। प्रत्येक वर्ण के लोग अपना निर्दिष्ट काम करते थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्र का काम पहले से ही निश्चत रहता था। वह वंश परम्परागत से होने वाले कार्यों को ही करता था। इससे प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में अत्यंत दक्ष तथा कुशल होता था। इस काल में शिक्षा संस्थाओं के अभाव में वर्ण व्यवस्था के कारण ही लोग एक प्रकार की टैक्निकल शिक्षा प्राप्त करते थे।

(२) सामाजिक उन्नति—वर्ण व्यवस्था के कारण एक जाति व बिरादरी के लोगों में अधिक प्रेम तथा सहानुभूति देखने को मिलती थी। जाति के लोग एक दूसरे से भलीभाँति परिचित होते थे तथा एक दूसरे के दुख व सुख में काम आते थे। जाति एक प्रकार के क्लब तथा बीमे कम्पनी की संस्था का काम करती थी। जाति के लोग अपने सदस्यों की सुविधा के लिये अनेक

प्रकार के आमोद-प्रमोद के केन्द्र, धर्मशाला, मन्दिर, सार्वजनिक कुँएँ इत्यादि बनाते थे। एक वर्ण के लोग दूसरे की सहायता करना भी अपना परम धर्म समझते थे।

(३) व्यक्तित्व का विकास—जाति-पाँति की प्रथा के कारण जनता को अपने व्यक्तित्व का विकास करने का भी अधिक अवसर मिलता था। कारण एक जाति के लोग आज की तरह एक व्यक्तिगत नहीं वरन् सामूहिक जीवन व्यतीत करते थे। जाति के बड़े वयोवृद्ध नेता, छोटे बच्चों, असहाय परिवारों तथा निर्धन कुटुम्बों की सहायता करना अपना सबसे बड़ा धर्म समझते थे। एक जाति के अन्दर पूर्ण समानता का व्यवहार किया जाता था। सब व्यक्ति धन-दौलत, जमीन, जायदाद, बड़े-छोटे के भेदभाव के बिना बराबर समझे जाते थे और जाति की संस्था इस बात का प्रबन्ध करती थी कि प्रत्येक छोटे से छोटे व्यक्ति के लिये शिक्षा तथा रोजगार की पूर्ण सुविधा प्राप्त होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल में जब तक वर्ण व्यवस्था ने जटिल रूप धारण नहीं किया था। इस प्रथा से बहुत से लाभ थे। परन्तु धीरे-धीरे हिंदुओं की यह वर्ण व्यवस्था अत्यंत जटिल रूप धारण करती चली गई। वर्णों का विभाजन कर्म के स्थान पर जन्म से किया जाने लगा और प्रत्येक वर्ण में सहस्रों जातियाँ और उप जातियाँ उत्पन्न हो गईं। आजकल इन जातियों की संख्या तीन हजार से चार हजार के बीच आँकी जाती हैं। जाँति पाँति के बन्धनों में कठोरता आ जाने से शादी-विवाह, लेन-देन तथा गोद इत्यादि की रस्मों में जाति-पाँति का विचार रक्खा जाने जाने लगा और एक जाति के लोग दूसरी जाति को अपने से नीचा मानने लगे। इसी काल में शूद्रों का पतन हुआ और उन्हें हर प्रकार के अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

जाँति पाँति की व्यवस्था के दोष—वर्तमान युग में जाति-पाँति की प्रथा से लाभ तो बहुत कम हैं परन्तु दोषों की भरमार है :—

(१) सर्व प्रथम, यह प्रथा अप्रजातन्त्रवादी है। यह मनुष्य के दृष्टि-कोण को अत्यन्त संकुचित बना देती है। यह एक ही समाज के व्यक्तियों में

एक गहरी खाई उत्पन्न कर उनमें मेल-जोल तथा परस्पर प्रेम की भावना को कम कर देती है।

(२) यह समानता के सिद्धांत की विरोधी है और ऊँच-नीच तथा छोटे-बड़े की भावना की पोषक है।

(३) इसके कारण, समाज की आर्थिक उन्नति में भी बाधा पड़ती है, कारण सब व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से कोई भी व्यवसाय नहीं कर सकते। उनका पेशा उनकी जाति के आधार पर निश्चित किया जाता है। अनेक लोग जो अपनी जाति के बाहर का पेशा करके देश की दौलत व पैदावार को बढ़ा सकते हैं, स्वतन्त्र रूप से कार्य नहीं कर पाते। उनके रास्ते में तरह-तरह के रोड़े अटकाये जाते हैं।

(४) इस प्रथा के आधीन सब लोग बराबर का काम नहीं करते। कुछ लोग जीवन भर काम करते हैं फिर भी भूखों मरते हैं और कुछ दूसरे आराम से खाली बैठकर मौज उड़ाते हैं। हमारे देश के ब्राह्मण, पंडे, पुजारी व साधुओं का उदाहरण ही ले लीजिये। यह लोग अपने उच्च वर्ण के कारण बिना काम किए ही दान-पुण्य के सहारे मौज उड़ाते हैं और किसी प्रकार का काम नहीं करते। इससे न केवल समाज ही निर्धन बनता है वरन् परोपजीवी व्यक्तियों का चरित्र भी भ्रष्ट हो जाता है।

(५) इस प्रथा के कारण उच्च वर्ण के लोगों में व्यर्थ का दम्भ तथा घमण्ड उत्पन्न हो जाता है और वह केवल उच्च जाति में जन्म लेने के कारण अपने आपको बड़ा समझने लगते हैं।

(६) चुनावों में इस प्रथा के कारण साम्प्रदायिकता का खुला खेल खेला जाता है। उम्मीदवार मतदाताओं से यह कह कर राय माँगते हैं कि हम उन्हीं की बिरादरी के सदस्य हैं और इसलिये हमको राय पड़नी चाहिये। नौकरियों के क्षेत्र में भी इसी प्रकार की माँग दोहराई जाती है कि वह अपनी ही बिरादरी के लोगों को नौकरी पर लगायें।

(७) अन्त में, इस प्रथा के कारण स्त्रियों को उनके अधिकारों से वञ्चित कर दिया जाता है। जाति के ठेकेदार उन्हें किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं देते। उन्हें घर की चहारदिवारी में बन्द रक्खा जाता है।

स्त्रियों के स्वतन्त्र रूप से विवाह करने या अपने पति का स्वयं चुनाव करने की तो इस प्रथा के अन्तर्गत बात ही नहीं उठती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान मशीन, विज्ञान, तथा प्रजातन्त्र शासन के काल में यह प्रथा अत्यंत हानिकारक बन गई है। वर्तमान युग में इस प्रथा के साथ चिमटे रहने से कोई भी लाभ नहीं। इस प्रथा का जितना भी शीघ्र अन्त हो जाय उतना ही अच्छा है।

शिक्षा की प्रगति से हमारे जाति-पाँति के बन्धन स्वतः टूटते जा रहे हैं परन्तु यदि यह भीषण दोष हमारे सामाजिक संगठन से समूल नष्ट नहीं हो सका है तो इसके मुख्य रूप से दो कारण हैं। एक यह कि हम अपने नामों के सम्मुख शर्मा, वर्मा, गुप्ता, टंडन, कक्कड़, ठाकुर, मित्तल, वालमीकि, इत्यादि लिखने से परहेज नहीं करते। और इस कारण, हमें सदा इस बात का आभास रहता है कि हम एक विशेष जाति के सदस्य हैं दूसरे कायस्थ सभा, भटनागर सभा, माथुर सभा, राजपूत सभा, जाट सभा, वैश्य सभा इत्यादि—एक जाति के लोगों में पृथककरण की भावना बनाये रखती हैं और उन्हें समाज के दूसरे अंगों के साथ घुल-मिल कर रहने नहीं देती। शादी, विवाह, जन्म मरण, इत्यादि अवसरों पर जाति-बिरादरी के लोगों को ही निमन्त्रित किया जाता है और इस कारण हमारा आपसी भेद-भाव दूर नहीं हो पाता। परन्तु, अब धीरे-धीरे शिक्षा के प्रसार से यह बन्धन भी ढीले पड़ते चले जा रहे हैं। इन बन्धनों को तोड़ने में हम बहुत बड़ी सहायता कर सकते हैं यदि हम सब अपने नाम के आगे अपनी जाति लिखना बन्द करदें और विवाह के अवसर पर अपनी जाति की कन्या से ही रिश्तेदारी करने पर जोर न दें। आशा है हमारे आगे आने वाली संततियाँ इन दोनों सुझावों पर अवश्य विचार करेंगी।

हमें यह पूर्ण रूप से समझ लेना चाहिये कि यदि भारत में हमें एक सच्चे प्रजातन्त्र राज्य को जन्म देना है और अपने नये विधान को सफल बनाना है तो हमें जाति-पाँति के भेद भावों को भुलाना पड़ेगा। डा० अम्बेदकर ने विधान सभा में ठीक ही कहा था "यदि हमारा समाज सहस्रों जाति में विभक्त रहा, और चुनावों में हमने जाति-पाँति की भावना से काम किया

तो फिर हमारे देश में कागजी विधान कितना ही अच्छा हो, एक सच्चे जन राज्य की स्थापना नहीं हो सकती।" प्रत्येक भारतवासी विशेषकर आज के विद्यार्थियों का इसलिये परमधर्म है कि वह हिंदू समाज के इस कलंक को मिटाने का सतत् प्रयत्न करे।

संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली

हमारे सामाजिक जीवन की दूसरी बड़ी विशेषता सम्मिलित कुटुम्बों की प्रणाली है। सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा का अर्थ है कि एक ही परिवार में कई दम्पत्ति तथा बच्चे रहते हैं। उन सब का एक दूसरे के साथ बहुत घनिष्ट रक्त का सम्बन्ध होता है, उदाहरणार्थ एक परिवार में माता-पिता, बाबा-दादी, चाचा-चाची, भाई-भाभी, चचेरे भाई तथा बहिन और इसी प्रकार के संबंधित लोग रहते हैं। परिवार के सभी व्यक्तियों का भोजन एक ही चौके में बनता है तथा वह सब मिल कर एक ही मकान में रहते हैं तथा एक ही व्यवसाय करते हैं। कुटुम्ब के सबसे प्रौढ़ व्यक्ति पर परिवार के पालन की सारी जिम्मेदारी रहती है। संपूर्ण कुटुम्ब का भरण पोषण, बच्चों की शिक्षा तथा विवाहों का प्रबन्ध करना उसी का कार्य होता है। कुटुम्ब की मर्यादा तथा प्रथाओं की रक्षा करना भी उसी का काम होता है। परिवार के दूसरे सभी व्यक्ति उसकी आज्ञा के अनुसार कार्य करते हैं।

प्रथा से लाभ—संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली के अनेक लाभ हैं :—

(१) सर्व प्रथम ऐसे कुटुम्ब में नागरिकता के कतिपय गुणों की विशेष शिक्षा मिलती है। इस प्रथा के कारण कुटुम्ब के सदस्यां में सहयोग, मेल-जोल, सहिष्णुता, त्याग, बलिदान, प्रेम, सहानुभूति, तथा आज्ञा पालन के वह सभी भाव विद्यमान हो जाते हैं जो एक अच्छे सामाजिक जीवन की जड़ हैं और जिनके कारण ही एक मनुष्य अच्छा नागरिक कहा जा सकता है।

(२) दूसरे, संयुक्त परिवार बुढ़ापे, बीमारी, बेकारी, तथा दुर्घटना के समय एक बीमे की संस्था का काम देता है। परिवार के दूसरे सदस्य संकट के समय एक दूसरे की सहायता करना अपना धर्म समझते हैं। आजकल जब हमारी सरकार, दूसरे प्रगतिशील देशों की भाँति, सामाजिक बीमे (Social

Insurance) का प्रबन्ध नहीं करती तो संयुक्त परिवार प्रणाली ही इस काल को पूरा करती है।

(३) संयुक्त परिवार में खर्चे की भारी बचत होती है। थोड़े ही धन के खर्चे से सारे गृहस्थी का काम चल जाता है। यदि घर के सभी व्यक्ति अलग-अलग खाना पकाएँ, अलग-अलग मकान किराये पर लें, इत्यादि, तो इससे खर्चे में भारी बढ़ोत्तरी हो जाती है।

(४) संयुक्त कुटुम्ब की प्रणाली से घर की इज्जत तथा शान अधिक कायम रहती है। परिवार के सभी व्यक्ति अपना धन एक ही जगह जमा करता हैं, सब मिल कर एक साथ कमाते हैं, जायदाद खरीदते हैं तथा दान पुण्य करते हैं। इससे उनकी इज्जत बढ़ती है और परिवार का समाज में नाम होता है।

(५) संकट तथा मुसीबत के समय परिवार के सदस्य ही सबसे अधिक एक दूसरे की मदद करते हैं। अकेला मनुष्य अपने आप को असहाय तथा मित्र-हीन पाता है।

हानि—परन्तु इन लाभों के होते हुए भी वर्तमान युग में संयुक्त परिवार की प्रथा धीरे-धीरे समाप्त होती चली जा रही है। इसके अनेक कारण हैं:—

(१) सर्वप्रथम इस प्रथा के कारण परिवार के सदस्यों को अपने व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर नहीं मिलता। गृहकर्ता पर निर्भर रहने के कारण उनमें नेतृत्व तथा स्वतन्त्र निश्चय की भावना नष्ट हो जाती है।

(२) दूसरे, परिवार के भरण पोषण की सारी जिम्मेदारी घर के सबसे बड़े व्यक्ति पर होने के कारण, दूसरे सदस्य अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण रूप से अनुभव नहीं करते और वह आलसी, सुस्त, काहिल तथा परोपजीवी बन जाते हैं।

(३) इस प्रथा के अन्तर्गत परिवार के सभी सदस्यों पर बराबर का भार नहीं पड़ता। घर के कर्त्ता को गृहस्थ का सारा भार सहना पड़ता है। उसे दूसरों के सुख के लिये बहुत बड़ा त्याग करना पड़ता है। उसकी बीमारी या मृत्यु के कारण सारा प्रबन्ध गड़बड़ हो जाता है।

(४) सम्मिलित कुटुम्बों में अक्सर छोटी-छोटी बातों पर झगड़े हुआ करते

हैं। विशेषकर स्त्रियाँ परस्पर सहयोग से नहीं रह पातीं। किसी एक भाई का परिवार बड़ा है, दूसरे का छोटा, एक भाई थोड़ा कमाता है, दूसरा अधिक, एक अधिक खर्चीला है दूसरा कम—ऐसी छोटी-छोटी बातों पर आये दिन झगड़े होते रहते हैं और परिवार एक शांति और सुख के केन्द्र के स्थान पर संघर्ष और कलह का घर बन जाता है।

(५) इस प्रथा के कारण घर की स्त्रियों को स्वतन्त्र वातावरण में रहने का अवसर नहीं मिलता। उन्हें सदा सासू, श्वसुर तथा जेठ जिठानी के कड़े नियन्त्रण में रहना पड़ता है। परदे प्रथा की भी यही प्रणाली पोषक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लाभ के स्थान पर संयुक्त कुटुम्ब से हानि अधिक हैं। आजकल के युग में वैयक्तिक जीवन व्यतीत करने की भावना के कारण संयुक्त कुटुम्बों की प्रथा धीरे धीरे नष्ट होती चली जा रही है। भारत की नव विवाहित स्त्रियाँ सासू तथा श्वसुर के कड़े नियन्त्रण में रहना पसन्द नहीं करतीं। वह अपने पति के साथ रहकर एक स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करना चाहती हैं। यह मुख्य कारण हैं जिससे हमारे संयुक्त परिवार की संख्या बराबर कम होती चली जा रही है। आर्थिक कठिनाइयाँ तथा स्वतन्त्र-व्यवसाय को छोड़ कर पढ़े-लिखे नवयुवकों में नौकरी करने की भावना से भी इन परिवारों का नाश हो रहा है।

जिस तेजी तथा जिन कारणों से हमारे संयुक्त परिवार नष्ट होते चले जा रहे हैं उन सब पर एक संतोष की नजर डालना कोई अच्छी बात नहीं; कारण, हमारे जीवन में स्वार्थपरता, तथा वैयक्तिक भावना का विकास कोई वाँछनीय प्रगति नहीं। यदि हम अपने माता पिता, सगे भाई बहिन, तथा निकट संबंधियों के साथ प्रेम के साथ मिल कर नहीं रह सकते तो फिर हम किस प्रकार अपने समाज या राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आज हम देखते हैं कि नगर में रहने वाले लोग अपने पड़ोसी का नाम नहीं जानते, उन्हें यह पता नहीं होता कि उन्हीं के मकान के दूसरे हिस्से में कौन सा किरायेदार रह रहा है। हम अपने स्वतः के जीवन में ही मस्त रहते हैं और कभी अपने पड़ोस, नगर, जाति, अथवा राष्ट्र की समस्याओं पर विचार नहीं करते। सहिष्णुता, वैयक्तिक भावनां, त्याग की कमी, तथा संकुचित दृष्टिकोण—यह मुख्य कारण हैं जिनसे

हमारे संयुक्त परिवार टूटते चले जा रहे हैं। हमें चाहिये कि हम इन परिवारों के दोषों को दूर करें न कि इतनी लाभकारी तथा उपयोगी प्राचीन संस्था को ही कुछ बुराइयों के कारण जड़ मूल से नष्ट कर दें।

भारतीय जीवन में स्त्रियों का स्थान

प्राचीन भारत—हमारे देश के प्राचीन इतिहास में स्त्रियों का स्थान अत्यन्त उच्चतम रहा है। वैदिक काल में स्त्रियों को ऊंची से ऊंची शिक्षा दी जाती थी। वह ऋषियों के आश्रमों में शिक्षा प्राप्त करती थीं। उन्हें धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने का अधिकार था। वह शास्त्रार्थों में भाग लेती थीं। स्वयंवरों में उन्हें अपने पति स्वयं चुनने का अधिकार था। वह परदा नहीं करतीं थीं और पुरुषों के समान स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती थीं। देश के शासन, राजनीति, साहित्य तथा कला के क्षेत्र में उनका स्थान ऊंचा था। गार्गी, मैत्रेयी, लीलावती, शकुन्तला, सीता, दमयन्ती, कुन्ती जैसी स्त्रियों के नाम आज भी हमारे इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अङ्कित हैं।

जिस समय संसार के दूसरे देश अभी मध्यकालीन युग के अंधकार में पड़े भूत और प्रेतों में ही विश्वास करते थे तो भारत में एक ऐसी संस्कृति का विकास हो चुका था जिसके अन्तर्गत, पुरुष ही नहीं, स्त्रियाँ भी वेद मन्त्रों की व्याख्या तथा धर्म ग्रन्थों का भाष्य करती थीं। उन्हें गृह लक्ष्मी तथा शक्ति का अवतार मान कर उनकी पूजा की जाती थी। परन्तु, भारत के इतिहास में एक समय ऐसा भी आया जब ब्राह्मणों के अत्याचार के कारण हमारी स्त्रियों को अज्ञानता व अंधकार के गर्त में ढकेल दिया गया। उन्हें सभी अधिकारों से वंचित कर दिया गया। उच्च शिक्षा प्राप्त करना, धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करना, यज्ञोपवीत धारण करना, सामाजिक कार्यों में भाग लेना—उनके लिये, निषेध ठहरा दिया गया। बौद्ध धर्म ने उनकी स्थिति सुधारने का कुछ प्रयत्न किया, परन्तु शंकराचार्य ने आकर तथा उन्हें 'नरक के द्वार' के नाम से संबोधित करके एक बार फिर उन्हें घरेलू जीवन की चहारदीवारी में बन्द कर दिया।

मुसलमानों के काल में स्त्रियों की स्थिति और भी खराब हो गई।

आततताइयों के भय से छोटी आयु में ही उनकी शादियाँ की जाने लगीं। इसी काल में परदा प्रथा का भी रिवाज हुआ और स्त्रियों को घर की नौकरानी तथा बच्चों के पालन पोषण के लिये दासी का स्थान दे दिया गया।

स्त्रियों की दशा को सुधारने के लिये आंदोलन

इस हीन अवस्था से स्त्रियों का उद्धार करने के लिये हमारे समाज सुधारकों ने अनेक प्रयत्न किये। कारण, हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता सदा से ही स्त्रियों के अधिकारों तथा उनके समाज में एक एक अत्यंत ऊँचे स्थान की पोषक रही है। हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि जिस घर में स्त्रियों का आदर नहीं होता वहाँ देवता नहीं बसते। अर्द्धांगिनी के बिना हमारे गृहस्थ धर्म का कोई जप, तप अथवा यज्ञ सफल नहीं होता। स्त्रियों को वही प्राचीन वैभव दिलाने के लिये इसलिये हमारे इन समाज सुधारकों ने भरसक यत्न किया। परन्तु उन्हें अपने कार्य में विशेष सफलता न मिली। इसका मुख्य कारण यह था कि हमारी अपनी स्त्रियाँ, अशिक्षिता होने के कारण अपने अधिकारों के प्रति स्वतः जागरूक नहीं थीं। इसलिये हमारी स्त्रियों की अवस्था में उस समय तक कोई विशेष सुधार नहीं हुआ जब तक बीसवीं शताब्दी के आरंभ में महात्मा गाँधी के नेतृत्व के कारण हमारे देश के नर और नारियों में एक नई राजनीतिक चेतना का संचार नहीं हुआ। हमारे राष्ट्र पिता के सत्याग्रह आंदोलन ने जनता में कुछ ऐसी नव शक्ति का संचार किया कि पुरुष ही नहीं उसके प्रभाव से स्त्रियाँ भी न बच सकीं। सन् १९२१, ३०, ३२ तथा ४२ के सत्याग्रह आंदोलन में हमारे देश की सहस्रों स्त्रियाँ जेलों में गईं और उन्होंने पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर देश के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, शराब व विलायती कपड़ों की दुकानों पर पिकेटिंग, पुलिस की लाठियाँ व गोलियाँ सहने का काम, जलसों व जुलूसों के नेतृत्व—अर्थात् स्वातन्त्र्य संग्राम के प्रत्येक क्षेत्र में ही उन्होंने पूर्ण भाग लिया। यही सबसे मुख्य कारण था कि शताब्दियों से त्रस्त तथा अधिकारहीन स्त्रियों की अवस्था में २० वर्ष से भी कम समय में एक ऐसा क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ कि हमारी नारियों को प्रायः वही अधिकार प्राप्त हो गये जो आज पुरुषों को प्राप्त हैं। दूसरे

देशों की स्त्रियों को अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये एक नहीं न जाने कितनी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। इंगलैण्ड में ही स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त करने के लिये ६० वर्ष तक (सन् १८६७ से लेकर १९२९ तक) निरन्तर आंदोलन करना पड़ा। आज भी कितने ही देशों में स्त्रियों को राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं और दूसरे देशों में वहाँ के सामाजिक व राजनीतिक जीवन में स्त्रियाँ इतना प्रमुख भाग नहीं लेतीं जितना आज वह भारत में ले रही हैं।

स्त्रियों की संस्थाएँ

देश के स्वातन्त्र्य संग्राम में भाग लेने के अतिरिक्त दूसरा मुख्य कारण जिससे हमारी स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हुआ वह यह था कि स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करने के लिये, आर्य समाज, तथा स्त्रियों की अनेक महिला संस्थाओं ने उनके लिये जगह-जगह स्कूल व कौलिज खोले, जिनमें शिक्षा प्राप्त करके स्त्रियाँ स्वयं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गईं और उन्होंने अपनी अवस्था को सुधारने के लिये स्वयं प्रयत्न किया तथा कई संस्थाएँ स्थापित कीं। इन संस्थाओं में जिन्होंने स्त्रियों की ओर से उनके अधिकारों की रक्षा के लिये विशेषरूप से आन्दोलन किया निम्न मुख्य हैं :—

(१) वीमेंस इण्डियन एसोसियेशन, जिसकी स्थापना सन् १९१७ में हुई। (२) नैशनल कौंसिल आफ वीमेंस (जिसकी स्थापना १९२५ में की गई) तथा (३) आल इण्डिया वीमेंस कान्फ्रैंस—जिसका संगठन सन् १९२६ में किया गया। इनमें से अंतिम संस्था ने स्त्रियों की दशा सुधारने के लिये सबसे अधिक भाग लिया है। इस संस्था का नेतृत्व जिन नारियों ने किया है उनमें भारत की अनेक घरानों की देवियाँ सम्मिलित हैं। इनमें से कुछ के नाम ये हैं :—श्रीमती सरोजिनी देवी, मिसेस एनीबेसेंट, सरला देवी चौधरानी, श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित, हंसा मेहता, कमला देवी चटोपाध्याय, अनुसूया बाई काले, लेडी रामा राव, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, लेडी अब्दुल कादिर, भोपाल की बेगम, तथा बड़ौदा की महारानी। भारत के विभिन्न नगरों तथा प्रान्तों में इस संस्था की २०० से अधिक शाखाएँ हैं तथा इसके सदस्यों की संख्या २०,००० से अधिक बताई जाती है। इस संस्था की राष्ट्र संघ द्वारा भी सराहना की गई है।

विधान में स्त्रियों का स्थान

आज भारत की प्रत्येक नारी को नये विधान में पुरुषों के समान ही अधिकार प्रदान किये गये हैं। विधान में कहा गया है कि स्त्रियों को समान कार्य के लिये पुरुषों के समान ही वेतन मिलेगा। वह पुरुषों के समान सरकार के प्रत्येक विभाग में नौकरी कर सकेंगी। वह देश की ऊँचो से ऊँची ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस में अधिकारी का आसन ग्रहण कर सकेंगी। चुनावों में उन्हें पुरुषों के समान हां राय देने का अधिकार होगा। लिंग, जाति, धर्म, नस्ल, विश्वास अथवा विचार के कारण किसी व्यक्ति, के साथ किसी प्रकार का भेद भाव नहीं किया जायगा और सब स्त्री पुरुषों को बराबर के अधिकार प्राप्त होंगे तथा उन्हें हर प्रकार की व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा शैक्षिक स्वतंत्रता प्राप्त होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि कलम की एक खरोंच से हमारे नये विधान में स्त्रियों को पूर्ण सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं।

आज की समाज में स्त्रियों का स्थान

भारत में आज हम देखते हैं कि स्त्रियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भाग ले रही हैं। परदे की प्रथा अब एक पुरानी बात हो गई है। कुछ कट्टर पंथी पुराने विचार वाले मुट्ठी भर लोगों को छोड़ कर शेष जनता इस प्रथा में विश्वास नहीं करती। हमारे दक्षिण के प्रान्तों में तो कभी से परदा प्रथा थी ही नहीं, गावों में भी स्त्रियाँ स्वतन्त्रता पूर्वक खेतों में तथा घरों से बाहर का काम करती थीं, उत्तर के प्रदेशों में भी, सिंध तथा पञ्जाब के प्रभाव के कारण, जहाँ की स्त्रियाँ पाश्चात्य देशों की नारियों की भाँति स्वतन्त्र जीवन में विश्वास रखती हैं, इस प्रथा का प्रायः पूर्ण रूप से ही लोप हो गया है। स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार निरन्तर बढ़ रहा है और वह न केवल अपनी संस्थाओं में ही शिक्षा ग्रहण करती हैं वरन् लड़कों के साथ भी उन्हीं की संस्थाओं में सब शिक्षा प्राप्त करती हैं। पढ़े-लिखे घरों में प्रायः प्रत्येक माता-पिता ही अपनी कन्याओं को शिक्षित बनाने का प्रयत्न करते हैं। और कुछ नहीं तो, पञ्जाब यूनिवर्सिटी की भूषण तथा प्रभाकर, और प्रयाग विद्यापीठ की विद्या विनोदिनी, विदुषी, साहित्य रत्न इत्यादि परीक्षाएँ तो प्रत्येक लड़की पास कर लेती है। आज

हमारे देश की स्त्रियाँ उच्च से उच्च सरकारी पदों पर विद्यमान हैं। हमारी अपनी एक बहिन श्रीमती राजकुमारी अमृत कौर हमारी केन्द्रीय सरकार की मन्त्री हैं। दूसरी बहिन श्रीमती विजया लक्ष्मी अमरीका में हमारे देश की राजदूत हैं। श्रीमती सरोजिनी नायडू, अपनी मृत्यु से पहिले, उत्तर प्रदेश की गवर्नर थीं। अनेक स्त्रियाँ प्रांतीय धारा सभा व केन्द्रीय संसद की सदस्य हैं। उनमें से अनेक प्रान्तों में मन्त्रियों, तथा इसी प्रकार के उच्च पदों पर कार्य कर रही हैं। हमारी नारियाँ अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेती हैं तथा राष्ट्र संघ की बैठकों में भारत का प्रतिनिधित्व करती हैं। अभी हाल में ही पिछले राष्ट्र संघ के सम्मेलन में श्रीमती सुचेता कृपलानी हमारे देश के प्रतिनिधि मंडल की सदस्य बन कर लेक सक्सेस गई थीं।

नौकरियों के क्षेत्र में हमारी स्त्रियाँ अब केवल डाक्टर, नर्स, तथा अध्यापक का कार्य ही नहीं करतीं, वह दफ्तरों में क्लर्क, सुपरिन्टेन्डेन्ट, तथा उच्च अफसरों का कार्य करतीं हैं, पुलिस में भर्ती होती हैं, सेना में अनेक पदों पर कार्य करती हैं, मजिस्ट्रेट तथा न्यायाधीशों की कुर्सियों पर बैठ कर मुकदमों की सुनवाई करती हैं, वकील तथा बैरिस्टर का कार्य करती हैं, कारखानों में नौकरियाँ करती हैं, इंजीनियर, संपादक, कला विशेषज्ञ, लेखिका, साहित्यिक का कार्य करती हैं तथा पुरुषों के समान ही प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने का प्रयत्न करती हैं।

हिन्दू कोड बिल तथा स्त्रियों के आर्थिक अधिकार

हमारे नये विधान में स्त्रियों को सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार तो पूर्णतः प्रदान कर दिये गये हैं परन्तु अभी तक हमारी समाज में उन्हें पुरुषों के समान आर्थिक अधिकार प्राप्त नहीं होता है। उन्हें अपने पिता की सम्पत्ति में भाइयों के समान भाग नहीं दिया जाता, अपने पति के देहावसान पर उन्हें उसकी छोड़ी हुई जायदाद पर पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं होता, वह स्वेच्छा से किसी लड़के को गोद नहीं ले सकतीं। वह स्त्री धन को छोड़कर शेष जमीन जायदाद को नहीं बेच सकतीं। यह सब अधिकार स्त्रियों को प्रदान करने के लिये हिंदू कोडबिल बनाया गया है जो इस समय केन्द्रीय संसद् के विचाराधीन है। इस बिल के पास हो जाने पर स्त्रियों को पुरुषों के समान

ही आर्थिक अधिकार भी प्राप्त हो जायेंगे। वह अपने पिता की संपत्ति में भागीदार बन जायेंगी तथा उन्हें जमीन जायदाद बेचने अथवा खरीदने का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जायगा। विवाह विच्छेद के लिये भी हिंदू कोडबिल में प्रबन्ध किया गया है, परन्तु दूसरे देशों की भाँति नहीं, जहाँ एक स्त्री को ब्याहना और दूसरी को छोड़ देना हँसी-खेल समझा जाता है। विवाह विच्छेद का अधिकार केवल उस दशा में होगा जब किन्हीं विशेष कारणों से गृहस्थ जीवन एक सुख और उल्लास के केन्द्र के स्थान पर आए दिन के लिए कलह, विषाद, संघर्ष तथा लड़ाई-झगड़े का क्षेत्र बन जाय।

स्त्रियों की आज की माँगें

हिंदू कोडबिल के पास हो जाने के पश्चात् भारत की स्त्रियों को कानूनी तथा वैधानिक दृष्टि से वह हर प्रकार के अधिकार प्राप्त हो जायेंगे जिनके लिये अखिल भारतीय महिला सम्मेलन सन् १९४७ के पश्चात् से निरन्तर आन्दोलन करती आ रही है। अपने सन् १९४९ के ग्वालियर अधिवेशन में इस संस्था ने निम्न और माँगें देश के सम्मुख रक्खीं :—

(१) भारत सरकार तथा प्रांतीय सरकारों के अन्तर्गत एक ऐसे मन्त्री की नियुक्ति की जाय जिसका कार्य समाज सेवा संस्थाओं के कार्य का संचालन तथा निरीक्षण करना हो। सरकार के इस विभाग को 'मिनिस्ट्री आफ सोशल अफेयर्स' कहा जाय। इस विभाग का मुख्य कार्य सामाजिक क्षेत्र से प्रत्येक प्रकार की असमानता तथा शोषण की भावना को दूर करना हो।

(२) लड़कियों को अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के लिये देश के हर प्रांत, नगर तथा गाँव में प्रबन्ध किया जाय।

(३) हाई स्कूल की श्रेणी तक लड़कियों को उसी प्रकार शिक्षा दी जाय जैसे लड़कों को, जिससे वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पदार्पण कर सकें तथा प्रतियोगिता परीक्षाओं इत्यादि में बैठकर हर प्रकार की सरकारी नौकरी प्राप्त कर सकें।

(४) विवाहित स्त्रियों के लिये बहुत अधिक संख्या में जच्चा घर तथा शिशु गृह खोले जायँ जिससे उन स्त्रियों तथा बच्चों को मौत के मुँह से

बचाया जा सके जो आजकल शिक्षित दाइयों तथा चिकित्सालयों के अभाव के कारण सहस्रों की संख्या में प्रतिवर्ष काल की भेंट हो जाती हैं।

(५) गर्भवती स्त्रियों की देख-भाल के लिये देश भर में सैंटर खोले जायँ।

(६) परिवारों के योजनात्मक विकास के लिये देश भर में गर्भ निरोधक संस्थाएँ (Birth Control Centres) स्थापित की जायँ जिनसे अशिक्षित स्त्रियाँ भी लाभ उठा सकें।

(७) स्कूल और कौलिजों में लड़कों तथा लड़कियों को परिवार संबंधी शिक्षा प्रदान की जाय जिससे भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या, गरीबी तथा दुखी परिवारों की समस्या हल की जा सके।

(८) हिंदू कोड बिल को शीघ्र स्वीकार किया जाय।

यह ऐसी माँगें हैं जिनका अधिकतर सम्बन्ध सिद्धांतिक नहीं व्यवहारिक कार्यों से है और प्रांतीय तथा केन्द्रीय सरकारें, स्वतः ही अपने साधनों के अनुसार इन कार्यों की पूर्ति के लिये निरन्तर प्रयत्न कर रही हैं।

सावधानी की आवश्यकता—यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि जहाँ भारत सरकार तथा देश की जनता स्त्रियों की दशा सुधारने के लिये सतत प्रयत्न कर रहा है वहाँ हमारे देश की स्त्रियों में एक ऐसी भावना दृष्टिगोचर हो रही है जिसके कारण समाज के प्रतिष्ठित तथा वयोवृद्ध व्यक्ति यह समझने लगे हैं कि स्त्रियाँ, अपना स्वाभाविक कार्य छोड़कर, एक स्वच्छन्द, विलासितापूर्ण तथा फैशन-प्रिय जीवन व्यतीत करने की ओर अधिक अग्रसर हो रही हैं। आजकल जहाँ देखिये स्त्रियाँ, अपने घर का काम छोड़ कर, बच्चों को नौकरानियों के सुपुर्द करके, लिपस्टिक तथा गालों पर सुर्खी लगा कर तथा उत्तेजनात्मक वस्त्र पहिन कर, सिनेमाओं, बाजारों, तथा मेले ठेलों में घूमती हुई नजर आती हैं। स्त्रियाँ अच्छी प्रकार रहें, स्वच्छ वस्त्र पहिनें, शृङ्गार भी करें—इन सब का विरोध करने का हमारा प्रयोजन नहीं—परन्तु हम यह उचित नहीं समझते कि बिना सोचे समझे, स्त्रियाँ अपनी प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता को भूल कर, पाश्चात्य देशों की स्त्रियों की भांति, नैतिकता की दृष्टि से गिरा हुआ आचरण करें, सिगरेट पीती हुई बाजारों में घूमें, होटलों में बैठकर शराब पियें, नाच व रङ्गेलिया मनायें, दूसरे पुरुषों के साथ

स्वच्छंद रूप से घूमें, अपने बच्चों की परवाह न करें; उन्हें आयाओं के सहारे छोड़ दें, घर के काम से घृणा करें, तथा अपने सास-श्वसुर, पति व सम्बंधियों का आदर-सत्कार न करें। आजकल कुछ इसी प्रकार की प्रवृत्ति हमारी पढ़ी-लिखी स्त्रियों में देखने को मिलती हैं। प्रतीत होता है कि नव स्वतन्त्रता के नशे में स्त्रियाँ अपना सन्तुलन खो बैठी हैं और ऐसा आचरण करने लगी हैं जो हमारी प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता के बिल्कुल प्रतिकूल है। हमारी देवियों को चाहिये कि वह शिक्षा तथा स्वतन्त्रता का वास्तविक अर्थ समझें और इस प्रकार का आचरण करें जिस पर सभ्य समाज गर्व करे तथा जिससे संसार की दूसरी महिलाएं भी शिक्षा ग्रहण कर सकें।

हरिजनों की समस्या

स्त्रियों की भांति कुछ काल पहिले तक हमारे देश में हरिजनों के साथ अत्यन्त अत्याचारपूर्ण व्यवहार किया जाता था। उन्हें हर प्रकार के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकारों से वंचित रक्खा जाता था। अस्पृश्यता की प्रथा हमारे हिंदू धर्म का सबसे महान कलंक थी। जिस धर्म ने विश्व को शाँति, अहिंसा, प्रेम तथा आध्यात्मवाद का पाठ पढ़ाया, जिसकी शिक्षा, ज्ञान तथा दार्शनिक ज्योति के आगे सारा संसार नत मस्तक हो गया, जिसके अखंड ज्ञान भंडार की चमक ने दुनिया के धर्म विशेषज्ञों को चकाचौंध कर दिया, कैसे आश्चर्य की बात है कि उसी धर्म की दुहाई देकर, सहस्त्रों वर्षों तक, हमारी जनता ने अपनी समाज के एक सब से आवश्यक अंग को बहिष्कित तथा तिरस्कृत होते देखा। हरिजनों के साथ हमने पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया। जो जाति दूसरी सब जातियों की सेवक थी, जो जनता के दूसरे सदस्यों के आराम तथा सुविधा की खातिर नीच से नीच काम करने में भी परहेज नहीं करती थीं, जो हमारा मैला, कुचैला, गंद तथा नरक साफ करती थी, जो हमें इस योग्य बनाती थी कि हम महलों, प्रासादों तथा नगरों में रहकर ऐश और आराम से अपना जीवन व्यतीय कर सकें, कितने दुःख की बात है कि उसी को हमने अपने गले से लगाने के बजाय, दूध की मक्खी की तरह निकाल कर अवनति के गर्त में ढकेल दिया। उस जाति की छाया मात्र से हम अनुभव

करने लगे कि हम अपवित्र हो जायेंगे, उसे मन्दिरों में प्रवेश का अधिकार देकर हमारे देवता रूठ जायेंगे, उसे धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकार देकर हमारा ज्ञान भंडार लुट जायगा, उसे अपनी बस्तियों में रहने की सुविधा देकर हम नीच बन जायेंगे। आज पिछली यह सब बातें याद करके हमें विश्वास नहीं होता कि हमारे पूर्वज, या माता पिता, या कुछ काल पहले हम स्वयं इतने निर्दयी, पिशाच या हृदयहीन थे।

हरिजनों की अवस्था

हरिजनों के साथ इस प्रकार के व्यवहार की कहानी कोई बहुत पुरानी नहीं है। आज भी भारत में ऐसे पिछड़े हुए भाग हैं जहाँ हमारे अछूत कहे जाने वाले भाइयों के साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाता है। नगरों और नई रोशनी के नौजवानों में चाहे इस दशा में भारी परिवर्तन हो गया हो, परन्तु आज भी हमारे देश की अधिकांश गांवों में रहने वाली तथा अशिक्षित जनता ऐसी है जो हरिजनों को महापातकी समझती है, उसके साथ छू जाने पर घर लौटकर स्नान करती है, उनके हाथ की छुई हुई वस्तु को ग्रहण करने में मरने मारने पर उद्यत हो जाती है, उनको पानी पिलाने के समय नलकी का प्रयोग करती है, उनके बीच रास्ते में आ जाने पर दुर-दुर करके उन्हें पीछे हटा देती है, उनके जमीन या जायदाद खरीदने या पक्का हवादार मकान बनवाने पर उनके विरुद्ध तरह-तरह के लांछन लगाती है। उनको दावतें करने, बरात चढ़ाने, स्वच्छ वस्त्र पहिनने या अच्छा जीवन व्यतीत करने से रोकती है। उत्तर के प्रांतों में तो फिर भी हमारे हरिजन भाइयों की अवस्था कुछ अच्छी है परन्तु दक्षिण के प्रदेशों में तो उनकी दशा बहुत ही बुरी है। वहाँ के ब्राह्मण किसी अछूत को दूर में आता देख, दो फर्लांङ्ग के परे से ही चिल्लाते हैं, "दूर हट जाओ, हम आते हैं।" यदि दक्षिण के किसी पाखण्डी ब्राह्मण पर अछूत की परछाईं पड़ जाय तो फिर वह नर्मदा या गोदावरी में स्नान किये बिना पवित्र नहीं होता। मन्दिरों की तो बात ही क्या उस प्रांत में हरिजनों को आम सड़कों पर चलने पर भी उच्च वर्ण के लोग ऐतराज करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे हरिजन भाइयों की आज भी कितनी

हीन दशा है। उन्हें न किसी प्रकार के सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं, न आर्थिक और न राजनीतिक।

हरिजन सुधार आंदोलन

हरिजनों की इस दयनीय दशा को सुधारने के लिये हमारे समाज सुधारकों ने सदा से प्रयत्न किया है। आरंभ में महात्मा बुद्ध तथा महावीर जी ने वर्ण सम्बन्धी भिन्नताओं को दूर कर हरिजनों की व्यवस्था सुधारने का प्रयत्न किया। इसके पश्चात् चौदहवीं शताब्दी में रामानन्द स्वामी ने जाति व्यवस्था के थोथेपन को सिद्ध किया। मुसलमानों के काल में कबीर, नानक, तुकाराम, एकनाथ तथा नामदेव इत्यादि भक्ति मार्ग के प्रवर्तकों ने हरिजनों की अवस्था सुधारने के लिये भारी आन्दोलन किया। उन्नीसवीं शताब्दी में राजा राममोहन राय तथा स्वामी दयानन्द ने उनके उद्धार का बीड़ा उठाया। आर्य समाज की संस्थाओं ने इस कार्य पर सबसे अधिक जोर दिया और देश भर में उनको शिक्षा तथा उन्नति के लिये स्कूल, पाठशालाएँ तथा अछूत उद्धार सभाएँ स्थापित कीं। इसके पश्चात् महात्मा गांधी ने अपने जीवन की सारी शक्ति इस कार्य में लगा दी। उन्होंने हिंदू धर्म से इस कलंक को मिटाने के लिए, कितने ही बार आमरण अनशन किये, देश के कोने-कोने का दौरा किया, मंदिर-प्रवेश आंदोलन चलाया, हरिजन बस्तियों में जाकर रहे, अपने आप को भंगी कह कर पुकारा, हरिजन सेवक संघ की स्थापना की, हरिजन पत्र चलाया, लाखों व करोड़ों रुपया जमा करके, उनके लिये शिक्षा तथा दूसरी संस्थायें खोलीं, परन्तु जाति-पाँति का भेद-भाव हमारे सामाजिक संगठन में इतना घर कर चुका था कि उसका जड़ मूल से अन्त न हो सका। 'बापू' के प्रयत्नों के फलस्वरूप हरिजनों की सामाजिक अवस्था में तो काफी प्रगति हुई, सैकड़ों हिंदू मंदिरों के द्वार उनके लिये खुल गये, उनके प्रति घृणा का भाव दूर हो गया, सवर्ण हिंदू उनके साथ मिलने और बैठने लगे, उनके लिये नये-नये उद्योग-मंदिर और पाठशालाएँ खोली गईं, परन्तु उनकी आर्थिक अवस्था में अधिक सुधार न हो सका, और जहाँ-तहाँ हिंदू धर्म के पंडे और पुजारी, उन पर तरह-तरह के अत्याचार करते ही रहे।

हमारा नया विधान और हरिजन

जो काम सहस्रों वर्षों के सतत् तथा निरन्तर परिश्रम के पश्चात् भी हमारे अनेक समाज सुधारक तथा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी न कर सके, भारत के नये विधान के अन्तर्गत उसे पूर्ण कर दिया गया है। भारतीय विधान की १५वीं धारा में कहा गया है कि :—

"राज्य धर्म, नस्ल, जाति-पाँति, स्त्री-पुरुष या इनमें से किसी भेद-भाव के बिना प्रत्येक व्यक्ति को बराबर के अधिकार प्रदान करेगा। भारत के प्रत्येक नागरिक को अधिकार होगा कि वह—

(१) दुकानों, चाय घरों, होटलों तथा मनोरंजन के स्थानों में बिना किसी रोक-टोक के आ जा सके।

(२) कुओं, तालाबों, सड़कों और सार्वजनिक स्थानों का उपयोग कर सके।

(३) किसी भी प्रकार का व्यवसाय या व्यापार करे।

(४) सरकारी संगठन में उच्च से उच्च पद प्राप्त करे।

इस प्रकार नये संविधान में हरिजनों को सामाजिक समानता का अधिकार प्रदान किया गया है। इसके पश्चात् विधान की १७वीं धारा में 'अस्पृश्यता' का बीज जड़-मूल से ही नष्ट कर दिया गया है। इस धारा में कहा गया है "भारतवर्ष से छुआछूत का अन्त कर दिया जाता है, छुआ-छूत बरतने की मनाही की जाती है। छुआछूत के आधार पर यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे पर किसी भी प्रकार की रोक-टोक लगायेगा तो उसे राज्य की ओर से दंड दिया जायगा।"

आगे चल कर विधान में जहाँ राज्य नीति के नियामक सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है वहाँ पर ४६वीं धारा में कहा गया है "राज्य विशेष रूप से जनता की पिछड़ी हुई जातियों जैसे हरिजन, कबीली जातियाँ इत्यादि के अधिकारों की रक्षा करेगा और उन्हें हर प्रकार के सामाजिक शोषण से बचायेगा।"

नौकरियों तथा व्यवस्थापिका सभाओं में हरिजनों के अधिकारों की रक्षा

के लिये, भारतीय विधान में विशेष रूप से व्यवस्था की गई है। उसमें कहा गया है :—

"प्रत्येक प्रांत की विधान सभा में हरिजनों के लिये उनकी आबादी के हिसाब से स्थान सुरक्षित रक्खे जायँगे। नौकरियाँ देते समय उनके हितों का विशेष रूप से ध्यान रक्खा जायगा।"

इसके अतिरिक्त यह देखने के लिये कि विधान में दिये गये हरिजनों के प्रत्येक अधिकार की समुचित रक्षा की जाती है, राज्य द्वारा केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों में ऐसे अफसरों की नियुक्ति की जायगी जो यह देखें कि उनके अधिकारों की सुचारु रूप से रक्षा की जाती है या नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नव विधान द्वारा हमारे देश में एक ऐसे समाज की रचना करने का प्रयत्न किया गया है जिसमें किसी भी प्रकार की ऊँच-नीच, छुआ-छूत तथा छोटे-बड़े का प्रश्न न हो, प्रत्येक नागरिक बराबर हो तथा वह अपनी इच्छानुसार किसी भी प्रकार का व्यवसाय करके अपना जीवन निर्वाह कर सके तथा अपने व्यक्तित्व का पूर्णरूप से विकास कर सके।

स्वयं हरिजनों का कर्त्तव्य

भारतीय विधान ने हिंदू धर्म से 'अस्पृश्यता' का कलङ्क तो मिटा दिया परन्तु भारतीय विधान की इन धाराओं का हरिजन कहाँ तक लाभ उठाते हैं तथा कहाँ तक दूसरे मनुष्यों का मुँह ताकने के बजाय अपने पैरों पर खड़ा होना सीखते हैं, यह अब उन्हीं का काम है। प्रत्येक हरिजन का धर्म है कि वह अब अपने मन से छोटेपन को निकाल दें और यह समझने लगें कि समाज की दूसरी ऊँची जाति के मनुष्यों की भाँति वह भी मनुष्य हैं और समाज के संगठन में ऊँचे से ऊँचा पद प्राप्त करने का उनको भी उतना ही अधिकार है जितना किसी दूसरे मनुष्य को।

हरिजनों को चाहिये कि वह अपने बीच से भी छोटे-बड़े का भेदभाव मिटा दें। आज हमारे कितने ही हरिजन भाई अपनी ही बीच की जातियों को ऊँचा-नीचा मानते हैं। धोबी समझते हैं कि चमार नीच है, चमार समझते हैं कि मेहतर बुरे हैं, मेहतर समझते हैं कि हमसे तो कंजर घृणित

हैं, इत्यादि। सबसे पहले हरिजनों को आपस का भेदभाव मिटाना होगा, इसी के पश्चात् वह सवर्ण हिंदुओं के सम्मान का पात्र बन सकेंगे। हरिजनों को अपनी बुरी आदतों को छोड़ देना चाहिये ; तभी हरिजन समाज में अपना खोया हुआ मान पा सकते हैं। नये भारत में हरिजनों का भविष्य अत्यंत उज्वल है, परन्तु इसकी कुञ्जी उन्हीं के हाथ में है।

हिन्दू समाज की दूसरी सामाजिक कुरीतियाँ

जाति-पाँति, संयुक्त कुटुम्ब तथा हरिजनों की समस्या के अतिरिक्त हमारे सामाजिक जीवन की कुछ और कुरीतियाँ भी हैं जो हिंदू धर्म की जड़ों को खोखला कर रही हैं और हमारे देश में एक सच्चे प्रजातंत्रवादी शासन की स्थापना की विरोधी हैं। इन कुरीतियों में हम बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहु विवाह, पर्दा प्रथा, देवदासी प्रथा, चौका प्रथा, विधवापन, दहेज प्रथा इत्यादि के नाम ले सकते हैं। विवाह विच्छेद, गर्भ निरोध तथा वैज्ञानिक पारिवारिक संगठन के अभाव का उल्लेख भी हम इन्हीं कुरीतियों में कर सकते हैं। यह सच है कि धीरे-धीरे शिक्षा के प्रसार से यह कुरीतियाँ स्वतः ही हमारे सामाजिक संगठन से दूर होती जाती हैं, उदाहरणार्थ बाल विवाह, पर्दा प्रथा, देवदासी प्रथा, चौका प्रथा इत्यादि सामाजिक कुरीतियाँ अब इतिहास का विषय रह गई हैं। बहुत कम लोग अब ऐसे हैं जो इन प्रथाओं में विश्वास रखते हैं या उन्हें अच्छा समझते हैं। जो थोड़े-बहुत उदाहरण बाल विवाह अथवा पर्दा इत्यादि के देखने को मिलते भी हैं वह न के बराबर हैं और हमारी नई पीढ़ी के लोग जिन्होंने हाल ही में अपने जीवन में पदार्पण किया है, उन कुरीतियों का जड़ मूल से नष्ट कर देंगे। परन्तु दुर्भाग्य तो यह है कि हमारी समाज से एक कुरीति दूर नहीं होती कि दूसरी सामने आ खड़ी होती है। हमने पर्दा प्रथा को दूर किया परन्तु इस लिपस्टिक और पेट तक ब्लाउज पहनने की प्रथा का क्या करें ? हमने मन्दिरों से देवदासी प्रथा को दूर किया, परन्तु इन बनी-ठनी, पाश्चात्य फैशन-प्रिय सड़कों पर घूमने वाली देवदासियों का क्या करें ? हमने बाल विवाह की कुरीति को नष्ट किया परन्तु यह लम्बे-चौड़े दहेज माँग कर लड़कों को बेचने की प्रथा का क्या करें ? आज हमारा सामाजिक संगठन कुछ इतना खोखला हो गया

है कि हम संयमी, नियंत्रित तथा नैतिक जीवन व्यतीत करने में घोर कष्ट का अनुभव करते हैं। हम यह समझने का प्रयत्न नहीं करते कि स्वतंत्रता नियंत्रण का नाम है, अधिकार कर्त्तव्य पूर्ति का नाम है। अपनी स्त्री के मरने पर चाहे हमारी कितनी ही अवस्था हो, हम चाहते हैं कि और विवाह कर लें, परन्तु यदि हमारी अपनी ही कोई जवान बहन घर में विधवा बन बैठी हुई है तो हम उससे नहीं पूछते 'बहिन तुम्हारे लिये कोई योग्य वर तलाश कर दें।" हम स्त्री के कुरूप होने या उसमें और किसी प्रकार के दोष होने पर उसे घर से निकालने पर उतारू हो जायेंगे, परन्तु हम हिंदू कोड में वर्णित स्त्रियों के अपने पति को त्याग देने के अधिकार का विरोध करेंगे।

हम अपने हिंदू समाज से सामाजिक कुरीतियों को केवल उस समय दूर कर सकते हैं जब हम अधिकारों तथा कर्तव्यों का पारस्परिक सम्बन्ध समझ लें।

मुसलमानों का सामाजिक जीवन

हिंदू और मुसलमानों के सामाजिक जीवन में भारी अंतर है, यद्यपि हिंदुओं की भाँति उनका जीवन भी धार्मिक भावना से अधिक प्रभावित होता है। हिंदू धर्म एक अत्यंत सनातन और प्राचीन धर्म होने के नाते उसके अनुयायियों में अंध-विश्वास तथा कट्टरपन की भावना कम होती जा रही है, परन्तु मुसलमानों का धर्म केवल १३०० वर्ष पुराना है। दूसरे उनके अनुयायी अधिकतर अशिक्षित हैं। इससे उनमें कट्टरपन, अनुदारपन तथा अंध विश्वास की भावना अधिक है। यही कारण है कि धर्म के नाम पर जहाँ अधिकतर हिंदुओं में कोई हलचल पैदा नहीं होती वहाँ मुसलमान हर प्रकार के नीच काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

अंध-विश्वास के अतिरिक्त हिंदुओं की भाँति मुसलमानों के सामाजिक जीवन में भी अनेक सामाजिक कुरीतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। वैसे तो मुसलमानों का धर्म हिंदू धर्म की अपेक्षा अधिक जनतन्त्रवादी है, उसमें किसी प्रकार का जाति बन्धन नहीं, सब मुसलमान ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, निर्धन, मालदार के विचार के बिना बराबर समझे जाते हैं, वह एक ही थाली में बैठकर खाना खा सकते हैं, सब एक ही हुक्के का प्रयोग करते हैं, साथ मिलकर एक ही मस्जिद में नमाज पढ़ते हैं, परन्तु हिंदुओं के रीति-रिवाजों का उन पर भी प्रभाव पड़ा

है और वह भी एक प्रकार की जाति व्यवस्था में विश्वास करने लगे हैं। शिया और सुन्नी एक दूसरे को अलग तथा विरोधी मतों का सदस्य समझते हैं। इसके अतिरिक्त पठान, मुगल, मेव, सैयद और शेख एक प्रकार से अपने आपको भिन्न-भिन्न जातियों का सदस्य मानते हैं। वह एक दूसरे के साथ विवाह सम्बन्ध नहीं करते। इसके अतिरिक्त हिंदू धर्म से परिवर्तित मुसलमानों को भी नीचा समझा जाता है।

मुसलमानों में बहु विवाह की प्रथा का भी बहुत अधिक जोर है। चार स्त्रियाँ तो प्रत्येक मुसलमान हदीस की आज्ञानुसार ही रख सकता है। स्त्रियों के साथ अक्सर मुसलमान अच्छा व्यवहार नहीं करते। उनके धर्म में हिंदुओं की भाँति अर्धांगिनी को जीवन साथी तथा विवाह को दो आत्माओं का मेल नहीं माना जाता वरन् स्त्री को पुरुष की वासना की तृप्ति का साधन माना जाता है। उनके धर्म में विवाह एक प्रकार का 'ठेका' है जो इच्छानुसार तोड़ा जा सकता है। यही कारण है कि बहुत से मुसलमानों में 'मुता' विवाह का भी प्रचार है जिसके अनुसार कोई पुरुष किसी स्त्री से एक सप्ताह, एक माह अथवा एक वर्ष के लिये भी विवाह कर सकता है। वैसे तो मुसलमानों के धर्म में विवाह विच्छेद की प्रथा है, स्त्रियों को सम्पत्ति में भी अधिकार दिया जाता है, परन्तु विवाह विच्छेद की आज्ञा केवल पुरुषों को है, स्त्रियाँ अपने पति का त्याग नहीं कर सकतीं, उन्हें पर्दे के पीछे रक्खा जाता है और घर से बाहर बिना बुर्का ओढ़े निकलने की आज्ञा नहीं दी जाती। यही कारण है कि अधिकतर मुसलमानियाँ तपेदिक के रोग से पीड़ित पाई जाती हैं।

मुसलमानों में बाल विवाह तथा निकट सम्बन्धियों से विवाह का भी बहुत बुरा रिवाज प्रचलित है। छोटी-छोटी लड़कियों की शादी सगे भाई और बहिन को छोड़ कर, और किन्हीं के साथ हो सकती है। यह प्रथा न केवल नैतिक दृष्टि से बुरी है वरन् मैडिकल विज्ञान की दृष्टि से भी घृणित समझी जाती है। इसके कारण मुसलमानों का मानसिक विकास रुक जाता है और वह प्रायः हिंदुओं की अपेक्षा कम बुद्धिमान पाये जाते हैं।

मुसलमानों में से सामाजिक कुरीतियाँ दूर करने के लिये राज्य अधिक प्रनत्यनहीं कर सकता, कारण मुसलमान भारतवर्ष में एक अल्पसंख्यक

जाति हैं और सरकार कितनी ही अच्छी नीयत से उनके उद्धार के लिये काम करना चाहे, मुसलमान यही समझेंगे कि उनके धर्म में हस्तक्षेप किया जा रहा है। दूसरे नव विधान के अन्तर्गत हमारा राज्य असाम्प्रदायिक है। उस दृष्टि से भी वह किसी धर्म के सिद्धांतों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। सामाजिक सुधार की अन्तिम जिम्मेदारी इसलिये स्वयं हमारी जनता तथा उसकी धार्मिक व शिक्षा-संस्थाओं पर है।

योग्यता प्रश्न

(१) क्या भारत एक राष्ट्र है? राष्ट्रीयता के विकास में कौन सी बाधाएँ हैं? (यू० पी० १९२९)

(२) जाति व्यवस्था के लाभ तथा हानि समझाइये।

(३) भारतीय सामाजिक जीवन की दो क्या विशेषताएँ हैं? आधुनिक समय में उनकी क्या अवस्था है?

(४) भारतीय सामाजिक जीवन में स्त्रियों का क्या स्थान है। आर्थिक और राजनैतिक दृष्टिकोण से उनकी अवस्था में किस प्रकार सुधार किया जा सकता है? (यू० पी० १९२८, ३६, ३८)

(५) भारत के नव संविधान में स्त्रियों तथा हरिजनों को क्या अधिकार प्रदान किये गये हैं?

(६) वर्तमान काल में स्त्रियों की क्या माँगें हैं? उनका औचित्य समझाइये।

(७) हिन्दू समाज की सामाजिक कुरीतियों का वर्णन कीजिए। यह कुरीतियाँ कहाँ तक दूर हो सकी हैं?

(८) मुसलमानों के सामाजिक जीवन की क्या विशेषताएँ हैं? उनमें कौन सी कुरीतियाँ घर कर गई हैं?

अध्याय १८

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन

हम पिछले अध्याय में बता चुके हैं कि भारत के राष्ट्रीय जीवन में अनेक विभिन्नताएँ होते हुए भी, हमारा देश सदा एक संयुक्त राष्ट्र ही रहा है। सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोण से हम एक राष्ट्र हैं। यह सच है कि एक अविच्छिन्न राष्ट्रीयता की भावना, अभी हाल तक हमारी जनता में अधिक घर नहीं कर पाई थी। यही कारण है कि विदेशियों के आक्रमण के समय सारे भारतवासी एक होकर, आतताइयों के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा कायम न कर सके। आपसी द्वेष भाव तथा राष्ट्रीय एकता की भावना की कमी के कारण ही हमने मुसलमानों के हाथों अपनी स्वतन्त्रता खोई और इसके पश्चात् जब अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रूप में, हमारे देश में आये तो हम आपसी भेद-भावों को भुला कर उनका मुकाबिला न कर सके। हमारी राजनीतिक दासता ने हमारे नैतिक चरित्र को और भी नीचे गिरा दिया। हम अपनी प्राचीन परम्परा, सभ्यता तथा संस्कृति को भूल गये और बन्दरों की तरह अपने विदेशी शासकों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान तथा बोल-चाल के तरीकों को अपनाने लगे। बहुत से भारतीयों ने अपने धर्म को छोड़ कर ईसाई धर्म भी अपनाना आरम्भ कर दिया। इन्हीं सब कारणों से उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हमारे देश में एक धार्मिक तथा सामाजिक क्रांति का प्रादुर्भाव हुआ। इस क्रांति के जन्मदाता हमारे धर्म सुधारक नेता श्री राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, तथा रामकृष्ण परमहंस थे, जिन्होंने न केवल भारतवासियों को उनके वास्तविक धर्म तथा प्राचीन संस्कृति, गौरव और सभ्यता का ही ज्ञान कराया वरन् जनता में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में भी अत्यन्त सहा-

यता प्रदान की। इसी बीच हमारे देश में श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसे लेखक जिन्होंने 'वन्दे मातरम्' गीत लिखा तथा अनेक और पत्रकारों ने जन्म लिया। इन सब नेताओं ने भारतवर्ष में राष्ट्रीय चेतना की भावना जागृत करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग लिया।

राष्ट्रीय जागृति के विभिन्न कारण

भारत में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में जिन तत्वों ने भाग लिया उनका संक्षित वर्णन नीचे दिया जाता है : –

१. राजनीतिक एकता की स्थापना—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य में प्रथम बार भारत में काश्मीर से कन्याकुमारी और आसाम से द्वारिका तक राजनीतिक एकता का प्रदुर्भाव हुआ। इस एकता के कारण सारा देश एक ही शासन सूत्र में बँध गया और भारत की ३० कोटि जनता को सहस्रों वर्ष के खंडित इतिहास के पश्चात् प्रथम बार अंग्रेजी काल में अपने देश का प्राचीन विशाल स्वरूप देखने को मिला।

२. अंग्रेजी शिक्षा—भारत में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में दूसरा महत्वपूर्ण भाग अंग्रेजी शिक्षा का था। इस शिक्षा के द्वारा सारे भारतवासियों को एक दूसरे पर अपने विचार प्रकट करने की सुविधा प्राप्त हो गई। इससे पहिले हमारे देश के विभिन्न प्रांतों में अलग अलग भाषाएँ बोली जाती थीं और सब भारतवासी एक ही भाषा के द्वारा दूसरों पर अपने विचार व्यक्त न कर सकते थे। दूसरे, अंग्रेजी के ज्ञान के कारण हमारे देशवासियों को दूसरे देशों का साहित्य तथा इतिहास पढ़ने का अवसर मिला। उन्होंने देखा कि संसार के दूसरे देशों ने अपनी स्वाधीनता किस प्रकार प्राप्त की थी। उन्हें स्वतन्त्र देशों की जनता के राजनीतिक अधिकारों का भी ज्ञान हुआ और वह समझने लगे कि प्रजातन्त्र शासन का क्या अर्थ होता है।

३. पश्चिमी सभ्यता—पश्चिमी सभ्यता के संपर्क ने भी भारतवासियों में एक ऊँचे रहन-सहन तथा सभ्य जीवन व्यतीत करने की आवश्यकता का ज्ञान कराया और वह समझने लगे कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बिना वह एक समृद्धिशाली तथा प्रगतिशील जीवन व्यतीत न कर सकेंगे।

४. विदेशी यात्रा—अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवक जब दूसरे देशों में

गये और वहाँ उन्होंने स्वतन्त्रता के वातावरण में साँस लिया तो उन्हें अनुभव हुआ कि अपने देश की हीन अवस्था का वास्तव में क्या कारण है और दूसरे देशों के लोग भारतवासियों को इतनी घृणा की दृष्टि से क्यों देखते हैं ? मन ही मन ऐसे नवयुवकों ने अपने देश को स्वतन्त्र करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली, और उनमें से कितनों ने ही हमारे देश के राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व धारण किया।

५. धार्मिक सुधार आंदोलन तथा भारत की प्राचीन संस्कृति का पुनरुत्थान—उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक सुधारकों ने जिनमें राजाराम मोहन राय तथा स्वामी दयानन्द मुख्य थे भारतवासियों के हृदय में अपनी प्राचीन हिंदू संस्कृति तथा सभ्यता के प्रति श्रद्धा उत्पन्न की। उन्होंने भारतीयों को बताया कि किस प्रकार उनका अपना देश संसार का गुरु तथा विश्व का सबसे गौरवशाली देश था। इस प्रकार इन नेताओं द्वारा जाग्रत धार्मिक भावना ने राष्ट्रीयता को जन्म दिया।

६. आर्थिक असंतोष तथा बढ़ती हुई गरीबी—आरम्भ से ही हमारे अंग्रेज शासकों ने भारत में एक ऐसी आर्थिक नीति का अवलंबन किया जिसके कारण हमारा देश दरिद्रता, अकाल, तथा भुखमरी की ज्वाला में झुलसता चला गया। उनके काल में हमारे प्राचीन उद्योग धन्धे नष्ट हो गये और हमारे बाजारों में विदेशों की बनी हुई सस्ती चीजें बिकने लगीं। हमारा व्यापार भी नष्ट हो गया और हमारे देश में बेकारी और गरीबी बढ़ती चली गई। इन्हीं सब कारणों से जनता में विदेशी शासन के विरुद्ध एक भारी असंतोष की लहर दौड़ गई।

७. भारतीय समाचार पत्र तथा साहित्य की प्रगति—अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों तथा हिंदी के साहित्य ने भी राजनीतिक चेतना के कार्य में भारी सहयोग दिया। उन्नीसवीं शताब्दी में हमारे देश में अनेक समाचार पत्र प्रकाशित किये गये और छापेखाने के आविष्कार से अनेक पुस्तकें लिखी गईं। इसी काल में भारत में बंकिम, टैगोर, सरला देवी तथा रजनीकाँत सेन जैसे साहित्यिक, कवि और लेखकों ने जन्म लिया।

उन्होंने देश भक्ति से ओत-प्रोत साहित्य को जन्म देकर भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना निर्माण करने के कार्य में अत्यंत महत्वपूर्ण भाग लिया।

८. यातायात के साधनों में उन्नति—अंग्रेजों के काल में हमारे देश में आने जाने तथा परस्पर संपर्क के साधनों जैसे रेल, तार, डाक तथा सड़कों इत्यादि की भी भारी उन्नति हुई जिसके कारण सारा देश एक सूत्र में बंध गया और जनता को इस बात का अवसर मिला कि वह सारे देश की समस्याओं पर विचार कर सके। राष्ट्रीय नेताओं को भी इन्हीं सुविधा के कारण सारे देश में भ्रमण तथा राजनीतिक आंदोलन करने का अवसर प्राप्त हो सका।

९. १८५७ का प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम—सन् १८५७ में भारतवासियों ने अपने विदेशी शासकों के विरुद्ध प्रथम बार एक संयुक्त मोर्चा कायम किया। यह सच है कि इस स्वाधीनता संग्राम में भारतवासियों को सफलता प्राप्त न हुई और आजादी के सिपाहियों को बुरी तरह कुचल डाला गया। उनके दल के दलों को रस्सियों से बाँध कर पेड़ों की डालियों पर लटका कर फाँसी दे दी गई, और इस प्रकार उनकी आजादी की भावना को बिलकुल पीस डालने का प्रयत्न किया गया। परन्तु, इस सब दमन से, अंग्रेज, भारतीयों के हृदय से देश प्रेम की भावना का अन्त न कर सके और रह-रह कर सन् १८५७ की याद भारतीयों के हृदय में टीस उत्पन्न करती रही।

१०. लार्ड लिटन का शासन—सन् १८८० के लगभग, जिस समय लार्ड लिटन भारत के गवर्नर जनरल थे, तो अंग्रेजी शासकों ने कुछ ऐसी भीषण गलतियाँ भारत के शासन के संबंध में कीं कि उनके कारण भारतीय जनता में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध असंतोष की लहर फैल गई। इसी समय सन् १८७७ में दिल्ली में दरबार किया गया। यह वह समय था जब सारे देश में भीषण अकाल फैला हुआ था और लाखों मनुष्य भूख और प्यास की ज्वाला से तड़प-तड़प कर अपने प्राण खो चुके थे। इसी समय अफ़गानिस्तान के विरुद्ध भारतीय कोष से भारी रकम खर्च करके युद्ध लड़ा गया। लार्ड लिटन के ही काल में समाचार पत्रों पर तरह-तरह की रोक लगाई गई। उसी

ने लंका शायर के कपड़े के व्यापारियों को प्रसन्न करने के लिये, इंगलैण्ड के कपड़े पर से आयात कर उठा लिया। उसी ने भारतीय सेना के खर्चे को बढ़ाया।

११. एल्बट बिल आंदोलन—सन् १८८३ में लार्ड रिपन के काल में कानूनी सदस्य मि० एल्बर्ट ने वायसराय की कौंसिल में एक बिल रक्खा जिसके द्वारा न्याय के क्षेत्र से जाति, नस्ल और रंग का भेद-भाव मिटाने का प्रयत्न किया गया था। इस बिल के द्वारा भारतीय जजों को इस बात की आज्ञा दी गई थी कि वह अंग्रेजों के विरुद्ध भी मुकदमों का फैसला कर सकें। परन्तु, इस बिल ने भारत के समस्त अंग्रेजों को एक क्रोध और आवेग की भावना से भर दिया और उन्होंने इस बिल का विरोध करने के लिये जगह-जगह योरोपियन डिफेंस एसोसियेशन बनाये। उनके द्वारा बिल को रद्द करने का आंदोलन किया। लार्ड रिपन की सरकार इस आंदोलन का सामना न कर सकी और उसे एल्बर्ट बिल वापिस लेना पड़ा। परन्तु, अंग्रेजों की इस हलचल ने भारतियों को भी आन्दोलन का मार्ग सिखा दिया और उन्होंने यह समझ लिया कि जब तक वह अपने अधिकारों की रक्षा के लिये किसी संस्था को जन्म नहीं देंगे तब तक वह अंग्रेज शासकों के नीचे इसी प्रकार पिसते रहेंगे।

१२. पूर्व के देशों में राजनीतिक जागृति—जिस समय उपरोक्त कारणों से भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध एक असंतोष की लहर दौड़ रही थी तो पूर्व के देशों में कुछ इस प्रकार की राजनीतिक घटनाएँ हुईं जिनसे भारतीयों के हृदय में एक नव उत्साह तथा विश्वास का निर्माण हुआ। सन् १८९६ में ऐबीसीनियाँ जैसे छोटे हब्शियों के देश ने इटली को हरा दिया और सन् १९०४ में जापानियों ने रूसियों को एक युद्ध में पराजित कर दिया। इन दोनों घटनाओं से भारतीयों को विश्वास हो गया कि योरप के देशों की सेनाओं को हराना कोई असम्भव बात नहीं। इसी समय यूनान, टर्की तथा इटली के देशों में स्वतंत्रता संग्राम हुए और उनकी सफलता के पश्चात् भारतवासियों ने भी सोचा कि उन्हें अपने देश को स्वतंत्र करने के लिये आंदोलन करना चाहिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपरोक्त सभी कारणों से भारतवासियों के हृदय में एक राजनीतिक चेतना का संचार हुआ और उन्हें इस बात का अनुभव होने लगा कि उनके अपने देश के लिये एक ऐसी अखिल भारतीय संस्था की आवश्यकता है जो अंग्रेजी शासन के विरुद्ध लोहा ले सके और भारतवासियों को राजनीतिक अधिकार दिलाने के लिये आन्दोलन कर सके। यहाँ यह समझ लेने की आवश्यकता है कि इस प्रकार राजनीतिक जागृति भारतीयों के हृदय में एकदम उत्पन्न हो गई। यह जागृति धीरे-धीरे हुई। जिस समय सन् १८८५ में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई तो उसके पश्चात् इस संस्था ने स्वयं देश में राजनीतिक चेतना को बलशाली बनाने में भारी सहयोग दिया।

कांग्रेस की स्थापना के पहले हमारे देश में कुछ प्रांतीय संस्थाएँ तो थीं, जैसे ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन (१८५१), इण्डियन एसोसियेशन (१८७६), पूना पब्लिक एसोसियेशन (१८७०), मद्रास महाजन सभा, बाम्बे प्रेसिडेंसी एसोसियेशन इत्यादि, परन्तु सारे भारतवर्ष के लिये कोई अखिल भारतीय संस्था नहीं थी। इसलिये जब १८८५ में इस संस्था का जन्म हुआ तो सब देशवासियों ने उसका खुले हृदय से स्वागत किया।

कांग्रेस का इतिहास

कांग्रेस का जन्म सन् १८८५ में हुआ। इसके पूर्व इसके संगठन की योजना सन् १८८४ में मद्रास में दीवान बहादुर रघुनाथ राय के घर पर बनाई गई थी जहाँ आदियार के थियोसाफिकल सम्मेलन के पश्चात् उनके घर पर कुछ लोग जमा थे। इन लोगों ने निश्चय किया कि वह एक अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना करेंगे। रिटायर्ड अंग्रेज सिविलियन एलन आक्टेवियन ह्यूम ने इस कार्य में अत्यंत दत्तचित्तता से काम किया। बहुत से लोग तो इसीलिये श्री ह्यूम को कांग्रेस का जन्मदाता भी कहकर पुकारते हैं। मार्च सन् १८८५ में इस संस्था का विधान बनाने के लिये एक छोटी सी कमेटी बना दी गई जिसका निश्चय था कि कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन पूना में दिसम्बर के मास में बुलाया जाय।

मि० ह्यूम ने कांग्रेस के संगठन में भाग लेने से पहले भारत के वायसराय

लार्ड डफरिन से सलाह ली थी कि वह इस प्रकार की संस्था में भाग लें अथवा नहीं। लार्ड डफरिन ने यह समझ कर कि कांग्रेस भारत में वही कार्य कर सकेगी जो इंगलैंड की पार्लियामेंट में विरोधी दल करता है और इस प्रकार अंग्रेज शासकों को भारतीय जनता की राजनीतिक आकांक्षाओं का भी पता चल जायगा, मि० ह्यूम को कांग्रेस का कार्य करने की अनुमति दे दी।

कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन—कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन हैजे के प्रकोप के कारण पूना में न हो सका। इसलिये कांग्रेस की पहली सभा श्री उमेश चन्द्र बनर्जी के सभापतित्व में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कौलेज हाल बम्बई में हुई। इस सम्मेलन में समस्त भारत के ७२ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इनमें श्री ह्यूम, दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, रानाडे, दिनशाह वाचा तथा श्री चन्द्रवाकर मुख्य थे। आरम्भ में कांग्रेस ने अपना ध्येय स्वराज्य प्राप्ति नहीं बनाया वरन् राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिये अंग्रेजों से प्रार्थना करने तथा आवेदन पत्र भेजने के मार्ग का अवलम्बन किया। इसलिये आरम्भ में सरकार ने कांग्रेस को सहयोग दिया और मि० ह्यूम के अतिरिक्त और बहुत से अंग्रेज तथा सरकारी कर्मचारी इसमें सम्मिलित हो गये। महात्मा गांधी के कांग्रेस में पदार्पण करने से पहिले, इस राष्ट्रीय संस्था का अधिवेशन भारत के बड़े-बड़े नगरों में किया जाता था। इनमें अधिकतर अंग्रेजी पढ़े-लिखे वकील और बैरिस्टर, डाक्टर और प्रोफेसर और बड़े-बड़े जमींदार और व्यापारी भाग लेते थे। यह लोग वार्षिक सम्मेलनों के अवसर पर तो बड़े-बड़े भाषण देते थे और प्रस्ताव पास करते थे, परन्तु इसके पश्चात् दूसरे अधिवेशन के आरम्भ होने तक वह और किसी प्रकार का कार्य नहीं करते थे।

कांग्रेस के प्रस्तावों में ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की जाती थी कि वह भारतीयों को देश की सेना, सिविल सर्विस, न्यायालय तथा व्यवस्थापिका सभाओं में भाग लेने का अधिक अवसर प्रदान करे तथा उन्हें उच्च सरकारी नौकरियों पर पहुँचने की सुविधाएँ दे।

सन् १८९० में कांग्रेस ने सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल लंदन भेजा और इस प्रकार प्रथम बार उस वर्ष में कांग्रेस ने

अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये राजनीतिक आंदोलन का मार्ग पकड़ा। सन् १८८६ में कांग्रेस की एक शाखा भी लंडन में खोली गई। इन सब आंदोलनों का यह परिणाम हुआ कि सन् १८६२ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने इंडियन कौंसिल ऐक्ट पास किया जिसके द्वारा भारतीयों को लेजिस्लेटिव कौंसिल की सदस्यता का अधिकारी बना दिया गया।

कांग्रेस के सदस्यों को इस ऐक्ट से अत्यंत निराशा हुई। कारण, वह समझते थे ब्रिटिश सरकार कुछ थोड़े से मुट्ठी भर भारतीयों को कौंसिल की सदस्यता बख्शने के अतिरिक्त कुछ वास्तविक राजनीतिक अधिकार भी प्रदान करेगी। कांग्रेस चाहती थी कि प्रान्तों में धारा सभाएँ स्थापित की जायँ। आई० सी० एस० की परीक्षा में भारतीयों को अंग्रेजों के समान ही भाग लेने का अवसर दिया जाय, कार्य-कारिणी तथा न्याय विभाग को अलग किया जाय। स्थानीय स्वराज्य की नींव डाली जाय तथा भारतीयों की उच्च पदों पर नियुक्ति की जाय। १८६२ के ऐक्ट में कांग्रेस की यह माँगें स्वीकार नहीं की गईं। परिणाम यह हुआ कि देश में अंग्रेजों के विरुद्ध राजनीतिक असंतोष बढ़ने लगा और कांग्रेस ने देश की राजनीति में सक्रिय रूप से अधिक भाग लेना आरंभ कर दिया। सन् १८६० में कांग्रेस को अपने हाथों से निकलता हुआ देख कर अंग्रेज ने सरकारी नौकरों को उसके अधिवेशनों में भाग लेने की मनाही कर दी थी। परन्तु इसके पश्चात् जब भी राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव कम न हुआ तो उसने एक दूसरी चाल सोची। उसने मुसलमानों को हिंदुओं के विरुद्ध भड़काना आरंभ कर दिया और कहा 'कांग्रेस तो हिंदुओं की संस्था है।' इस प्रकार अंग्रेजों की शह पाकर मुसलमानों के एक नेता सर सैयद अहमद ने धार्मिक आधार पर मुसलमानों की एक अलग संस्था बना डाली।

असंतोष की प्रगति—इधर अनेक कारणों से देश में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक घोर असंतोष की भावना जाग्रत हो रही थी। सन् १८६७ में हमारे देश में एक भीषण अकाल पड़ा जिसमें लाखों नर और नारी भूख और प्यास से तड़प-तड़प कर परलोक सिधार गये। इसी के थोड़े दिन पश्चात् हमारे देश में प्लेग की महामारी फैली। सरकार इन दोनों अवसरों पर जनता के

दुख को दूर करने के लिये कुछ भी उपाय न कर सकी। इधर दक्षिणी अफ्रीका में भारतीय नागरिकों पर वहाँ की सरकार तरह-तरह के जुल्म ढा रही थी और भारतीय सरकार चुप खड़ी यह सब तमाशा देखती जा रही थी। पूना में इसी समय दो अंग्रेज अफसरों को किसी ने कत्ल कर दिया। भारतीय सरकार को गोरी चमड़ी के इन दो लोगों की जानें इतनी प्यारी थीं कि उसने सैकड़ों भारत-वासियों को मौत के घाट उतार कर बदला लिया। इसके पश्चात् राजनीतिक असंतोष को दबाने के लिये उसने राजद्रोह का कानून पास किया। इन सब कारणों से भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में एक गरम दल का जन्म हुआ। इसके नेता लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय तथा विपिन चन्द्रपाल थे। इन तीनों नेताओं ने नरम दलीय कांग्रेस जनों से राष्ट्रीय संस्था की बागडोर अपने हाथों में लेने का प्रयत्न किया। कांग्रेस के बाहर भी बंगाल में एक क्रांतिकारी बम पार्टी का संगठन किया गया जिसने अंग्रेज शासकों को मारना तथा सर-कार के पिट्ठुओं को भयभीत करना अपना ध्येय बना लिया।

वंग-भंग आंदोलन—सन् १८६८ में लार्ड कर्जन गवर्नर-जनरल बन कर भारत में आये। उनकी नीति ने सारे देश में राजनीतिक ज्वाला को और भी भड़का दिया। वह भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को अत्यन्त हेच समझते थे। उन्होंने भारतीयों के आत्मगौरव को भारी ठेस पहुँचाई और अन्त में मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये बंगाल के दो टुकड़े करने की योजना रक्खी। इस योजना ने सारे देश में एक ऐसे शक्तिशाली आंदोलन को जन्म दिया कि उसके रोष तथा प्रताप के सम्मुख ब्रिटिश सरकार के पैर न जम सके और उसे बंगाल के दो टुकड़ों को दो वर्ष पश्चात ही एक कर देना पड़ा।

कलकत्ता अधिवेशन—इधर सरकार की दमन नीति के कारण कांग्रेस नरम दल के नेताओं के हाथों से निकल कर गरम दलीय कांग्रेस जनों के हाथों में चली जा रही थी। सन् १६०६ में कांग्रेस का जो अधिवेशन कलकत्ते में हुआ उसमें 'लाल' 'बाल' 'पाल' की पार्टी का बहुमत था। इस अधिवेशन में डर था कि कहीं नरम दल और उग्र दल में संघर्ष न हो जाय परन्तु दादा भाई नौरोजी के नेतृत्व के कारण जो इस समय कांग्रेस के प्रधान थे इन दोनों दलों में मुठभेड़ न हो सकी और यह अधिवेशन विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार

का प्रस्ताव पास करके निर्विघ्न समाप्त हो गया। नरम दल के नेता सर सुरेन्द्र-नाथ बनर्जी तथा सर फिरोजशाह मेहता इस प्रस्ताव से सहमत नहीं थे परन्तु उन्हें गरम दल के बहुमत के सामने झुकना पड़ा।

कांग्रेस में फूट—सन् १९०७ में कांग्रेस का अगला अधिवेशन सूरत में हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस के नरम दल के नेता अपने पूरे दल बल के साथ सम्मेलन में सम्मिलित हुये। वह गरम दल के नेताओं से टक्कर लेना चाहते थे। इसलिये इस अधिवेशन में उन्होंने कलकत्ता अधिवेशन में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार संबंधी प्रस्ताव को बदलना चाहा। इस प्रस्ताव से कांग्रेस में खूब गड़बड़ी मची। गरम दल के नेताओं ने पूरी शक्ति के साथ प्रस्ताव का विरोध किया। परन्तु इस अधिवेशन में वह नरम दल वालों की भाँति अपनी पूरी तैयारी के साथ जमा नहीं हुये थे। परिणाम यह हुआ कि नरम दल के नेताओं की विजय हुई और उन्होंने गरम दल के नेताओं को कांग्रेस से निकाल दिया। कांग्रेस का विधान बदल दिया गया और उसमें इस प्रकार के नियम बनाये गये, जिससे उग्रदलीय कांग्रेस जन उसमें सम्मिलित न हो सकें।

गरम दलीय कांग्रेस जनों का दमन—ब्रिटिश सरकार कांग्रेस की इस फूट के अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने अब एक दोहरी नीति का आश्रय लिया। नरम दल वाले कांग्रेस नेताओं को तो उसने मिन्टो मोर्ले के सन् १९०९ के सुधारों का प्रलोभन देकर अपने साथ मिला लिया और गरम दल वाले कांग्रेस नेताओं को उसने तरह-तरह के अभियोग लगा कर दबाना आरंभ कर दिया। इसी बीच उसने तिलक को छै वर्ष के लिये माँडले की जेल में नजर बन्द कर दिया। लाला लाजपत राय का बिना मुकदमें किये ही हिंदुस्तान से निकाल कर अमरीका भेज दिया गया और विपिन चन्द्र पाल को छै महीने की सख्त सजा देकर जेल में बन्द कर दिया गया। इसके अतिरिक्त उसने राष्ट्रीय आंदोलन के पीठ में छुरा भोंकने के लिये मुसलमानों को हिंदुओं के विरुद्ध खुली सहायता देनी आरम्भ कर दी। इस समय के स्थानापन्न गवर्नर जनरल ने नवाब मोहिसिन उलमुल्क और आगा खाँ को अपने पास बुलाया और कहा कि तुम एक अलग मुस्लिम लीग संस्था की स्थापना करो और सरकार से कहो कि वह तुम्हें हिंदुओं से अलग धारा सभाओं में सुरक्षित

स्थान तथा पृथक निर्वाचन का अधिकार दे। अंग्रेजों के इन पिट्ठुओं ने ऐसा ही किया और भारत में सदा के लिये साम्प्रदायिकता का वह विष बो दिया जिसके कारण हमारे देश के दो टुकड़े हो गये। उन्होंने सरकार से पृथक् निर्वाचन प्रणाली की माँग की। यह माँग तुरन्त ही स्वीकार कर ली गई। सन् १९०६ में मुस्लिम लीग का जन्म हुआ और सारे प्रतिक्रियावादी मुसलमानों ने कांग्रेस के विरुद्ध मोर्चा क़ायम करने तथा ब्रिटिश सरकार का साथ देने के लिये इसका सहयोग दिया।

सन् १९१६ तक कांग्रेस नरम दलीय काँग्रेस जनों के हाथ में रही आई। कारण इस समय तक सब गरम दल वाले नेता जेलों में थे। इसलिये नरम दल के नेताओं ने मिंटो मौर्ले सुधारों को कार्यान्वित करने में पूरा सहयोग दिया।

प्रथम महायुद्ध—परन्तु नरम दल के नेताओं की इस सरकार परस्त नीति से देश पूरी तरह ऊब चुका था और भारत के कोने-कोने में एक असंतोष की लहर फैल रही थी। इसी बीच सन् १९१४ में संसार में दूसरा महायुद्ध आरम्भ हो चुका था। इसके कुछ दिन पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों से सरकार को युद्ध में सहयोग देने की अपील की। तिलक जेल से छोड़ दिये गये और महात्मा गांधी इस समय दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की ओर से एक सफल नेतृत्व करने के पश्चात् भारत लौटे। ब्रिटिश सरकार के सङ्कट के समय सभी कांग्रेस के नेताओं ने सरकार को सहयोग देना ही उचित समझा और उन्होंने जनता से प्रार्थना की कि वह सरकार की पूरी मदद करें। नेताओं की इस अपील के कारण, भारतवासियों ने अपनी अतुल धन-सम्पत्ति तथा लाखों नवयुवकों से अंग्रेजों का लड़ाई में साथ दिया।

युद्ध के पश्चात्—भारतवासियों को आशा थी कि युद्ध में इस प्रकार सहयोग देने के बदले में उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में कुछ वास्तविक अधिकार प्रदान कर दिये जायेंगे। भारत मन्त्री मि० मान्टैग्यू की सन् १९१७ की उस घोषणा से जिसमें उन्होंने भारत को धीरे-धीरे उत्तरदायी शासन देने का वचन दिया था उसकी यह आशा और भी प्रबल हो गई थी। परन्तु, युद्ध के तुरंत पश्चात्, जिस समय राष्ट्र के नवयुवक स्वराज्य प्राप्ति का सुखद

स्वप्न देख रहे थे, तो भारतवासियों को मिला रौलट ऐक्ट और पञ्जाब का वह निर्मम हत्याकाँड जिसमें देश प्रेम के अपराध में पंजाब के सहस्रों व्यक्तियों को मार्शल ला के आधीन गोलियों का शिकार बना कर मौत के घाट उतार दिया गया। इसी समय अमृतसर में जलियाँवाला बाग का वह नारकीय दृश्य भी रचा गया जिसमें दो अंग्रेज अफसरों के मारे जाने के बदले में २०, ००० व्यक्तियों की एक शांतिपूर्ण सभा पर गोलियों की बौछार कर दी गई और जनता के भागते हुए व्यक्तियों की पीठों में गोलियाँ दाग दी गईं। सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार जलियाँवाला बाग में ३७६ व्यक्ति मारे गये और १२०० व्यक्ति जख्मी हुये। इस जुल्म ने जनता को एक क्रोध तथा प्रतिकार की भावना से भर दिया। महात्मा गांधी ने इस समय देश की बागडोर अपने हाथों में सँभाल ली। नवम्बर सन् १९१८ में नरम दल वाले नेता कांग्रेस की उग्र नीति से तङ्ग आकर उससे पहिले ही अलग हो चुके थे और उन्होंने अपनी एक अलग लिबरल पार्टी बना ली थी। १ अगस्त, सन् १९२० को लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक भी इस संसार से चल बसे। गांधी जी ही इस समय ऐसे नेता थे जिन पर देश की दृष्टि लगी थी। उन्होंने तुरंत मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित करने के लिये तथा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा प्रस्तुत करने के लिये मुसलमानों के खिलाफत आन्दोलन का साथ दिया। पिछले महायुद्ध में टर्की के लड़ाई में हार जाने के कारण मुसलमानों के धार्मिक पैगम्बर खलीफा को उस देश की गद्दी से उतार दिया गया था। हिंदुस्तान के मुसलमान, अंगरेजों के इस कृत्य से अत्यंत क्रोधित थे और उन्होंने अली बन्धुओं के नेतृत्व में काँग्रेस का साथ देने का निश्चय किया।

असहयोग आंदोलन—कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन सन् १९२० में कलकत्ते में हुआ। इस अधिवेशन में महात्मा गांधी ने धारा सभाओं, कचहरियों, शिक्षा संस्थाओं तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा अंग्रेजी सरकार से असहयोग का प्रस्ताव कांग्रेस के सम्मुख रक्खा। प्रस्ताव पास हो गया। इसके तुरन्त पश्चात् देश भर में आंदोलनों की आग धधक उठी। हजारों नर और नारियों ने हँसते-हँसते जेल की यातनाएँ सहीं। जगह-जगह

विलायती कपड़ों की होली जलाई गई। परन्तु जिस समय आंदोलन इस प्रकार जोरों पर चल रहा था तो दुर्भाग्यवश ५ फरवरी सन् १९२२ को संयुक्त प्रांत के गोरखपुर जिले में एक ऐसी घटना हो गई जिसने इस विशाल आंदोलन का पासा ही पलट दिया। उन दिनों चौरीचौरा गाँव में एक कांग्रेसी जुलूस निकला और पुलिस के हस्तक्षेप करने पर जुलूस की भीड़ ने आवेश में आकर थानेदार और २१ सिपाहियों समेत थाने को जला डाला। उधर मद्रास में भी युवराज के स्वागत समारोह के अवसर पर एक ऐसा हिंसाकांड हुआ। महात्मा गांधी जो असहयोग आंदोलन का नेतृत्व अहिंसात्मक उपायां से करना चाहते थे, हिंसा के इस प्रदर्शन से बेचैन हो गये और १२ फरवरी १९२२ को उन्होंने असहयोग आंदोलन को स्थगित कर दिया। गांधी जी ने ऐसा उस समय किया जब २३,००० से अधिक व्यक्ति जेलों में जा चुके थे और जनता एक वर्ष के अन्दर स्वराज्य प्राप्ति का स्वप्न पूरा होते देखने के लिये अपना तन मन और धन स्वातन्त्र्य संग्राम में न्यौछावर कर रही थी। गांधी जी के सत्याग्रह वापस लेने के प्रस्ताव से जनता ऊब उठी और गिरफ्तार नेताओं में पंडित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपत राय ने गांधी जी के इस काम की घोर निंदा की। सफलता और बढ़ते हुए आन्दोलन को पीछे हटाने से बहुत से गांधी भक्त लोग भी उनके विरोधी बन गये और बंगाल और महाराष्ट्र के लोग उन पर खुल्लमखुल्ला आक्रमण करने लगे।

गांधीजी को जेल और साम्प्रदायिकता का तांडव नृत्य—भारत सरकार ने जब यह देखा कि गांधी जी की लोकप्रियता काफी घट गई है तो उसने १३ मार्च, सन् १९२२ को उन्हें गिरफ्तार करके राजद्रोह के अपराध में छै साल की सजा सुना दी। गांधी जी की इस गिरफ़्तारी के पश्चात् देश में निराशा का वातावरण छा गया और राजनीतिक क्षेत्र में एक प्रकार की उदासी आ गई। सरकार ने इस अवसर को देश में साम्प्रदायिक द्वेष की भावना भड़काने के लिये अत्यन्त उपयुक्त समझा। इसी काल में हिन्दू सभा की नींव डाली गई और मुस्लिम लीग का नेतृत्व मि० जिन्ना ने अपने हाथों में ले लिया। सरकार की चालबाजी का यह फल हुआ कि देश में जगह जगह साम्प्रदायिक झगड़े हुये। मुल्तान में भीषण उपद्रव हुये और हिन्दू मुसलमानों का खूब रक्त बहा।

कांग्रेस का कौंसिल प्रवेश कार्यक्रम—इधर कांग्रेस के कुछ नेताओं ने जनता को साम्प्रदायिक संस्थाओं के फेर से बचाने के लिए देश के सम्मुख 'कौंसिल प्रवेश' का कार्यक्रम रक्खा। इस आन्दोलन के नेता मोतीलाल नेहरू व देशबन्धु चित्तरंजन दास थे। आरंभ में कांग्रेस के अपरिवर्तनवादी नेताओं ने इस कार्यक्रम का विरोध किया, परन्तु बाद में जब नेहरू और दास ने मिलकर अपनी एक अलग स्वराज्य पार्टी बना ली तो कांग्रेस के दूसरे नेताओं ने भी उसे सहयोग देना आरम्भ कर दिया। इस पार्टी को कौंसिल प्रवेश के कार्यक्रम में भारी सफलता मिली और कई प्रांतों में कांग्रेस के उम्मीदवार जबर्दस्त बहुमत से धारा सभाओं में चुने गये। केन्द्रीय असेम्बली में भी श्री विट्ठल भाई पटेल धारा सभा के अध्यक्ष बन गये।

सन् १९२५ में देशबन्धु श्री चित्तरंजन दास की मृत्यु हो गई और इससे स्वराज्य पार्टी के काम में भारी धक्का लगा। इधर हिन्दू मुसलिम फिसाद बराबर बढ़ते जा रहे थे और देश में ऐसे दलों की लोकप्रियता बढ़ रही थी जिनका आधार सांप्रदायिकता था। सन् १९२६ के कौंसिल के चुनावों में इसलिये स्वराज्य पार्टी को पहले की भाँति सफलता प्राप्त नहीं हुई।

साइमन कमीशन का आगमन—सन् १९२७ में ब्रिटिश सरकार की ओर से शासन संबंधी सुधारों की जाँच-पड़ताल करने के लिये एक श्वेत साइमन कमीशन भारत में आया। इस कमीशन के आगमन पर देश में फिर एक बार राजनीतिक चेतना की लहर दौड़ गई। देश के सभी राजनीतिक दलों ने इस पूर्ण गौरांग कमीशन का बहिष्कार करने का बीड़ा उठाया। हर जगह इस कमीशन के सदस्यों का काले झंडे से स्वागत किया गया। इस समय ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों से कहा कि तुम आपस में मिलकर एक संयुक्त माँग सरकार के सम्मुख रक्खो। अंग्रेज जानते थे कि भारत में हिन्दू और मुसलमान एक होकर काम नहीं कर सकते। इसीलिये उन्होंने भारत की जनता को यह कह कर एक प्रकार की 'ललकार' दी थी।

नेहरू रिपोर्ट—परन्तु कांग्रेस के नेताओं ने ब्रिटिश सरकार की यह ललकार स्वीकार की और लखनऊ में सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया जिसमें पंडित मोतीलाल नेहरू की रिपोर्ट के आधार पर हिन्दू और मुसलमानों ने

मिलकर कुछ संयुक्त माँगें ब्रिटिश सरकार के सम्मुख रक्खीं परन्तु, सदा की भाँति, ब्रिटिश सरकार ने यह सिफारिशें भी स्वीकार न कीं।

पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा—सन् १६२६ में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ। इसके सभापति पंडित जवाहरलाल नेहरू ने ३१ दिसम्बर की अर्द्धरात्रि को इस अधिवेशन में महात्मा गांधी ने कांग्रेस का पूर्ण स्वतंत्रता ध्येय संबंधी वह प्रस्ताव सम्मेलन के सम्मुख रक्खा जिसकी पूर्ति अभी हाल ही में २६ जनवरी, सन् १६५० को हमारे देश में हुई है। इस प्रस्ताव द्वारा ब्रिटिश सरकार से कहा गया कि यदि वह ३१ दिसम्बर तक भारत को स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करेगी तो देश में महात्मा गांधी के नेतृत्व में एक असहयोग आंदोलन आरंभ कर दिया जायगा।

१९३० का असहयोग आन्दोलन—ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की माँग नहीं मानी और ६ अप्रैल, १६३० को महात्मा गाँधी ने सारे देश में 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' आरम्भ कर दिया। जगह-जगह नमक कानून तोड़े गये, मद्रास व पेशावर में गोलियाँ चलीं, अनगिनत स्थानों पर लाठी प्रहार हुए, शोलापुर में मार्शल ला जारी किया गया, कांग्रेस कमेटियाँ गैरकानूनी करार दी गई, एक लाख से अधिक आदमियों ने ब्रिटिश सरकार की जेलें भर दीं, विदेशी कपड़े का बहिष्कार किया गया और जगह-जगह शराब की दुकानों पर पिकेटिंग लगाया गया।

गांधी-इरविन समझौता—इस उग्र आन्दोलन का प्रभाव यह हुआ कि अंग्रेजी सरकार का तख्त हिलने लगा और १६३१ में ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि लार्ड इरविन को गांधी जी से समझौता करना पड़ा। सारे राजनीतिक बन्दी जेलों से मुक्त कर दिये गये और महात्मा गांधी दूसरी गोल मेज सभा में सम्मिलित होने के लिये अगस्त के अंतिम सप्ताह में लंदन के लिये रवाना हो गये।

फिर असहयोग आन्दोलन—परन्तु ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस के साथ समझौता किसी अच्छी नीयत से नहीं किया था। वह तो उसकी एक चाल मात्र थी। समझौते के तुरन्त पश्चात् लार्ड इरविन के स्थान पर एक कट्टरपंथी लार्ड विलिंगडन को वायसराय बना कर भारत भेज दिया गया।

उधर, दूसरी गोल मेज सभा में ब्रिटिश सरकार ने महात्मा गाँधी से कहा 'तुम मुसलमानों के साथ मिल कर धारा सभाओं में सीटों के बँटवारे के सम्बन्ध में आपस में समझौता कर लो, उसके पश्चात् हम तुम्हारे साथ बात करेंगे'। यह समझौता न हो सका; दूसरी गोल मेज सभा से इसलिये महात्मा गाँधी खाली हाथ भारत लौटे। यहाँ आकर उन्होंने देखा कि ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र पूरे वेग से चल रहा है और उनकी अनुपस्थिति में अनेक देश भक्त नेता जेल के सींकचों के पीछे बन्द कर दिये गये हैं। उन्होंने वायसराय से मिलने की प्रार्थना की परन्तु, लार्ड विलिंगडन को तो इंगलैण्ड की टोरी सरकार ने यही कह कर भारत भेजा था कि तुम्हें काँग्रेस को पूर्ण रूप से कुचल डालना है और किसी दशा में भी काँग्रेस के उस जादूगर महात्मा गाँधी से नहीं मिलता है, जो व्यक्तियों पर कुछ ऐसा प्रभाव डालता है कि उसकी बात टाले नहीं टाली जाती। वायसराय ने इसलिये महात्मा गाँधी से मिलने से इंकार कर दिया और इसके बजाय उन्हें गिरफ्तार करके जेल भेज दिया। इसके पश्चात् अत्याचार और दमन का खुला नृत्य रचा जाने लगा। काँग्रेस को गैर कानूनी करार दे दिया गया, देश में आर्डिनेंसों का राज्य लागू कर दिया गया। गिरफ्तार शुदा लोगों पर भारी जुर्माने किये गये और उनकी जायदादें ज़ब्त कर ली गईं। पुत्र के जुर्म पर बाप को जेल भेजा जाने लगा और कितने ही सरकारी नौकरों को उनके सम्बन्धियों द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण नौकरी से अलग कर दिया गया। परन्तु, इस सब दमन चक्र की जबर्दस्त आँधी के चलने पर भी दूसरा 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन" पूरे वेग से चला। विलायती माल का बहिष्कार पहिले से भी अधिक हुआ। 'लगान बन्दी आन्दोलन' ने भी जोर पकड़ा। सन् १९३२ और ३३ में काँग्रेस के गैर कानूनी घोषित होने पर भी उसके वार्षिक अधिवेशन दिल्ली और कलकत्ते की सड़कों पर हुये।

पूना समझौता—अगस्त सन् १९३२ में जब महात्मा गाँधी जेल में बन्द थे तो ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मि० रैमजे मैकडानलड ने अपना सांप्रदायिक निर्णय प्रकाशित कर दिया। इस निर्णय में पृथक निर्वाचन प्रणाली के आधार पर अछूतों को हिंदुओं से अलग करने का प्रयत्न किया गया।

महात्मा गांधी को जिस समय जेल के अन्दर इस निर्णय का पता चला तो उन्होंने हिंदू समाज की एकता को कायम रखने के लिये आमरण व्रत रखने का ऐलान किया। गांधी जी के जीवन को बचाने के लिये हिन्दू और हरिजन नेता पूना में जमा हुए और वहाँ उन्होंने एक ऐसे समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये जिसके द्वारा हरिजन हिन्दू समाज के अन्दर रह कर ही अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें। इसके पश्चात् महात्मा गाँधी ने हिन्दू समाज से 'अस्पृश्यता' का कलंक दूर करने के लिये २१ दिन का एक और व्रत रक्खा। ८ मई १९३३ को वह जेल से मुक्त कर दिये गये और १ वर्ष पश्चात् उन्होंने 'अवज्ञा आन्दोलन' वापिस ले लिया।

फिर कौंसिल प्रवेश—राजनीतिक क्षेत्र में शिथिलता आ जाने से सन् १९२३ की भाँति फिर काँग्रेस ने कौंसिल प्रवेश की ओर ध्यान दिया। उसने केन्द्रीय धारा सभा के चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया। इस चुनाव में उसे अत्यंत सफलता प्राप्त हुई और उसके ४४ सदस्य केन्द्रीय धारा सभा में चुन लिये गये।

काँग्रेस में समाजवादी दल का जन्म—इसी वर्ष काँग्रेस के अन्दर उसके कार्यक्रम में समाजवादी दृष्टिकोण लाने के लिये उसके अन्दर श्री जय प्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव, यूसुफ मेहर अली, डा० लोहिया, अशोक मेहता तथा श्री अच्युत पटवर्धन द्वारा एक समाजवादी दल का संगठन किया गया।

प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रि-मंडलों का निर्माण—सन् १९३५ में ब्रिटिश सरकार ने तीन गोलमेज सभा करने के पश्चात् भारत का नया विधान पास कर दिया। इस विधान के अन्तर्गत केन्द्र में द्वैध शासन प्रणाली का आरम्भ किया गया तथा प्रान्तों में गवर्नरों के हाथ विशेष अधिकार सौंपे गये। सारे देश ने इसलिये इस विधान के विरुद्ध आन्दोलन किया। सन् १९३७ में इस नये विधान के अनुसार प्रान्तों में चुनाव लड़े गये। कांग्रेस ने इन चुनावों में इस दृष्टि से भाग लिया कि कहीं राष्ट्रीय विरोधी शक्तियाँ प्रान्तीय धारा सभाओं में जाकर देश को हानि न पहुँचायें। चुनावों के पश्चात् कांग्रेस ने पाया कि उसे देश के छः प्रान्तों में बहुमत प्राप्त है और शेष प्रान्तों में भी

उसके उम्मीदवार भारी संख्या में चुन गये हैं। आरम्भ में कांग्रेस का यह विचार नहीं था कि वह प्रान्तों में मंत्रिमंडल बनाये परन्तु फिर गवनरों के यह आश्वासन देने पर कि वह मंत्रियों के काम में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करेंगे उसने पहले छः और फिर आठ प्रान्तों में अपने मंत्रिमंडल बनाये। इन मंत्रिमंडलों ने देश की आर्थिक तथा सामाजिक दशा को सुधारने के लिये अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया।

द्वितीय महायुद्ध का आरम्भ—परन्तु सितम्बर सन् १६३६ में संसार में द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया। इस युद्ध में ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस मंत्रिमंडलों की सलाह लिये बिना ही भारत को युद्ध की अग्नि में झोंक दिया। इस पर कांग्रेस के सभी मंत्रियों ने अपने पदों से त्यागपत्र दे दिये और नवम्बर सन् १६४० में कांग्रेस ने 'वैयक्तिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन' आरम्भ कर दिया। इस आन्दोलन का उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश सरकार को मालूम हो जाय कि कांग्रेस लड़ाई में उसके साथ नहीं है।

क्रिप्स आगमन—मार्च सन् १६४१ में सर स्टैफोर्ड क्रिप्स कुछ सुधार सम्बन्धी योजनाओं के साथ भारत आये। कांग्रेस ने यह सुझाव स्वीकार नहीं किये।

१९४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन—क्रिप्स मिशन के पश्चात् देश में राजनीतिक असंतोष इतना बढ़ गया था कि सन् १६४२ में कांग्रेस ने फिर ब्रिटिश सरकार से टक्कर लेने की ठानी। बम्बई के अधिवेशन में उसने अपना प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' आन्दोलन और 'करो या मरो' प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव के पास होने के तुरन्त पश्चात् हमारे देश में सरकार की ओर से जो नृशंस एवं, अमानुषिक, हिंसा और अत्याचार का ताँडव नृत्य रचा गया वह कल की कहानी है। इस आन्दोलन में ६०,२२६ व्यक्तियों को जेल भेजा गया, १८,००० आदमियों को बिना मुकदमे 'भारत रक्षा कानून' के आधीन नजरबन्द किया गया, २५७० व्यक्तियों को गोलियों का शिकार बनाया गया, ५३८ अफसरों पर पुलिस ने गोलियाँ चलाईं, ६० स्थानों पर फौजी शासन कायम किया गया, कुछ स्थानों पर हवाई जहाजों से भी बम गिराये गये, देश के प्रायः सभी राष्ट्रवादी पत्रों को बन्द कर दिया गया, कांग्रेस

वर्किङ्ग कमेटी के सदस्यों को अहमदनगर जेल में बन्द कर दिया गया और महात्मा गांधी को आगा खाँ महल में नजरबन्द रक्खा गया।

गांधी जी का व्रत—महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार के अत्याचार-पूर्ण दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के लिये आगा खाँ जेल में २१ दिन का व्रत करने की घोषणा की। इस व्रत द्वारा महात्मा जी यह सिद्ध करना चाहते थे कि कांग्रेस अहिंसात्मक सिद्धान्तों में विश्वास रखती है और अगस्त सन् १९४२ के पश्चात् होने वाले उपद्रवों की सारी जिम्मेदारी सरकार की उत्तेजनात्मक नीति पर है। जिस समय भारतीय जनता को गांधी जी के इस निश्चय का पता चला तो देश के कोने-कोने से वायसराय से प्रार्थना की जाने लगी कि वह गांधी जी को छोड़ दें। वायसराय की कौंसिल के तीन सदस्यों ने भी सरकार पर दबाव डालने के लिये अपने पद से त्याग पत्र दे दिया। परन्तु ब्रिटिश सरकार टस से मस न हुई और ईश्वर ने ही भारतवासियों के भाग्य पर कृपा करके महात्मा गांधी के प्राण बचाये।

बंगाल का भीषण दुर्भिक्ष—सन् १९४३ के अन्त में भारत के बंगाल प्रांत में एक भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। यह दुर्भिक्ष अनाज की कमी से इतना नहीं जितना सरकारी कुप्रबन्ध के कारण पड़ा। इस दुर्भिक्ष में बंगाल की ३०,००,००० जनता ने अपने प्राण गंवाये। कलकत्ते की गली गली में इन दिनों अस्थि और हड्डियों के नर पिंजर देखने को मिल सकते थे, जिन पर कुत्ते और जंगली जानवर अपनी क्षुधा शान्त करते थे। यह नारकीय दृश्य उस समय दृष्टिगोचर होता था जब उसी स्थान के बड़े बड़े होटलों, महलों तथा धनिकों के प्रासादों में बड़ी बड़ी दावतें, नाच और रंगेलियाँ मनाई जाती थीं और नीचे सड़कों पर भूख और प्यास से पीड़ित चलते फिरते हड्डियों के ढाँचे अन्न के एक एक दाने की तलाश में कूड़ों के ढेर और सड़क पर पड़े हुए गन्दगी के ड्रमों की घंटों तलाश करते रहते थे। यह दुर्भिक्ष ईश्वर कृत नहीं वरन् मनुष्य कृत था। इस दुर्भिक्ष के कारण जनता को पता चल गया कि ब्रिटिश सरकार कितनी निकम्मी है और उसकी दृष्टि में भारतीयों के जीवन का क्या मूल्य है।

लार्ड वेवेल का आगमन—सन् १९४४ में लार्ड लिनलिथगो के स्थान

पर लार्ड वेवेल वायसराय नियुक्त होकर भारत आये। लार्ड वेवेल ने आकर तुरन्त ही दुर्भिक्ष की समस्या को सुलझाने के लिये कड़ा प्रयत्न किया। मई सन् १६४४ में उन्होंने गांधी जी को जेल से मुक्त कर दिया। जेल से रिहाई के तुरन्त पश्चात् महात्मा गांधी ने मि० जिन्ना से मिल कर हिन्दू-मुस्लिम समझौते के लिये प्रयत्न किया, परन्तु यह वार्ता सफल न हो सकी।

वेवेल सुझाव—मार्च सन् १६४४ में लार्ड वेवेल भारत के राजनीतिक अवरोध का दूर करने के लिये ब्रिटिश सरकार से बातचीत करने इंगलैंड गये। वह जून में भारत लौटे और तुरन्त ही उन्होंने भारत के राजनीतिक नेताओं से प्रार्थना की कि वह उनकी कार्यकारिणी में सम्मिलित हो जायँ। अपने सुझाव में लार्ड वेवेल ने कहा कि वह अपनी कौंसिल में कांग्रेस को ६ और मुस्लिम लीग को ५ सीटें देने के लिये तैयार हैं। कांग्रेस इस सुझाव को मानने के लिये तैयार थी परन्तु मुस्लिम लीग के नेता इस बात पर अड़ गये कि कांग्रेस किसी राष्ट्रवादी मुसलमान को वायसराय की कौंसिल में मनोनीत न करे। यह बात कांग्रेस को अमान्य थी, कारण, वह सदा से ही देश के सभी धर्मावलंबियों तथा हितों की संस्था रही थी। वह केवल हिन्दू प्रतिनिधियों को वायसराय की कौंसिल में नामजद करके अपने आपको हिंदू संस्था घोषित नहीं करना चाहती थी। परिणाम यह हुआ कि लार्ड वेवेल की योजना असफल रही और राजनीतिक दलों के नेता वायसराय की कार्यकारिणी में सम्मिलित नहीं हुए।

आम चुनाव—इसके तुरन्त पश्चात् देश की प्रांतीय तथा केन्द्रीय धारा सभाओं के लिये चुनाव लड़े गये। इन चुनावों में प्रायः सभी हिन्दू सीटों पर कांग्रेस को विजय प्राप्त हुई। सीमा प्रांत, पंजाब तथा यू० पी० में बहुत सी मुस्लिम सीटें भी कांग्रेस के हाथ लगी। परन्तु मुसलमानी निर्वाचन क्षेत्रों में अधिकतर विजय मुस्लिम लीग को ही हुई। चुनावों के पश्चात कांग्रेस ने ८ प्रांतों में अपने मंत्रिमंडल बनाये। पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी के सहयोग से एक मिला जुला मंत्रिमंडल बनाया गया। मुस्लिम लीग केवल सिंध और बंगाल में ही अपने मंत्रिमंडल बना सकी।

इंगलैंड में आम चुनाव—जिस समय भारत में आम चुनाव हो रहे थे तो इंगलैंड में भी पार्लियामेंट को तोड़ कर चुनावों की घोषणा की गई। इन

चुनावों में चर्चिल की अनुदार सरकार हार गई और इसके स्थान पर मि० एटली के नेतृत्व में मजदूर दल की सरकार बनी। मजदूर दल के नेता सदा से ही कांग्रेस के स्वतन्त्रता संग्राम के पक्षपाती रहे थे। मि० एटली ने इसलिये सरकार का कार्य भार सँभालने के तुरंत पश्चात भारत में राजनीतिक अवरोध को दूर करने के लिये एक रचनात्मक कार्रवाई की। आरंभ में उन्होंने दिसम्बर सन् १६४५ में एक शिष्ट मंडल भारत भेजा और उसके थोड़े दिन पश्चात् एक मन्त्री प्रतिनिधि मंडल भारत आया। इस प्रतिनिधि मंडल के सदस्य लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टैफोर्ड क्रिप्स तथा मि० अलेक्जेंडर थे। प्रतिनिधि मंडल ने भारत आकर राजनीतिक नेताओं से समझौते की बातचीत की। उन्होंने मुस्लिम लीग को समझाया कि पाकिस्तान की माँग अव्यावहारिक है। अपने १६ मई, १६४६ के बयान में भी उन्होंने यही बात दुहराई। उन्होंने कहा कि कांग्रेस तथा लीग को मिल कर भारत में एक ऐसी सरकार की स्थापना करनी चाहिये जिसके अन्तर्गत प्रांत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हों और केन्द्रीय सरकार को उनके ऊपर केवल विदेशी नीति, रक्षा तथा यातायात संबन्धी अधिकार प्राप्त हों। प्रतिनिधि मंडल ने वायसराय की कौंसिल में भी परिवर्तन करने की बात कही। कांग्रेस कैबिनेट मिशन को यह बातें मानने को बहुत कुछ तैयार हो गई परन्तु मुस्लिम लीग पाकिस्तान की माँग पर अड़ी रही।

संविधान सभा के चुनाव—नवम्बर सन् १६४६ में प्रतिनिधि मंडल की योजना के अन्तर्गत भारत की संविधान सभा के लिये चुनाव किये गये। इन चुनावों में कांग्रेस को २०५, तथा मुस्लिम लीग को केवल ७३ सीटें मिलीं। परन्तु चुनाव लड़ने के पश्चात् भी मुस्लिम लीग के नेताओं ने संविधान सभा में भाग लेने से इन्कार कर दिया और उसने ब्रिटिश सरकार के सम्मुख यह माँग रक्खी कि भारत तथा पाकिस्तान के लिये दो अलग-अलग संविधान सभाएँ बनाई जाँय।

अन्तरिम सरकार में कांग्रेस का सहयोग—चुनाव के पश्चात् ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास हो गया कि कांग्रेस ही भारत की सबसे शक्तिशाली संस्था है। इसलिये वायसराय ने कांग्रेस के प्रधान पंडित, जवाहरलाल नेहरू से प्रार्थना की कि वह उनकी अन्तरिम सरकार बनाने में सहायता करें।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने यह सरकार २ सितम्बर, १९४६ को बना ली। इसके कुछ दिन पश्चात् खीझे हुए मुस्लिम लीग के ५ सदस्य भी इस सरकार में सम्मिलित हो गये। परन्तु, इन सदस्यों ने सरकार में आकर उसके काम में सहयोग देने के बजाय हर जगह रोड़े अटकाने शुरू कर दिये।

लार्ड माउन्टबैटन का आगमन—मार्च सन् १९४७ में लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड माउन्टबैटन गवर्नर जनरल बन कर भारत आये। उन्होंने आते ही देश में की वास्तविक स्थिति का अध्ययन किया और कांग्रेस के नेताओं को समझाया कि देश में शांति बनाये रखने के लिये बँटवारे के अतिरिक्त दूसरा चारा नहीं है। परिस्थिति से बाध्य होकर कांग्रेस को लार्ड माउंटबैटन का यह सुझाव स्वीकार करना पड़ा और ३ जून, १९४७ को भारत के सब राजनीतिक दलों ने देश के विभाजन की योजना स्वीकार कर ली।

ध्येय-प्राप्ति—१५ अगस्त, १९४७ को यह योजना कार्यान्वित हुई और उसी दिन, २०० वर्ष की घोर परतन्त्रता के पश्चात्, भारत स्वतंत्र हो गया, और इस प्रकार कांग्रेस का ध्येय पूरा हो गया।

आज की कांग्रेस

आजकल कांग्रेस के सदस्यों की संख्या लगभग ३ करोड़ है। कांग्रेस के प्रधान श्री पुरुषोत्तमदास टंडन हैं। उनकी कार्यकारिणी के २० सदस्य हैं। उनके नीचे २२ प्रान्तों में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ कार्य करती हैं। नये विधान के अन्तर्गत कांग्रेस में तीन प्रकार के सदस्य हैं:—(१) प्रारम्भिक सदस्य, (Primary Members) (२). योग्य सदस्य (Qualified Members) (३) कर्मठ सदस्य (Active Members)।

कांग्रेस का प्रारम्भिक सदस्य देश का वह प्रत्येक व्यक्ति बन सकता है जिसकी आयु २१ वर्ष से अधिक हो तथा जो कांग्रेस के ध्येय में विश्वास रखता हो। योग्य सदस्य केवल वह व्यक्ति बन सकते हैं जो आदतन खादी पहनते हों, मादक द्रव्यों का उपयोग न करते हों तथा जो सब धर्मों की एकता में विश्वास रखते हों। 'कर्मठ' सदस्य केवल वह व्यक्ति बन सकते हैं जो कांग्रेस द्वारा निर्धारित किसी राष्ट्रीय या रचनात्मक कार्य में नियमित रूप से अपना कुछ समय लगाते हों।

१८ फरवरी, १६५० को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का एक विशेष अधिवेशन दिल्ली में हुआ। इस अधिवेशन में यह निश्चय किया गया कि कांग्रेस के केवल कर्मठ सदस्य ही कांग्रेस कमेटियों में भाग ले सकेंगे, दूसरे प्रकार के सदस्य नहीं। कांग्रेस के विधान में यह संशोधन इस कारण से किया गया कि कांग्रेस के लगभग ३ करोड़ सदस्यों में से २ करोड़ सदस्यों को धोखा-धड़ी से, कांग्रेस कमेटियों पर कब्जा करने के लिये, योग्य सदस्य बना लिया गया था।

आजकल कांग्रेस की आन्तरिक अवस्था अधिक अच्छी नहीं है। धीरे-धीरे जनता का कांग्रेस के नेताओं से विश्वास उठता चला जा रहा है। इसका मुख्य कारण यही है कि कांग्रेस के सदस्यों का नैतिक चरित्र बहुत गिर गया है और वह महात्मा गांधी की जय तो बोलते हैं, खद्दर भी पहिनते हैं और टेढ़ी टोपी भी लगाते हैं पर वास्तव में वह उस महान् आत्मा के आदर्शों को भूल गये हैं। यदि जनता के हृदय में अब भी कांग्रेस के प्रति कुछ श्रद्धा बाकी है तो इसका मुख्य कारण हमारे देश के नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू हैं, जिनका व्यक्तित्व इतना महान् तथा जिनकी देश के प्रति इतनी सेवाएं हैं कि जनता उनका अहसान आसानी से नहीं भूल सकती। परन्तु संस्था के रूप में कांग्रेस का भविष्य उसके नेताओं के प्रभाव के सहारे उज्ज्वल नहीं रह सकता, वह कांग्रेस के प्रत्येक साधारण सदस्य के नैतिक चरित्र पर ही निर्भर रह सकता है। इसलिये कांग्रेस जनों को चाहिये कि वह अपने नैतिक चरित्र को ऊँचा उठाने का सतत प्रयत्न करें।

कांग्रेस में सर्वव्यापी भ्रष्टाचार को देखकर ही आज इस महान संस्था के टुकड़े होने लगे हैं। आचार्य कृपलानी ने कांग्रेस से अलग होकर एक दूसरी किसान, मजदूर, प्रजा पार्टी बना ली है। अनेक प्रतिष्ठित कांग्रेस नेताओं जैसे श्री प्रकाशम, रंगा, घोष, शिब्बनलाल सक्सैना, महामायाप्रसाद इत्यादि ने इस नये दल में सम्मलित होना स्वीकार कर लिया है। यदि कांग्रेस में अब भी सुधार न हुआ तो इसका शीघ्र पतन अवश्यंभावी है।

समाजवादी दल

कांग्रेस के पश्चात् हमारे देश में दूसरी राजनैतिक संस्था जिसका प्रभाव

जनता पर धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है समाजवादी दल है। मार्च सन् १६४८ से पहिले जब तक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों के प्रधान तथा मन्त्रियों के एक सम्मेलन ने अपनी एलाहाबाद की बैठक में यह निश्चय नहीं कर लिया था कि राष्ट्रीय महासभा के अन्तर्गत किसी ऐसे दल का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता जिसके अपने अलग सदस्य, कोष तथा उद्देश्य हों, यह संस्था कांग्रेस के अन्दर ही रहकर एक अलग 'ग्रूप' के रूप में काम करती थी। परन्तु मई सन् १६४६ में अपने पटने अधिवेशन के पश्चात उससे अलग हो गई।

भारत का समाजवादी दल जनतन्त्रात्मक, समाजवाद में विश्वास रखता है। वह ऐसे साम्यवाद का हामी नहीं जिसमें जनता पर एक निरंकुश शासन लाद दिया जाय। उसका ध्येय है कि किसानों को जमीन दी जाय और उनको पंचायतों के रूप में संगठित किया जाय। उद्योग के क्षेत्र में वह राष्ट्रीयकरण की नीति में विश्वास रखता है। राष्ट्र मंडल के साथ भारत के सम्बन्ध के विषय में उसका विश्वास है कि हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र औपनिवेशिक स्थिति स्वीकार नहीं करनी चाहिये।

सर्व प्रथम कांग्रेस के अन्दर समाजवादी दल का निर्माण सन् १६३४ में हुआ था। इससे पहिले इस दल की नींव नासिक जेल में उस समय रक्खी गई थी जब १६३० के सत्याग्रह आन्दोलन के फलस्वरूप श्री जय प्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन तथा अशोक मेहता उस जेल में बन्द थे। वहाँ उन्होंने सर्व प्रथम इस दल को बनाने का निश्चय किया था।

आजकल इस दल के नेताओं में, उनके अतिरिक्त जो नासिक जेल में थे, आचार्य नरेन्द्र देव, डा० राम मनोहर लोहिया, तथा श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय हैं। आजकल इसके सदस्यों की संख्या लगभग १०,००० बताई जाती है। इस दल के अपने २२ साप्ताहिक पत्र हैं जिनमें 'जनता' मुख्य है। इस दल का विशेष प्रभाव बाम्बे प्रांत में है। दूसरे प्रांतों के किसानों तथा मजदूरों में भी इसका प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

दूसरे वामपक्षी दल

समाजवादी दल के अतिरिक्त हमारे देश में कुछ और छोटे मोटे राज-

नीतिक दल भी हैं जो एक आर्थिक कार्यक्रम में विश्वास रखते हैं तथा जो किसानों और मजदूरों के क्षेत्र में विशेष रूप से कार्य करते हैं। इन दलों में कम्युनिस्ट पार्टी, श्री शरत्चन्द्र बोस की सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी, फारवर्ड ब्लाक, किसान सभा, तथा पंजाब की देशसेवक पार्टी मुख्य है। इन दलों में कम्यूनिस्ट दल का संगठन सबसे अच्छा है। हमारे देश की अनेक ट्रेड यूनियन संस्थाओं पर इस पार्टी का प्रभुत्व है। कुछ काल से इस पार्टी के नेताओं ने तोड़फोड़ तथा हिंसा का मार्ग अपनाया है और इस कारण यह जनता में बहुत बदनाम हो गई है। कुछ प्रांतों में इसे अवैध भी घोषित कर दिया गया था।

सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी का मुख्य प्रभाव बंगाल प्रांत में ही सीमित है। आजाद हिंद फौज के लोग इस पार्टी में अधिक आस्था रखते हैं।

किसान सभा का प्रभाव अधिकतर महाराष्ट्र तथा मद्रास प्रांत तक सीमित है। दूसरे प्रांतों में इस दल की शाखाएँ भी नहीं खोली गई हैं।

मुसलिम लीग

मुस्लिम लीग का जन्म जैसा हम कांग्रेस के इतिहास में देख चुके हैं सन् १६०६ में हुआ था। इस संस्था के जन्म के पीछे अंग्रेजों का स्पष्ट हाथ था और जब तक भारतवर्ष के दो टुकड़े नहीं हो गये इसके नेता सदा प्रतिक्रियावादी, अंग्रेजों के हाथों में खेलते रहे। आरंभ में इस संस्था का मुख्य ध्येय मुसलमानों में ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित करना था, परन्तु सन् १६१३ में इसने अपना उद्देश्य बदल कर औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति बना लिया। इसके पश्चात कांग्रेस और लीग ने मिल कर कार्य किया। १६१६ में दोनों संस्थाओं में एक प्रकार का समझौता भी हो गया, परन्तु यह मैत्री अधिक समय तक कायम न रह सकी। लीग का शक्तिशाली संगठन, मि० जिन्ना द्वारा, सन् १६३७ के आम चुनावों के पश्चात किया गया। उससे पहिले लीग केवल कुछ पढ़े-लिखे मध्यम श्रेणी के मुसलमानों की संस्था थी परन्तु इन चुनावों के तुरन्त पश्चात् मुस्लिम लीग की हर प्रान्त और नगर में शाखाएं खोल दी गईं। इसके कार्य को सबसे अधिक प्रोत्साहन अंग्रेजों की हिंदू विरोधी नीति से मिला। मुस्लिम लीग के नेताओं ने अंग्रेजों

से शह पाकर हिंदुओं के विरुद्ध जहर उगलना तथा कांग्रेस को भला बुरा कहना अपना ध्येय बना लिया। लीग ने कभी भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम में सहयोग नहीं दिया, इसके नेता कभी जेलों में नहीं गये, उसने किसी सार्वजनिक आन्दोलन का नेतृत्व नहीं किया। उसने केवल एक कार्य किया और वह था कांग्रेस की प्रत्येक स्वतन्त्रता संबंधी माँग के विरुद्ध मोर्चा खड़ा करना और अंग्रेजों से कहना कि "भारत को उस समय तक स्वतन्त्र न किया जाय जब तक मुसलमानों को एक अलग राष्ट्र मान कर उनके लिये एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना न कर दी जाय।" अंग्रेज तो चाहते ही थे कि भारतवासियों की स्वतन्त्रता संबंधी माँग के पूरा होने में जितना विलंब लगे उतना ही अच्छा है। स्वभावतया उसने मुस्लिम लीग का खुल्लमखुल्ला साथ दिया और अन्त में यह कह कर कि देश में शांति बनाये रखने के लिये कोई दूसरा चारा नहीं है भारत के दो टुकड़े कर दिये।

पाकिस्तान के बन जाने के पश्चात् मुस्लिम लीग का प्रभाव हमारे देश से कम हो गया है, कारण इसके प्रायः सभी नेता पाकिस्तान चले गये हैं और १५ अगस्त सन् १९४७ के पश्चात भारत में जो देशव्यापी सांप्रदायिक झगड़े हुये, जिनके कारण लाखों स्त्री और पुरुषों की निर्मम हत्या की गई, करोड़ों रुपये की संपत्ति नष्ट हुई, नव जवान लड़कियों के साथ व्यभिचार किया गया, स्त्रियों और बच्चों को भगाया गया, उसकी सारी जिम्मेदारी मुस्लिम लीग के सिर पर रक्खी गई। इस सब हत्याकाँड के पश्चात् भारत की जनता को आशा थी कि हिंदुस्तान के मुसलमान अब 'लीग' का नाम न लेंगे और इस संस्था को स्वतः तोड़ देंगे। परन्तु आज भी हमारे देश में अनेक ऐसे मुसलमान हैं जिनकी मनोवृत्ति पहले की भाँति साम्प्रदायिक है और जो इस असांप्रदायिक राष्ट्र में भी लीग के ढाँचे को पहले के समान ही बनाये रखना चाहते हैं। परन्तु विदित है कि अब अधिक दिनों तक ऐसे लोग अपने लक्ष्य में सफल न हो सकेंगे और गणतंत्रीय धर्म निर्पेक्ष भारत में यह संस्था अधिक दिन तक जीवित न रह सकेगी।

मुसलमानों की दूसरी संस्थायें

लीग के अतिरिक्त मुसलमानों की दूसरी संस्थाओं में जमीयत-उल-उल्माए

हिंद, शिया राजनीतिक सम्मेलन, मोमिन पार्टी तथा अहरार पार्टी के नाम मुख्य हैं। मुस्लिम लीग की प्रभुता के काल में इनके सदस्यों की संख्या बहुत थोड़ी थी और मुस्लिम जनता पर इनका प्रभाव अत्यंत सीमित था। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् मुसलमानों की इन संस्थाओं का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। इन संस्थाओं में अधिकतर जमीयत-उल्-उलेमाए हिंद, मौलाना आजाद, हफीजुर्रमान और हुसैन अहमद मदनी के नेतृत्व के कारण अधिक लोक-प्रिय है। अपने लखनऊ के मार्च सन् १९४९ के अधिवेशन में जमीयत ने यह निश्चय किया कि वह राजनीति में भाग न लेगी और उसका एकमात्र कार्य मुसलमानों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक उन्नति करना होगा।

सिखों के राजनैतिक दल

सिक्खों में मुख्यता तीन विचार धाराओं के लोग पाये जाते हैं, एक वह जो पूर्णरूप से राष्ट्रवादी दृष्टिकोण रखते हैं और कांग्रेस के साथ मिलकर भारत में एक जनसत्तात्मक असाँप्रदायिक राज्य की स्थापना करना चाहते हैं। इस विचार के नेताओं में बाबा खड़ग सिंह, सरदार प्रताप सिंह तथा ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर हैं। दूसरे, वह लोग हैं जो इस विचार के बिलकुल विपरीत सिक्खों के लिये भारत में एक अलग राज्य की स्थापना करना चाहते हैं। इन लोगों के विचार से सिक्ख हिंदुओं से अलग एक धार्मिक जाति है जिनका एक अलग इतिहास, संस्कृति तथा भाषा है। इन हितों की रक्षा के लिए वह भारत में एक अलग सिख प्रान्त की माँग करते हैं। इस विचार धारा के लोगों को 'अकाली' भी कहा जाता है। इनके नेता मास्टर तारा सिंह तथा ज्ञानी करतार सिंह हैं। तीसरे, सिखों में वह लोग हैं जो इन दोनों विचार-धाराओं के बीच के मार्ग का अवलंबन करते हैं। वह सिखों के लिए किसी अलग राज्य अथवा प्रान्त की माँग तो नहीं करते परन्तु वह सिख पथ की एकता बनाये रखने के लिए कांग्रेस से कुछ विशेष अधिकारों की प्राप्ति चाहते हैं। इस दल के नेताओं में सरदार ऊधम सिंह नगोके तथा महाराजा पटियाला हैं। नये विधान के अन्तर्गत सिखों की पिछड़ी हुई जातियों को छोड़ कर जिनमें रामदासी तथा कबीर पंथी सिख शामिल हैं शेष सिखों के लिए धारा सभाओं अथवा नौकरियों में सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था नहीं की गई

है। इसलिये आशा है कि शीघ्र ही साँप्रदायिकता का भूत सिखों के बीच से नष्ट हो जायगा तथा मा० तारा सिंह का अकाली दल अधिक समय तक सिखों का पथ भ्रष्ट न कर सकेगा।

हिन्दू सभा

हमारे देश के हिंदुओं में वैसे तो साम्प्रदायिकता की भावना बहुत कम है अधिकतर हिंदू राष्ट्रवादी विचार-धारा के ही पाये जाते हैं, परंतु २८ करोड़ की जनसंख्या में कुछ ऐसे हिंदू भी अवश्य हैं जो भारत में एक हिंदू राज्य की स्थापना का स्वप्न पूरा होता देखना चाहते हैं। ऐसे हिंदुओं ने हमारे देश में हिंदू महासभा की संस्था को स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी एक राजनीतिक संस्था के रूप में जीवित रक्खा है। इस संस्था का अस्तित्व उस समय तो समझ में आता था जब हमारा देश गुलाम था और मुसलमानों के आक्रमण के विरुद्ध हिंदुओं की रक्षा करने के लिये इस प्रकार की संस्था की नितान्त आवश्यकता थी। इसी दृष्टि से हिंदू महासभा के जन्मदाता हमारे राष्ट्रीय नेता लाला लाजपत राय तथा पंडित मदनमोहन मालवीय थे। उन्होंने सन् १९२३ में हिंदुओं का संगठन करने तथा हिंदू धर्म से सामाजिक कुरीतियों का विनाश करने के लिये इस संस्था को जन्म दिया। परन्तु आरंभ से ही यह संस्था कुछ ऐसे प्रतिक्रियावादी नेताओं के हाथ में रही है जिन्होंने इसके द्वारा अपनी राजनीतिक आकाँक्षाओं को पूर्ण करना चाहा है और सुधार तथा संगठन के कार्य के बजाय 'हिंदू धर्म खतरे में' का नारा लगा कर समाज की पिछड़ी हुई धर्मान्ध जनता की सहानुभूति प्राप्त करनी चाही है। इसी कारण यह संस्था हमारे देश के स्वतंत्रता संग्राम के काल में कांग्रेस के साथ मिलकर नहीं चली वरन् सदा राष्ट्रवादी शक्तियों का विरोध करती रही।

महात्मा गांधी की मृत्यु के पश्चात् कुछ काल के लिये हिंदू महासभा ने राजनीतिक के क्षेत्र से अलग रहने की नीति को अपना लिया था। परन्तु सितम्बर सन् १९४९ के अपने कलकत्ते के अधिवेशन में उसने फिर यह घोषणा कर दी कि वह सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेगी और आने वाले चुनाओं में अपने उम्मीदवार खड़ा करेगी। इस संस्था के वर्तमान नेताओं में वीर सावरकर, डा० खरे, मि० भोपतकर, आशुतोष लाहिड़ी, एन० सी० चटर्जी तथा सर गोकलचन्द नारंग के नाम मुख्य हैं।

लिबरल पार्टी

भारत के राजनीति क्षेत्र में एक और छोटी सी संस्था है जिनके नेतागण तो बहुत हैं परन्तु जिसके जनता में अनुयायी बहुत कम है। इस संस्था का नाम "नैशनल लिबरल फेडरेशन" है। इसके नेताओं में पं० हृदयनाथ कुञ्जरू, मि० चिमनलाल सीतलवाद, कावसजी जहाँगीर, सर महाराज सिंह, रामस्वामी मुदालियर, तथा सर अल्लादि कृष्णस्वामी अय्यर मुख्य हैं। यह सब नेता समाज के अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। अपने अनुभव, बुद्धि चमत्कार तथा गूढ़ अध्ययन के कारण इनकी सारे देश में मान्यता है। कांग्रेस ने भी इन नेताओं का सहयोग प्राप्त करने के लिये संविधान सभा के चुनाओं में इनमें से अनेक व्यक्तियों को नामजद किया था। भारत का संविधान बनाने में नेताओं ने काफी भाग लिया। परन्तु जिस नरम विचारधारा का यह लोग प्रतिनिधित्व करते हैं उसके आज हमारे देश में अधिक अनुयायी नहीं हैं। भारत की भूख और प्यास से पीड़ित कोटि-कोटि जनता आज देश में एक आर्थिक क्रान्ति चाहती है। इसलिये वह कांग्रेस तथा वामपक्षी संस्थाओं का साथ देती है। 'लिबरल पार्टी' की विकासवादी योजना पर कार्य करने के लिये आज के वातावरण में हमारे देश की जनता तैयार नहीं है। यही कारण है कि लिबरल नेताओं का व्यक्तिगत दृष्टि से अत्यन्त मान होने पर भी उनकी संख्या के लिये अभी हमारे देश में कोई स्थान नहीं है।

किसान-मजदूर प्रजा पार्टी

इस पार्टी का जन्म, अभी कुछ काल पहले जून सन् १९५१ में, पटने में हुआ। इस दल में कांग्रेस की वर्तमान नीति से असंतुष्ट वह सब पुराने कांग्रेस कार्यकर्ता सम्मिलित हैं जो गांधीवादी विचारधारा के आधार पर, सर्वोदय योजना के आधीन देश का संगठन करना चाहते हैं। इस दल के नेताओं का कहना है कि कांग्रेस में इतना भ्रष्टाचार फैला हुआ है तथा उसमें ऐसे लोगों का आधिपत्य है जो अनुचित उपायों से भी इस संस्था पर अपना प्रभुत्व जमाए रखना चाहते हैं। प्रजा पार्टी तथा कांग्रेस के कार्यक्रम में विशेष अन्तर नहीं है। प्रजा पार्टी का कहना है कि वह देश के शासन में ईमानदारी तथा राजनीति में प्रजातंत्रात्मक दृष्टिकोण को लाना चाहते हैं। आर्थिक

क्षेत्र में वह भूमि और बड़े कारखानों के राष्ट्रीयकरण की नीति में विश्वास करते हैं तथा औद्योगिक क्षेत्र में महात्मा गांधी की योजना के अनुसार देश भर में छोटे-छोटे घरेलू उद्योग धन्धों का जाल बिछा देना चाहते हैं। इस दल के नेताओं में आचार्य कृपलानी, घोष, प्रकाशम तथा रफीअहमद किदवई के नाम अधिक उल्लेखनीय हैं।

भारतीय जनसंघ

इस दल का जन्म भी सन् १६५१ में ही हुआ। यह दल राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से संबन्धित है तथा भारतीय संस्कृति के आधार पर राष्ट्र का संगठन करना चाहता है। इस दल के नेताओं में डाक्टर श्यामप्रसाद मुकर्जी, जमनादास महता, मौतीचन्द्र शर्मा तथा बलराज मधोक के नाम उल्लेखनीय हैं।

योग्यता प्रश्न

(१) पश्चिमी शिक्षा ने भारत में राजनैतिक जाग्रति उत्पन्न करने में क्या कार्य किया ? (यू० पी० १९३०)

(२) यह कहाँ तक सच है कि धार्मिक आंदोलन ने भारत में राष्ट्रीय जाग्रति की नींव डाली। (यू० पी० १९३४)

(३) उन्नीसवीं शताब्दी में, भारत में, राष्ट्रीय जाग्रति के क्या विभिन्न कारण थे। (यू० पी० १९३८)

(४) भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास लिखो। (यू० पी० १९३९)

(५) १९०९ से १९३५ तक देश में कांग्रेस की क्या नीति थी ? इस पर प्रकाश डालिये। (यू० पी० १९४०)

(६) कांग्रेस के क्या उद्देश्य हैं ? वह उद्देश्य किस प्रकार पूरे किये जाते हैं ? (यू० पी० १९४६)

(७) भारत की मुख्य राजनैतिक पार्टियों का कार्यक्रम तथा उद्देश्य समझाइये। (यू० पी० १९३८)

(८) पिछले कुछ दिनों भारत में कौन से नये राजनैतिक दल बने हैं ? उनके कार्यक्रम तथा उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये।

(९) कांग्रेस दल में फूट के क्या कारण हैं ?

(१०) नये दलों के जन्म से भारत की स्वतन्त्रता को खतरा है ? क्या यह कथन सत्य है ?

अध्याय १६

हमारा आर्थिक जीवन

किसी देश की जनता के नागरिक जीवन पर उसकी आर्थिक स्थिति का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। कोई भी व्यक्ति उस समय तक एक सभ्य तथा समुन्नत जीवन व्यतीत नहीं कर सकता जब तक उसकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये समुचित आय का प्रबंध न हो। निर्धन, बेकार तथा रोटी की समस्या से त्रस्त लोग न केवल वैयक्तिक दृष्टि से ही एक अच्छे सामाजिक जीवन व्यतीत करने के अयोग्य होते हैं वरन् वह समाज की शान्ति तथा स्थिरता के लिये भी एक खतरा बन जाते हैं। प्रायः ऐसे ही लोगों की श्रेणी में से हमारी समाज के अधिकतर शत्रु—चोर, डाकू, लुटेरे, जालसाज, धोकेबाज, हत्यारे इत्यादि—भरती होते हैं। वह सामाजिक संगठन अथवा उसके नियमों का विचार किये बिना ही चाँदी के कुछ थोड़े से टुकड़ों के लोभ से नीच से नीच काम करने पर उतारू हो जाते हैं। इस प्रकार विदित है कि समाज की शान्ति तथा प्रगति और नागरिक जीवन की अच्छाई के लिये आर्थिक साधनों की प्रचुरता तथा उनका उचित विभाजन नितान्त आवश्यक है।

हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं कि भारतीयों के नागरिक जीवन का स्तर अत्यंत नीच कोटि का है। हमारे सामाजिक जीवन में अनेक कुरीतियाँ—अन्ध विश्वास, अविद्या, साम्प्रदायिकता की भावना, आडम्बरवाद, व्यर्थ के रीति-रिवाज—घर कर गये हैं। इन सब बुराइयों के दो मुख्य कारण हमारी अशिक्षितता तथा निर्धनता हैं। निर्धनता के कारण न हम अपने बच्चों को शिक्षित बना सकते हैं, न अपने रहन-सहन के स्तर को ऊँचा कर सकते हैं। न एक सभ्य तथा सुसंस्कृत जीवन व्यतीत कर सकते हैं और न ही समाज

के सभ्य तथा शिक्षित लोगों की श्रेणी में बैठ कर उनकी अच्छी आदतों को ग्रहण कर सकते हैं।

इस अध्याय में इसलिये हम उन कारणों पर प्रकाश डालेंगे जिनसे हमारा आर्थिक जीवन इतना असंतोषप्रद है और हमारी जनता संसार के सभ्य देशों में सबसे अधिक निर्धन और गरीब है।

भारतीय कृषि

हमारे देश की अधिकतर जनता खेती क्यारी से अपना जीवन निर्वाह करती है। पिछले ५० वर्षों में अनेक उद्योग धन्धों के स्थापित हो जाने पर भी हमारी ७५ प्रतिशत जनसंख्या खेती पर ही निर्भर है। कृषि की उन्नति पर ही हमारे उद्योग धन्धों तथा व्यापार की भी प्रगति निर्भर रहती है।

परन्तु कैसे दुर्भाग्य की बात है कि सहस्रों वर्षों से यह व्यवसाय करने पर भी हमारी कृषि की उत्पत्ति दूसरे देशों की अपेक्षा बहुत कम है और इतने अधिक व्यक्तियों के इस व्यवसाय में लगे रहने पर भी हमारे देश की जनता को अपनी क्षुधा शान्त करने के लिये करीब ४० लाख मन अन्न विदेशों से मँगाना पड़ता है। हमारे देश में भूमि अत्यंत उपजाऊ है, सिंचाई के साधन भी अब बढ़ते जा रहे हैं, धूप तथा वर्षा की भी कोई कमी नहीं, परन्तु फिर भी हम कृषि के क्षेत्र में कितने पिछड़े हुए हैं। इसके निम्न मुख्य कारण हैं :—

(१) किसानों की अशिक्षितता तथा उनके खेती के क्षेत्र में नये तजुर्बों—मशीनों, खाद, बीज इत्यादि को उपयोग में लाने के प्रति उदासीनता।

(२) किसानों की भाग्यवादिता या कट्टरपन जिसके कारण अपनी आर्थिक दशा को सुधारने के लिये उनमें आन्तरिक प्रेरणा उत्पन्न नहीं होती।

(३) हमारे किसानों की जमीनों का जगह-जगह बिखरा हुआ तथा छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटा रहना।

(४) जिन स्थानों पर वर्षा की कमी है वहाँ सिंचाई के साधनों की कमी।

(५) किसानों की निर्धनता तथा गाँवों में सहकारी समितियों, बैङ्कों, तथा उचित ब्याज पर ऋण देने वाली संस्थाओं की कमी।

(६) कृषि अनुसंधान संस्थाओं की कमी जो नये-नये आविष्कारों तथा प्रयोगों द्वारा खेती की उपज बढ़ाने के लिये सुझाव दे सकें तथा उपज को कीड़ों, कीटाणुओं, चूहों इत्यादि के प्रकोप से बचा सकें।

इन दशाओं में सुधार के लिये हमारे प्रान्तों की सरकारों ने अनेक प्रयत्न किये हैं। जगह-जगह सहकारी समितियाँ किसानों को ऋण देने, उपज की बिक्री का उचित प्रबन्ध करने, अच्छा बीज एवं लोहे के हल तथा मशीनें इत्यादि देने, जमीनों को इकट्ठा करने इत्यादि का कार्य करती हैं। सरकार का कृषि विभाग नये खेती के तरीकों को लोकप्रिय बनाने का प्रबंध करती है। प्रान्तों में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन भी किया जा रहा है जिससे किसानों को उनकी जमीन का मालिक बनाया जा सके तथा वह उनमें रुपया लगा कर स्थाई सुधार कर सके।

भारतीय किसान

कुछ काल पहले हम कह सकते थे कि हमारे किसानों की आर्थिक दशा अत्यंत खराब है। वह ऋण में ग्रस्त है या खेती क्यारी की आमदनी से उसका काम नहीं चलता। परन्तु पिछले दस वर्षों में इस दशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। पिछले महायुद्ध के पश्चात् से हमारी खेती की उपज की चीजों की कीमतें इतनी बढ़ गई हैं कि हमारे किसानों का भाग्य चमक उठा है और वह साहूकार के ऋण के नीचे दबे हुए न रहकर सम्पत्तिशाली बन गये हैं। लड़ाई के पश्चात् चीजों की कीमतें बढ़ गई हैं। यदि सन् १९४० में गेहूँ ढाई रुपये मन बिकता था, तो आज उसकी कीमत २० रुपये मन से अधिक है। जिस गन्ने को यू० पी० के किसान चार आने मन कीमत पर नहीं बेच सकते थे, आज उसी गन्ने को २ रुपये मन पर नखरों के साथ बेचते हैं। किसी समय गुड़ की कीमत दो रुपये मन थी, आज वही गुड़ २५ रुपये मन बिकता है। कीमतों में इस भारी बढ़ोत्तरी के हो जाने से हमारे किसान भाइयों को सबसे अधिक लाभ हुआ है। इसके अतिरिक्त हमारे प्रान्तों की सरकारें जमींदारी उन्मूलन, ग्राम सुधार योजनाओं तथा ग्राम पञ्चायतों के सङ्गठन के द्वारा उनकी अवस्था में और भी अधिक उन्नति करने

का निरंतर प्रयत्न कर रही हैं। नये विधान के अन्तर्गत भी हमारे किसान भाइयों को भी वयस्क मताधिकार के द्वारा भारत का भाग्य विधाता बना दिया गया है। वह अपने मत का उचित उपयोग करके अब देश में जिस प्रकार की चाहें सरकार का निर्माण कर सकेंगे तथा अपनी आर्थिक व सामाजिक उन्नति के लिये विशेष आदेश, अपने प्रतिनिधियों को दे सकेंगे।

परन्तु, हमारे किसानों की आर्थिक अवस्था में यह परिवर्तन शायद स्थाई न रह सके। कारण, अधिक समय तक खेती की वस्तुओं की कीमतें बढ़ी हुई न रह सकेंगी। आज भी आने वाली मन्दी के युग के स्पष्ट चिन्ह हमें दिखाई देते हैं। क्या उस समय हमारे किसानों की अवस्था फिर एक बार पहिले जैसी हो जायगी? इस प्रश्न का उत्तर हमारे कृषकों की वर्तमान काल में बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता पर निर्भर है। यदि आजकल जब किसानों की आय अधिक है, उनके पास कुछ धन तथा सम्पत्ति भी इकट्ठा हो गई है। उन्होंने अपने रुपये का उचित उपयोग नहीं किया तथा उसे व्यर्थ के रीति-रिवाजों, सहभोज, उत्सवों व त्यौहारों, इत्यादि में लगाया तो भविष्य में उनकी आर्थिक अवस्था ठीक न रह सकेगी। आज हम देखते हैं कि हमारे गाँव के किसान रुपये का बुरी तरह उपयोग कर रहे हैं। हमारे प्रान्त की सरकार ने जो किसानों को भूमिधारी अधिकार प्रदान करने की योजना बनाई है उसका भी वह पूर्ण लाभ नहीं उठा रहे हैं। यदि समय रहते हमारे किसानों ने अपनी आय के उचित उपयोग पर ध्यान नहीं दिया और वह इसी प्रकार अपने धन का अपव्यय करते रहे तो वह दिन दूर नहीं जब मन्दी के काल में वह अनुभव करेंगे कि अपने रुपये को लाभकारी उद्योग-धन्धों में न लगा कर उन्होंने अपने पैरों स्वयं कुल्हाड़ी मारी है।

भूमिरहित मजदूर—किसानों के अतिरिक्त हमारे देश के गाँवों में जनता की एक और श्रेणी है जिसकी आर्थिक अवस्था आजकल भी अधिक अच्छी नहीं है और जिसे लड़ाई के कारण खेती के चीजों की कीमतों में भी बढ़ोत्तरी होने से कोई लाभ नहीं हुआ है। यह श्रेणी गाँव के भूमिरहित मजदूरों की श्रेणी कहलाती है। यह लोग बड़े-बड़े किसानों के यहाँ मजदूरी करके अपना पेट पालते हैं। इन्हें वर्ष में केवल तीन या चार महीने के लिए

ही रोजगार मिलता है, शेष समय वह ठाला बैठकर ही अपने जीवन का निर्वाह करते हैं। इन मजदूरों की अवस्था सुधारने के लिए सरकार को चाहिये कि वह गाँवों में छोटे-छोटे घरेलू उद्योग धन्धे कायम करे। गाँव के किसान, स्त्री व बच्चे भी इन उद्योग धन्धों में अपने बेकार समय का उपयोग कर सकते हैं और इस प्रकार अपनी आय को बढ़ाकर अपने रहन-सहन के स्तर को ऊँचा कर सकते हैं। हमारी सरकार ने जापान से बहुत सी ऐसी छोटी-छोटी मशीनें मँगाई हैं जो गाँव में लगाई जा सकती हैं और जिनके चलाने के लिये बहुत बड़े सरमाये अथवा टैकनिकल ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। ग्रामीण जनता को शिक्षित बनाने की ओर भी सरकार का विशेष ध्यान नहीं होना चाहिये। शिक्षित किसान ही खेती के तरीकों में क्रांति कर हमारे देश की अन्न समस्या को सुलझा सकते हैं।

भारतीय उद्योग धन्धे

एक समय था जब हमारा देश घरेलू उद्योग धन्धों के क्षेत्र में संसार का सबसे उन्नत देश था। परन्तु ईस्ट इन्डिया कम्पनी के राज्य में वह सब नष्ट हो गये। विलायत की बनी हुई सस्ती चीजें हमारे देश में बिकने लगीं और हमारे अपने कारीगर बेकार हो गये। महात्मा गांधी ने अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना कर के इस दिशा में कुछ परिवर्तन करने का उद्योग किया, परन्तु स्वराज्य प्राप्ति से पहिले इस दशा में अधिक प्रगति न हो सकी। जहाँ-तहाँ कुछ गाँवों में छोटे-छोटे उद्योग धन्धे आरंभ किये गये परन्तु आर्थिक कठिनाइयों, मशीनों के अभाव, बिक्री की कमी तथा सरकारी सहायता के न मिलने से इस दशा में अधिक सफलता न हो सकी।

घरेलू उद्योग धन्धों की उन्नति हमारे देश में उस समय अधिक हो सकती है जब भारत के अधिकतर गाँवों में सस्ती मशीनें के मिलने का प्रबन्ध हो जाय। हमारी सरकार इस समय अनेक नदियों व घाटियों के पानी की सहायता से बिजली बनाने की योजनाओं पर कार्य कर रही है। यदि वह सब योजनाएँ कार्यान्वित हो गईं तो फिर हमारे गाँवों में उसी प्रकार सस्ती बिजली मिल सकेगी जैसे जापान, डेनमार्क, हालैंड या योरप के बहुत से देशों में

मिलती हैं, और फिर हमारे किसान घर-घर में छोटे-छोटे उद्योग धंधे आरंभ कर सकेंगे। इन उद्योग धंधों की उन्नति के लिये सरकार को निम्न और उपाय काम में लाने चाहिये :—

(१) किसानों की आर्थिक सहायता के लिये जो इस प्रकार के उद्योग धंधे आरम्भ करना चाहें सस्ते व्याज पर ऋण का प्रबन्ध।

(२) विदेशी से ऐसी मशीनों की आयात जो गाँवों में आसानी से लगाई जा सकें और वे पढ़े लिखे लोग भी उनका उपयोग कर सकें।

(३) इन कारखानों में बनी हुई चीजों की देश व विदेशों में बिक्री का उचित प्रबन्ध।

(४) सरकार द्वारा ऐसी अनुसंधान सस्थाओं की स्थापना जो इन उद्योग धधों की उन्नति के लिये निरन्तर प्रयत्न करती रहें।

बड़े उद्योग धन्धे

हमारे देश में बड़े बड़े उद्योग धंधे पिछले ८० वर्षों में ही स्थापित हुए हैं। इस समय हमारे देश में लगभग १०,००० ऐसे बड़े बड़े कारखानें हैं जिनमें २० से अधिक मजदूर काम करते है, तथा जिनमें 'पावर' का प्रयोग होता है। इन उद्योग धन्धों में लगभग ४२८ कपड़े की मिलें हैं जिन पर लड़ाई के पहले की कीमतों के हिसाब ४० करोड़ से अधिक रुपया लगा हुआ है तथा जिनमें ४ लाख से अधिक मजदूर काम करते हैं; १०४ जूट मिलें हैं जिनमें ३ लाख से अधिक मजदूर काम करते हैं; लोहे और इस्पात की मीलें हैं। इन कारखानों में सबसे बड़ा टाटानगर का कारखाना है। चीनी के कारखानों की संख्या हमारे देश में १३४ है, जिनमें सब मिला कर, लगभग १२ लाख टन चीनी पैदा की जाती है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में लगभग १६ कागज की मिलें, कुछ रबड़, प्लास्टिक, सिल्क, वेजिटेबिल घी, चाय, ऊन सिमेन्ट, दियासलाई, कैमिकल, तेजाब, व दवाइयों के कारखानें हैं तथा अनेक छोटे छोटे चावल, तेल, दाल, कोल्हू ढलाई, रूई के कारखानें तथा इंजीनियरिंग वर्क शाप इत्यादि हैं।

पिछली लड़ाई के काल में हमारे देश में अनेक और कारखाने तथा उद्योग धन्धे खोले गये। इनमें हवाई जहाज, समुद्री जहाज, मोटर, बाइ-

सिकिल, तेजाब, बिजली का सामान, कैमिकल, दवाइयाँ, छोटी मशीनें, स्टेशनरी का सामान, बटन, ट्यूब, टायर, इत्यादि बनाई जाती थी। लड़ाई के पश्चात् इनमें से बहुत से छोटे-छोटे कारखाने बन्द हो गये हैं, कारण वह विदेशों से आने वाली सस्ती चीजों का मुकाबिला न कर सके और उन्हें सरकार की ओर से किसी प्रकार की सहायता नहीं दी गई।

यदि उपरोक्त आकड़ों की ओर ध्यान से देखा जाय तो विदित होगा कि हमारे देश में उद्योग धन्धों की संख्या बहुत कम है। भारत जैसे देश के लिये जिसकी जनसंख्या चीन को छोड़ कर संसार के और सभी देशों से अधिक है तथा जहाँ के प्राकृतिक साधन सबसे ज्यादा है, उद्योग धन्धों के क्षेत्र में हमारे देश का पीछे रहना कुछ युक्ति युक्त मालूम नहीं पड़ता। परन्तु, फिर भी यदि हमारे देश का औद्योगीकरण कम हो पाया है तो इसके निम्न कारण हैः—

(१) अगस्त, १९४७ से पहिले हमारे देश की गुलामी, जिस काल में अंग्रेजी की सदा यह नीति रही कि हमारा देश औद्योगिक क्षेत्र में अधिक उन्नति न करे और इंगलैंड तथा योरप के देशों को कच्चा माल ही भेजता रहे।

(३) कारखानों को चलाने के लिये बिजली व दूसरी शक्ति के साधनों की भारी कमी।

(२) देश में टैकनिकल शिक्षा संस्थाओं तथा अनुभवी होशियार कारीगरों की कमी।

(४) मशीन बनाने के कारखानों का अभाव तथा इस क्षेत्र में हमारी दूसरे देशों पर पूर्ण निर्भरता।

(५) बुनियादी कारखानों (Basic Industries) की कमी जिन पर किसी देश का पूर्ण औद्योगिककरण निर्भर है।

(६) मूल धन की कमी तथा उसका ऐसे व्यक्तियों के हाथ में जमाव जिनमें औद्योगिक उत्साह की भारी कमी है।

इन सब कमियों के होते हुए भी पिछले महायुद्ध के काल में तथा उसके कुछ समय पश्चात तक हमारे देश में अनेक नये कारखाने खोले गये तथा सैकड़ों लिमिटेड कम्पनियाँ नये-नये काम आरम्भ करने के लिये संगठित की गई। परन्तु इसके पश्चात् हमारे देश में कुछ ऐसी घटनाएं घटीं जिनके

कारण या तो कारखानों में रुपया लगाने वाली जनता का विश्वास कम हो गया या ऐसे बहुत से लोग पाकिस्तान बनने या उसके पश्चात् होने वाले उपद्रवों के कारण, बिलकुल बरबाद हो गये। इसलिये पिछले तीन वर्षों में कोई बड़ा कारखाना, बैंक, बीमा कम्पनी अथवा कोई और उद्योग धन्धा कायम नहीं हो सका। आज हमारे वर्तमान उद्योग धन्धों की अवस्था भी अधिक अच्छी नहीं है। कारखानों तथा कम्पनियों के हिस्सों के दाम बराबर गिरते जा रहे हैं। मध्यम श्रेणी के लोगों को इस मन्दी के कारण भारी हानि का सामना करना पड़ा है। अनुमान लगाया गया है कि शेयर बाजार में मन्दी के कारण जनता को १२०००० करोड़ रुपये का घाटा हुआ है। बहुत से परिवारों की तो वर्षों की संपूर्ण बचत पर पानी फिर गया है और अब वह नये कारखानों में एक पैसा लगाने से भी डरते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इस दुर्व्यवस्था के निम्न कारण हैं :—

(१) पंजाब तथा सिंध के हिंदुओं का आर्थिक विनाश,

(२) जमींदारों तथा राजाओं का उन्मूलन,

(३) हमारी राष्ट्रीय सरकार की अव्यवहारिक आर्थिक नीति,

(४) सरकार द्वारा राष्ट्रीयकरण की नीति की घोषणा,

(५) सरकार की अयोग्य तथा हानिकारक नीति,

(६) विदेशी व्यापार के क्षेत्र में सरकार की निश्चित नीति का अभाव।

(७) इन्कम टैक्स जाँच कमेटी की नियुक्ति और उसके द्वारा अनेक उद्योगपतियों के पिछले हिसाब किताबों की जाँच और उनको परेशान करने की भावना,

(८) बाजार में चोर बाजार रुपये की अधिकता और उसको देश के औद्योगिक करण में प्रयोग करने की नीति का अभाव,

(९) मजदूरों द्वारा हड़ताल तथा वेतन में बढ़ोतरी का आन्दोलन,

(१०) सरकारी खर्चें में भारी फैलाव तथा उसको पूरा करने के लिये नये-नये टैक्सों तथा करों की वसूली और जनता का शोषण,

(११) चीजों की कीमतों में बढ़ोत्तरी और उसके कारण साधारण जनता द्वारा रुपया बचाने में असमर्थता।

व्यापार और तिजारत

हमारे देश की जनसंख्या तथा उसका आकार देखते हुये, हमारे वैदिशिक तथा आन्तरिक व्यापार की मात्रा बहुत कम है। इसका मुख्य कारण हमारे देश की गरीबी है। हमारी अधिकतर जनता की इतनी आय नहीं है कि वह रोटी कपड़े के अतिरिक्त आराम तथा विलासिता की सामिग्री पर अपनी गाढ़ी कमाई का कोई भाग व्यय कर सके। हमारे देश के वैदेशिक व्यापार का कुल मूल्य सन् १९४६-४७ में ५८३ करोड़ रुपया था। अमरीका के कुछ व्यापार का यह दसवां भाग भी नहीं। इस व्यापार में हमारे देश से बाहर जाने वाली वस्तुओं का मूल्य २९६ करोड़ रुपया तथा देश के अन्दर आने वाली वस्तुओं का मूल्य २८७ करोड़ रुपया था। आयात के आकड़ों में वह रकम शामिल नहीं की गई है जिसके द्वारा भारत पिछले वर्षों में ६० करोड़ रुपये का अन्न प्रति वर्ष विदेशों से मँगाता था। इस रकम को आयात में सम्मिलित कर लेने से हमारे देश के वैदेशिक व्यापार की बाकी हमारे प्रतिकूल हो जाती है, अर्थात् विदेशी व्यापार के क्षेत्र में हम दूसरे देशों के ऋणी बन जाते हैं। भारत सदा से ही विदेशी व्यापार के क्षेत्र में दूसरे देशों का साहूकार रहा है, परन्तु युद्ध के पश्चात् हमारे देश की आर्थिक अवस्था कुछ इतनी हीन हो गई कि इस दशा में हम व्यापारिक संतुलन बनाये रखने में सफल न हो सके। इसी कारण हमारी सरकार को ब्रिटेन की मुद्रा के साथ अपने रुपये का अवमूल्यन करना पड़ा और विदेशों से आने वाले माल पर भारी रोक लगानी पड़ी।

कुछ काल पहले हमारे देश से अधिकतर कच्चा माल दूसरे देशों को भेजा जाता था। परन्तु पिछले वर्षों में इस दशा में भारी परिवर्तन हो गया है। सन् १९४९ से पिछले हम लगभग ५० प्रतिशत कच्चा और ३० प्रतिशत तैयार माल विलायत भेजते थे। युद्ध के समय तथा उसके पश्चात् हमारे बाहर जाने वाले कच्चे माल की औसत घट कर २० प्रतिशत और तैयार माल की औसत बढ़ कर ५२ प्रतिशत हो गई। विदेशों से आने वाले माल में अधिकतर मशीनरी, धातु, तेल, मोटर, औजार, कपड़ा, तथा स्टेशंनरी का सामान होता है। हमारे देश से बाहर जाने वाले माल में इसके विपरीत

अधिकतर संख्या जूट तथा जूट के सामान, रूई, कपड़ा, चाय, खाल और चमड़ा धातु, ऊन, तेल के बीज, कोयला, चीनी तथा और छोटी छोटी बनी हुई चीजों की होती है।

हमारा विदेशी व्यापार अधिकतर राष्ट्र मंडल के सदस्य देशों तथा अमरीका के साथ होता है, परन्तु मध्य पूर्व तथा सुदूरपूर्व के देशों के साथ भी अब इस व्यापार की मात्रा, निरन्तर बढ़ रही है।

आने-जाने के साधन

किसी देश के व्यापार में आने जाने के साधन, उसकी जीवात्मा का काम करते हैं। इन साधनों के बिना न उत्पत्ति ही बढ़ सकती है, न व्यापार ही चल सकता है; और न ही देश किसी प्रकार की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक उन्नति ही कर सकता है।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में आने-जाने के साधनों की भारी कमी है। १२ लाख वर्ग मील के विस्तृत क्षेत्र के लिये हमारे देश में रेलों की कुल लम्बाई ३२००० वर्ग मील से भी कम है। इसी प्रकार सड़कों की लम्बाई केवल ३ लाख वर्ग मील हैं, जिसमें से पक्की सड़कें १ लाख ६४ हजार मील और कच्ची सड़कें १ लाख ३६ हजार मील हैं। हमारे देश के अधिकतर गाँव ऐसे हैं जो सड़कों तथा रेलों से बहुत दूर प्रान्तों के आन्तरिक भाग में स्थित हैं। इन गाँवों के लोगों को शहरों तथा मंडियों से अपना सम्पर्क बनाये रखने में भारी असुविधा का सामना करना पड़ता है। यही कारण है कि हमारे देश के अधिकतर गाँव आर्थिक उन्नति नहीं कर पाते। कुछ काल से हमारी प्रान्तीय सरकारें गाँवों तथा मंडियों को जोड़ने के लिये सड़कों तथा मोटर बसों की व्यवस्था कर रही हैं। परन्तु इस काम को पूरा करने के लिये जितने अधिक धन की आवश्यकता है उसका प्राप्त करना देश की वर्तमान आर्थिक अवस्था में सम्भव नहीं। इसीलिये यह काम धीरे-धीरे ही सम्पन्न हो रहा है।

भारतवर्ष में बेकारी की समस्या

बेकारी की समस्या हमारे देश में सदा से ही उग्र रूप धारण किये हुये है। पिछले महायुद्ध के काल में सैनिक भर्ती, युद्ध पर व्यय, नये-नये

कारखानों तथा उद्योग धंधों की स्थापना, सरकारी दफ़्तरों में बढ़ोत्तरी, तथा जगह-जगह सैनिक इमारतों, हवाई अड्डों, इत्यादि के बनने के कारण यह समस्या कुछ हल सी हो गई थी। गाँवों तथा नगरों में बेकारों की संख्या बहुत कम रह गई थी और अधिकतर लोग किसी न किसी लाभ-दायक काम में जुट गये थे। परन्तु युद्ध के पश्चात् यह समस्या फिर एक बार अपने विकराल रूप में देश के सम्मुख आ खड़ी हुई। सरकारी दफ़्तरों में छटनी आरम्भ हो गई है। युद्ध के समय सरकारी ठेकों के कारण जो छोटे-छोटे कारखाने खोले गये थे वह बन्द हो चुके हैं। दूसरे कारखानों में मन्दी के कारण व्यापार में अत्यन्त शिथिलता आ गई है। केवल गाँवों में भूमि की उपज की वस्तुओं के मूल्य ने किसी प्रकार की कमी न आने के कारण रोज़गार की स्थिति पूर्वतः बनी हुई है। परन्तु वहाँ पर भी यह दशा अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकती, कारण हम देखते हैं कि आर्थिक संकट के बादल चारों ओर मन्डरा रहे हैं। हमारी बेकारी की समस्या के मुख्य रूप से पाँच अङ्ग हैं:—(१) गाँवों में किसानों तथा भूमिहीन मजदूरों की वर्ष में छै मास से अधिक के काल के लिये बेकारी की समस्या (२) छोटे-छोटे कारीगरों तथा घरेलू उद्योग धन्धों में काम करने वाले मजदूरों की बेकारी की समस्या (३) शहरों में बड़े-बड़े कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की बेकारी की समस्या (४) पढ़े-लिखे नवयुवकों की बेकारी की समस्या और (५) नगरों में रहने वाले मध्यम श्रेणी के छोटे व्यापारी, दुकानदारों, जमींदार तथा साहूकारों की बेकारी की समस्या।

पिछले महायुद्ध से पहिले हमारी बेकारी की समस्या के केवल यह पाँच पहलू थे परन्तु पिछले महायुद्ध ने हमारे देश के मध्यम श्रेणी के लोगों को भी बेकार कर दिया।

किसानों की बेकारी की समस्या

हमारे देश की बेकारी की प्रथम समस्या, जैसा इस अध्याय में पहिले भी बताया जा चुका है केवल उस समय हल हो सकती है जब हमारे गाँव में छोटे-छोटे उद्योग धन्धे खोल दिये जायँ। परन्तु इन धन्धों की सफलता के

लिये आवश्यक है कि सर्व प्रथम गाँवों में सस्ती बिजली का प्रबन्ध किया जाय और घरेलू उद्योग धन्धों में बनी हुई चीजों की बिक्री का समुचित प्रबंध हो।

कारीगरों की बेकारी की समस्या

छोटे कारीगरों तथा कलाकारों जैसे, बढ़ई, जुलाहे, खिलौने, चित्र, तस्वीर, लकड़ी का फैंसी सामान, काँच की चीजें, फरनीचर तथा इसी प्रकार की कारीगरी की चीजें बनाने वाले लोगों की बेकारी की समस्या इतनी विकट नहीं है जितनी दूसरी श्रेणी के मजदूरों की। येन केन प्रकारेण यह व्यक्ति अपना निर्वाह कर लेते हैं, यद्यपि इनकी बनाई हुई चीजें विदेशों से आने वाली सस्ती वस्तुओं के मुकाबिले में मँहगी होती है। फिर भी हाथ की कारीगरी के शौकीनकला प्रेमी इन वस्तुओं के खरीदने में एक प्रकार के गर्व का अनुभव करते हैं और अधिक कीमत होने पर भी उन्हें खरीद लेते हैं। यह सच है कि ऐसे व्यक्तियों की संख्या हमारे निर्धन देश में बहुत कम है, परन्तु शिक्षा की प्रगति के साथ जनता की रुचि में भी शनैःशनै परिवर्तन आ रहा है और इन कलाकारों की वस्तुएँ आदर और सम्मान की दृष्टि से देखी जाने लगी है।

बड़े कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की बेकारी की समस्या

हमारे देश में योग्य तथा अनुभवी टैकनिकल शिक्षा प्राप्त मजदूरों की भारी कमी है। इसलिये इस श्रेणी के लोगों में बेकारी नहीं के बराबर है। रही साधारण बे पढ़े-लिखे कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की बात, सो ऐसे लोग अधिकतर फसल कटने के बाद, गाँवों में से शहर की मिलों में काम करने के लिये आ जाते हैं। वह जम कर शहर में नहीं रहते। बेकारी की दशा में वह फिर अपने गाँव में वापिस जाकर खेती क्यारी करने लगते हैं। इसलिये इस श्रेणी के लोगों की बेकारी की समस्या भी अधिक विकट नहीं है।

पढ़े-लिखे नवयुवकों की बेकारी की समस्या

यह हमारे देश की सबसे कठिन समस्या है, कारण इस समस्या के पीछे अंग्रेजी राज्य के दो सौ वर्षों का इतिहास छिपा है। अंग्रेजों ने हमारे देश-वासियों को इस प्रकार की शिक्षा दी कि उन्हें दफ्तरों में काम करने के लिये

पर्याप्त संख्या में बाबू मिल सकें। उन्होंने हमारी जनता को टेकनिकल अथवा औद्योगिक शिक्षा प्रदान नहीं की। इस शिक्षा प्रणाली का दूसरा बड़ा दोष यह था कि अंग्रेजी पढ़े-लिखे नवयुवक अपने प्राचीन व्यवसाय से घृणा करने लगे और एक प्रकार के श्रम के प्रति श्रद्धा का सिद्धान्त भूल गये। फल यह हुआ कि सरकारी नौकरियां सीमित थीं और जैसे-जैसे पढ़े-लिखे नवयुवकों की संख्या बढ़ी देश में बेकारी फैलती गई।

इस समस्या का उचित निवारण अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन तथा देश का औद्योगिक-करण है। यदि हमारी सरकार औद्योगिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दे सकी तथा ऐसी अनेक संस्थाओं की स्थापना कर सकी जहाँ शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् विद्यार्थी तरह-तरह के कारोबार व व्यवसाय में लग सकें तो इस समस्या का समुचित हल हो सकता है। परन्तु कोई भी सरकार यह काम एकदम पूरा नहीं कर सकती। इसके लिये वर्षों के सतत् तथा निरन्तर परिश्रम की आवश्यकता है।

मध्यम श्रेणी के दूकानदार, जमींदार तथा व्यापारियों की बेकारी

जैसा पहले बताया जा चुका है यह समस्या पिछले महायुद्ध के फलस्वरूप हमारे देश के सम्मुख उपस्थित हुई है। युद्ध के काल में हमारे देश की सरकार को अनेक कन्ट्रोल, परमिट, तथा राशन सम्बन्धी कानून बनाने पड़े। इनसे देश में व्यापारिक स्वतंत्रता का नाश हो गया और माल के आने-जाने क्रय-विक्रय आयात-निर्यात पर तरह-तरह की रोक लगा दी गई। इस सब कानूनों का यह परिणाम हुआ कि अनेक कपड़े, अनाज तथा दूसरी कन्ट्रोल की वस्तुओं के व्यापारी बेकार हो गये। इधर गाँवों में जमीदार उजड़ गये और शहरों में किराया सम्बन्धी कानून पास होने से जायदाद के मालिकों की किराये की आमदनी कम हो गई। लड़ाई के पश्चात् जनता को आशा थी कि वस्तुओं की कीमतें स्वतः ही गिर जायेंगी और सरकार द्वारा कन्ट्रोल हटा लिये जायेंगे। परन्तु युद्ध के पश्चात् देश की आर्थिक स्थिति और भी खराब हो गई और दिन प्रति दिन काम में आने वाली वस्तुओं की कीमतों में कमी होने के स्थान पर उल्टे बढ़ोत्तरी हो गई। फल यह हुआ कि

अध्याय २०

भारत और संयुक्त राष्ट्रसंघ

हमारा धर्म-परायण देश सदा से ही सारे विश्व को अपने एक बृहद् परिवार का अंग मानता चला आ रहा है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' यही हमारे धर्म शास्त्रों में प्रतिपादित सबसे महान् आदर्श है। समस्त मानव समाज को एक रूप समझना तथा पृथ्वी के सभी प्राणियों की सेवा सुश्रुषा करना हमारे धर्म ग्रन्थों की दीक्षा का निचोड़ है। हमारे राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी ने भी अपने संपूर्ण जीवन में यही सिद्धान्त जनता के सम्मुख रक्खा। उन्होंने बताया कि संसार में सत्य, अहिंसा, भ्रातृभाव एवं न्याय के सिद्धान्तों का प्रचार करना सबसे महान् जन सेवा का कार्य है। वह उत्कृष्ट राष्ट्रीयता की भावना के घोर विरोधी थे। उनके जीवन का ध्येय था संसार में सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों पर चल कर विश्व शान्ति कायम करना तथा समस्त मानव समाज को अटूट प्रेम के बंधन में बाँध कर एक विश्व सरकार का निर्माण करना। यही कारण है कि सदा से ही हमारे देश ने उन सभी योजनाओं में सहयोग प्रदान किया है जो योजनाएँ विश्व शान्ति एवं एक शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाने के लिये समय समय पर बनाई गई है।

भारत का संयुक्त राष्ट्रसंग के कार्य में योगदान

जिस समय सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के पश्चात् संसार में राष्ट्रसंघ (लीग आफ नेशन्स) की स्थापना की गई तो परतन्त्रता की अवस्था में भी भारतवर्ष ने उस संस्था के कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। इसके पश्चात जब अक्तूबर सन् १९४५ में एक दूसरे संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्था की गई तो हमारा देश उस संस्था के जन्मदाताओं में सबसे अग्रगण्य था। आज हमारा देश उन थोड़े से देशों में से एक है जो संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों में

पूर्णतया विश्वास करता है तथा उसकी सफलता के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। विश्व शांति के क्षेत्र में हमारे देश का योगदान किसी से कम नहीं है। हमारे देश ने संयुक्त राष्ट्र संघ के दो विरोधी दलों के बीच की खाई को पाटने का सदा प्रयत्न किया है। उसने कभी एक शक्ति के साथ मिल कर सत्य तथा न्याय के मार्ग का परित्याग नहीं किया। वह दोनों दलों से ऊपर उठ कर कार्य करता रहा है। उसकी सबसे बड़ी नैतिक शक्ति तटस्थता की नीति का अवलंबन करने में रही है। आज जब संसार के सभी महान् देश दो परस्पर विरोधी दलों में बंटे हुए हैं और संसार की शान्ति एक सूत के बारीक धागे के साथ लटक रही है तो भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जिस पर विश्व की त्रस्त एवं पीड़ित जनता की आँखें गड़ी हुई हैं और वह आशा कर रही है कि शायद गांधी और बुद्ध का यह महान् देश विश्व की शान्ति की रक्षा करने में सफल हो सके।

हमारे देश के प्रतिनिधियों ने संयुक्त राष्ट्र की संघ की बैठकों में सबसे महत्वपूर्ण भाग लिया है। हमारे देश की समस्त शक्ति सदा उन राष्ट्रों का साथ देती रही है जो साम्राज्यवादी ताकतों के जुल्मों का शिकार रहे हैं। हमारे प्रतिनिधियों की विद्वत्ता, सूझ बूझ एवं काम करने की शक्ति को सभी ने सराहा है। वे अनेक बार जटिल प्रश्नों को हल करने वाली समितियों के सदस्य और अध्यक्ष रहे हैं। इस सम्बन्ध में आर्थिक और सामाजिक परिषद के अध्यक्ष श्री रामस्वामी मुदालियर, कोरिया कमीशन के अध्यक्ष श्री के० पी० एस० मेनन, यूनैस्कों की कार्यकारिणी के प्रधान डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णनन, प्राकृतिक विज्ञान शाखा के अध्यक्ष डा० भाभा तथा हाल ही में निर्वाचित विश्व स्वास्थ्य संगठन की प्रधाना राजकुमारी अमृत कौर तथा अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के प्रधान श्री जगजीवन राम के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अणुबम समिति में डा० बी० एन० राव तथा संरक्षित प्रदेशों की समिति में शिवाराव के नाम की भी सभी ने सराहना की है। इसके अतिरिक्त भारत के प्रयत्नों के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में मानवी अधिकारों और मूल स्वतन्त्रता वाली धाराएँ जोड़ी गई हैं। हमारे प्रतिनिधियों ने फासिस्ट स्पेन को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनने से बहुत समय तक रोका है। दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका हमारे

प्रतिनिधियों की सजगता के कारण ही अफ्रीका द्वारा हड़प लिये जाने से बचा। संयुक्त राज्य, हिंदेशिया एवं इटली के पुराने उपनिवेशों को स्वतन्त्रता दिलाने में भी हमारे प्रतिनिधियों का भाग सबसे अधिक रहा है। हिंदेशिया के प्रश्न को लेकर हमारे देश ने ही सबसे पहिले आन्दोलन किया था। पिछड़े हुए प्रदेशों के हितों का सबसे बड़ा प्रहरी हमारा देश ही रहा है। रंगी हुई जातियों के ऊपर किये जाने वाले अत्याचार के विरुद्ध भी हमारे देश ने ही सबसे पहिले कदम उठाया है। अफ्रीका में रंगभेद की नीति के विरुद्ध जहाद करने में भी हमारे ही प्रतिनिधि सबसे आगे रहे हैं। कोरिया के युद्ध में संयुक्त राष्ट्रीय सेनाएं ३८ अक्षांस से आगे न बढ़ें, और चीन की जन सरकार को मान्यता दी जाय, यह सुझाव भी हमारी ही सरकार ने प्रस्तुत किए और इनसे विश्व युद्ध का खतरा कम होने में भारी सहायता मिली।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ के छोटे से जीवन में हमारे देश के प्रतिनिधियों ने समुचित भाग लिया है।

यहाँ संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्था के संबंध में संक्षिप्त विवरण देना अनुचित न होगा। प्रश्न उठता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ क्या है, वह क्या करता है तथा उसके कार्य करने का क्या तरीका है?

संयुक्त राष्ट्र संघ क्या है?

संयुक्त राष्ट्र संघ वह संस्था है जो संसार के देशों में युद्ध की भावना का अन्त करने तथा विश्व में एक ऐसी अटूट शान्ति की स्थापना करने के लिये बनाई गई है जिसका आधार मानव अधिकारों की रक्षा, राष्ट्रों का आत्म-निर्णय का सिद्धांत तथा संसार के देशों का आपस में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक गठबंधन होगा॥

इस संस्था का जन्म उस समय हुआ जब पिछले महायुद्ध के काल में साथी राष्ट्रों की सरकारों ने डम्बार्टन ओक्स के एक सम्मेलन में यह निश्चय किया कि संसार के शान्तिप्रिय देशों के पारस्परिक सहयोग को स्थाई रूप देने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की आवश्यकता है। इसके पश्चात् सानफ्रांसिस्को में २५ अप्रैल से २६ जून १९४५ तक दुनिया के राष्ट्रों की एक सभा हुई। इस सभा में ५० राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने २६ जून १९४५

को संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर पर हस्ताक्षर कर दिये, और इसके पश्चात् २४ अक्तूबर सन् १९४५ को इस संस्था ने नियमित रूप से कार्य करना आरंभ कर दिया।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्य

संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था को जन्म देने में उसके प्रवर्तकों ने सदा उन कठिनाइयों को अपने सम्मुख रक्खा जिनके कारण प्रथम राष्ट्र संघ की संस्था असफल सिद्ध हुई थी। उन्होंने इस संस्था को एक स्थाई रूप दिया तथा इसे वास्तविक शक्ति प्रदान करने के लिये इसकी सुरक्षा परिषद को अनेक अधिकार सौंपे। इस संस्था के जन्मदाताओं ने संसार के देशों से उन आर्थिक, सामाजिक एवं आर्थिक मतभेदों को मिटाने का भी प्रयत्न किया जिनके कारण विश्व शान्ति को खतरा पहुँचता है। संक्षेप में हम संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों का वर्णन इस प्रकार कर सकते हैं—

१. सब राष्ट्र-सदस्य सार्वभौम-शक्ति-संपन्न और समान हैं।

२. सब राष्ट्र चार्टर के अनुसार अपने कर्तव्यों का सद्भावना से पालन करने के लिये वचनबद्ध हैं।

३. सब राष्ट्र अपने झगड़ों का शान्तिमय तरीके से इस प्रकार फैसला करने के लिये वचनबद्ध हैं जिससे किसी प्रकार शान्ति, सुरक्षा और न्याय के भंग होने का भय न हो।

४. अपने अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में कोई राष्ट्र-सदस्य किसी प्रदेश या किसी देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता के विरुद्ध न शक्ति का प्रयोग करेगा और न उसको धमकी देगा और न ऐसा आचरण करेगा जो सयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों के विपरीत हो।

५. जब चार्टर के अनुसार संयुक्त-राष्ट्र कोई कार्रवाई करेगा, तो सब राष्ट्र-सदस्य उसे सब प्रकार की सहायता देने के लिये वचन-बद्ध हैं और वे किसी ऐसे देश को सहायता नहीं देंगे जिसके विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र शान्ति और सुरक्षा के लिये कोई कार्रवाई कर रहा हो।

६. शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने के लिये जहाँ तक आवश्यक होगा,

यह संस्था व्यवस्था करेगी कि जो देश सदस्य नहीं हैं, वे भी चार्टर के सिद्धांतों के अनुसार आचरण करेंगे।

७. शान्ति रक्षा के लिये जब तक आवश्यक न होगा संयुक्त राष्ट्र उन मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा जो किसी देश के आन्तरिक कार्य क्षेत्र में आते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ का संगठन

संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य वह सभी शान्तिप्रिय देश हो सकते हैं जो उसके सिद्धान्तों में विश्वास रखते हैं तथा जो चार्टर में निर्धारित अपने कर्तव्यों को पूरा करने का वचन दें। आजकल इस संस्था के ६२ सदस्य हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के ६ प्रमुख विभाग हैं :—

१. साधारण सभा (General Assembly)—इस सभा में सभी राष्ट्रों के प्रतिनिधि रहते हैं। हर एक राष्ट्र पाँच प्रतिनिधि तक भेज सकता है यद्यपि उन सब की एक ही राय मानी जाती है। इस सभा में चार्टर में बताये गये प्रत्येक विषय पर विचार हो सकता है। दूसरे सभी विभाग इस सभा के सम्मुख अपनी अपनी रिपोर्ट भेजते हैं। यह सभा उनके कर्तव्य और अधिकारों के बारे में भी विचार करती है। नये सदस्यों के चुनाव तथा सचिवालय के प्रधान सचिव (सैक्रैटरी जनरल) के संबंध में यह सभा अपनी सिफ़ारिश सुरक्षा परिषद् के सम्मुख रखती हैं। बजट का निश्चय भी यही सभा करती है। इसके निर्णय साधारणतया बहुमत से लिये जाते हैं। सुरक्षा परिषद् के संसार के वह सब राष्ट्र सदस्य हैं जिनको महान् शक्ति (Great Powers) कहा जाता है।

२. सुरक्षा परिषद् (Security Council)—सुरक्षा परिषद् के कुल ११ सदस्य होते हैं, जिनमें से ५ सदस्य स्थाई होते हैं तथा ६ सदस्य साधारण सभा द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। सदस्य राष्ट्रों में शान्ति और सुरक्षा की व्यवस्था का कार्यभार इस परिषद् पर डाला है। अपने कर्तव्य पालन में सुरक्षा परिषद् सदस्य राष्ट्रों की ओर से कार्य करती है, जिन्होंने इसके निर्णय को मानना और उनका पालन करना स्वीकार कर लिया है।

परिषद् के पाँच स्थाई सदस्य ये हैं :—चीन, फ्रांस, रूस, यूनाइटेड किंग-

डम और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका। अस्थाई सदस्य दो वर्ष के लिये साधारण-सभा द्वारा चुने जाते हैं।

सुरक्षा परिषद् के प्रत्येक सदस्य का एक मत होता है। कार्यक्रम संबन्धी विषयों का निर्णय ११ सदस्यों में से ७ सदस्यों के बहुमत से हो सकता है। मूल विषयों के संबंध में भी निर्णय के लिये ७ मतों की ही आवश्यकता होती है। लेकिन इनमें से पाँच स्थायी सदस्यों की सहमति जरूरी है। यह सिद्धान्त महान् शक्ति (ग्रेट पावर्स) की एकता का सिद्धान्त कहा जाता है। इसे निर्णायक मत (वीटो) का अधिकार भी कहते हैं। जब परिषद् किसी विवाद में शान्ति-पूर्वक समझौते की कोशिश करती हैं तो कोई संबन्धित देश इनमें वोट नहीं दे सकता।

शान्ति-व्यवस्था के लिये लगातार सावधानी जरूरी है और इसलिये संयुक्त राष्ट्र संघ के विधान में कहा गया है कि सुरक्षा परिषद् एक स्थाई संस्था होगी, और इसकी बैठकें पखवाड़े में कम से कम एक बार अवश्य होंगी। यदि परिषद चाहे तो इसकी बैठकें मुख्य कार्यालय के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी हो सकती हैं।

सुरक्षा परिषद् किसी भी ऐसे विवाद की जाँच कर सकती है, जिससे दो या अधिक देशों के बीच आपसी संघर्ष बढ़ने की संभावना हो। ऐसे विवाद या स्थिति की सूचना परिषद् को इसके सदस्य, सदस्य राष्ट्र, साधारण सभा अथवा प्रधान सचिव (सेक्रेटरी जनरल) दे सकते हैं। कुछ हालतों में यह सूचना वह राष्ट्र भी दे सकते हैं, जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं हैं।

सुरक्षा-परिषद् शान्तिमय तरीके से समझौते की सिफारिश कर सकती है और कुछ हालतों में वह समझौते की शर्तें भी निर्धारित कर सकती है।

जब शान्ति भंग होने की आशंका हो अथवा शान्ति भंग हो गई हो अथवा कोई आक्रमण हुआ हो, तो सुरक्षा परिषद्, सुरक्षा और शान्ति की पुनः स्थापना के लिये जरूरी कार्रवाई कर सकती है। वह आक्रमणकारी राज्य के विरुद्ध यातायात, आर्थिक और कूटनीति संबंध-विच्छेद करके कार्यवाही कर सकती है और यदि आवश्यकता हो, तो वायु, जल तथा स्थल सेनाओं का प्रयोग भी कर सकती है।

सुरक्षा-परिषद् की माँग पर और विशेष समझौतों के अनुसार संयुक्त राष्ट्र के सब सदस्य शान्ति तथा सुरक्षा कायम करने के लिये सैन्य बल देने के लिये बचन बद्ध हैं।

३. आर्थिक और सामाजिक परिषद्—इस परिषद् का उद्देश्य संसार में आर्थिक साधनों की प्रचुरता स्थापित करना एवं राष्ट्रों को न्यायपरायण बनाना है। यह संयुक्त राष्ट्रों को आर्थिक उन्नति के लिये कार्य करती है। इसके नीचे अनेक कमीशन काम करते हैं जैसे खाद्य समिति, स्वास्थ्य समिति इत्यादि।

४. संरक्षण परिषद्—जो देश अभी स्वाधीन नहीं हुए हैं, और राष्ट्रसंघ की देख-भाल में शासित होते हैं, यह संस्था उनकी देख-भाल करती है।

५. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्त राष्ट्र का प्रधान न्यायालय है। इसका कार्य स्थान हालैण्ड स्थित हेग नगर में है। इस न्यायालय के १५ न्यायाधीश होते हैं जो सुरक्षा-परिषद् और साधारण-सभा द्वारा पृथक्-पृथक् रूप से निर्वाचित किये जाते हैं।

न्यायालय का कार्य कानून द्वारा संचालित होता है, जो संयुक्त राष्ट्र के चार्टर का एक अङ्ग है। संयुक्त राष्ट्र का प्रत्येक सदस्य इस न्यायालय की व्यवस्था का उपयोग कर सकता है। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र इस न्यायालय के निर्णय को मानने के लिये बचनवद्ध है।

चार्टर और प्रचलित सन्धियों के अनुसार जो अन्तर्राष्ट्रीय समझौते होते हैं, यदि उनकी किन्हीं धाराओं के आशय के विषय में विवाद हो तो ऐसे विवादों का निर्णय यही न्यायालय करती है। कानूनी झगड़ों का फैसला करने के अतिरिक्त न्यायालय का एक महत्वपूर्ण कार्य उन कानूनी विषयों के सम्बंध में परामर्श देना है, जिनके सम्बंध में साधारण सभा, सुरक्षा-परिषद् तथा अन्य विभाग और अन्य संस्थाएँ, कानूनी मत जानना चाहें।

६. सचिवालय (सेक्रेटेरियट)—यू० एन० ओ० का दिन प्रति दिन प्रबन्ध सचिवालय द्वारा किया जाता है। इसका सबसे बड़ा अधिकारी प्रधान सचिव (सेक्रेटरी जनरल) कहलाता है।

उसकी नियुक्ति सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर साधारण सभा द्वारा पाँच वर्ष के लिये की जाती है। उसके आधीन सब राष्ट्रों के अनेक कर्मचारी काम करते हैं। सचिवालय में आजकल लगभग १५,००० व्यक्ति काम करते हैं।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्य

बहुत से लोगों का कहना है कि संयुक्त राष्ट्र संघ उसी प्रकार असफलता को प्राप्त हो रहा है जिस प्रकार उसकी पूर्व संस्था राष्ट्र संघ (लीग ऑफ नेशन्स) का अन्त हुआ था। राष्ट्र संघ ने आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में समुचित कार्य किया था परन्तु राजनैतिक क्षेत्र में वह संस्था संसार की शान्ति बनाये रखने में पूर्ण रूप से असफल सिद्ध हुई। आज संयुक्त राष्ट्र संघ भी उसी प्रकार कार्य करता हुआ प्रतीत होता है। अमरीका व रूस का शीत युद्ध किसी भी भीषण युद्ध का रूप धारण कर सकता है। बहुत काल तक सुरक्षा परिषद् की बैठकों में रूस के प्रतिनिधियों ने उस समय तक भाग लेने से इन्कार कर दिया था जब तक राष्ट्रवादी चीन के प्रतिनिधि को सुरक्षा कौंसिल से नहीं निकाल दिया जाता। सौभाग्य से बाद में रूस स्वयं परिषद् वापिस आ गया। अणु बम समिति किसी प्रकार का भी फैसला करने में असफल सिद्ध हो चुकी है। आज सारा संसार दो परस्पर विरोधी शक्तियों में बँटा हुआ है। उनके बीच से आपस का विश्वास, श्रद्धा व प्रेम के भाव का अन्त हो चुका है। दोनों दल विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्र जुटाने में लगे हैं। एक दल अणुबम बनाता है, दूसरा हाईड्रोजन बम। जापान व जर्मनी के साथ अभी तक किसी प्रकार की स्थाई संधियाँ नहीं हुई हैं। कितने ही देशों को राष्ट्र संघ की सदस्यता से वञ्चित रक्खा जा रहा है। राष्ट्रों का धन जनता की आर्थिक स्थिति सुधारने के कार्यों में व्यय होने के स्थान पर, लड़ाई का सामान जुटाने में व्यय हो रहा है। कोरिया में युद्ध चल रहा है। इन सभी बातों को देख कर आज कितने ही विचारक कहते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ अपने उद्देश्य की पूर्ति में असफल सिद्ध हुआ है।

परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्य की आलोचना करने वाले लोग चित्र का केवल एक पहलू ही देखते हैं। वह इस संस्था के उन कार्यों की ओर

दृष्टिपात नहीं करते जो कार्य उसने अपने कुछ ही वर्षों के जीवन में कर दिखाये हैं। आलोचक भूल जाते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ के कारण ही शीत युद्ध ऊष्ण युद्ध में परिणत होने से बचा है। इसी संस्था के कारण मध्य पूर्व के देशों में इजराइल राज्य की स्थापना पर अधिक रक्तपात नहीं हुआ। इसी संस्था के प्रतिनिधियों के प्रशंसनीय कार्य से हिंदेशिया के स्वतन्त्र राष्ट्र का शान्तिमय समझौते के साथ जन्म हुआ। इसी संस्था के प्रयत्न से, काश्मीर के प्रश्न पर भारत और पाकिस्तान के बीच 'युद्ध रोको' प्रस्ताव पास हुआ। इसी संस्था के कारण दक्षिणी अफ्रीका की वर्णभेद नीति की सर्वत्र निंदा की गई। इटली के उपनिवेशों को इसी संस्था के कारण संरक्षण परिषद् के सुपुर्द किया गया। बर्लिन के प्रश्न पर भी इसी संस्था के प्रयत्नों के फलस्वरूप भीषण युद्ध होने से बाल-बाल बचा। इसी संस्था के प्रधान सचिव श्री ट्रिग्वे ली द्वारा आज संसार में स्थाई शान्ति स्थापित करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इसी संस्था के द्वारा आज कोरिया के युद्ध में शान्ति कराये जाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं।

और इन सब बातों के अतिरिक्त वह कार्य जो संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायक संस्थाओं ने पिछले चार या पाँच वर्ष में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व वैज्ञानिक क्षेत्रों में किया है, अद्वितीय है। आज संयुक्त राष्ट्र संघ की अनेक संस्थाएँ जैसे W.H.O., U.N.A.C, I.L.O., I.T.O., I.C.O. International Bank, U.N.E.S.C.O इत्यादि संसार की पीड़ित व त्रस्त जनता की हर प्रकार से सहायता करने के कार्य में लगी हुई हैं। कोई संस्था ससार के रोगियों की सहायता करने में लगी हुई है तो कोई संसार के गरीब व अनाथ बच्चों की सेवा के कार्य में। कोइ संस्था शरणार्थियों की देख-भाल करती है, कोई संक्रामक रोगों को फैलने से रोकती है। कोई संस्था तपेदिक से बचाव के लिये बी० सी० जी० वैक्सीन बाँटती है, तो कोई लकुए से बचाव के लिये लोहे के फेफड़े। कोई संस्था संसार के पिछड़े हुये देशों की सहायता के लिए टेकनिकल सहायता का प्रबन्ध करती है, तो कोई उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करती है। कोई संस्था संसार के व्यापार को बढ़ाने के लिये कार्य करती है, तो कोई विभिन्न देशों को अप्राप्य सिक्का प्रदान करने में सहायता देती है। कोई संसार के मजदूरों के अधिकारों की रक्षा करती है,

तो कोई समस्त मानव समाज के अधिकारों की घोषणा करती है। कोई संस्था समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता कायम रखने के लिये नियम बनाती है तो कोई विभिन्न देशों में वैज्ञानिक ज्ञान के प्रचार के लिये कानून बनाती है। इसी प्रकार और भी अनेक अनगिनत क्षेत्रों में संयुक्त राष्ट्र संघ की विभिन्न सहायक संस्थायें कार्य कर रही हैं।

यह सच है संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलता का अन्तिम निश्चय उसके सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक कार्य की दृष्टि से नहीं किया जायगा। उसका निश्चय इस बातों से होगा कि वह संस्था राजनैतिक क्षेत्र में संसार की शान्ति बनाये रखने में कहाँ तक सफल सिद्ध होती है। आज राष्ट्रों की गति विधि देखकर यह आशा बहुत कम है कि संयुक्त राष्ट्र संघ संसार में एक तीसरा प्रलयकारी युद्ध छिड़ने से बचाव कर सकेगी। परन्तु यह निश्चित है कि यदि कोई शक्ति इस दशा में कार्य सकती है तथा इस युद्ध के भय को अनिश्चित समय के लिये स्थगित कर सकती है, तो शक्ति केवल संयुक्त राष्ट्र संघ की शक्ति है। आज यह संस्था संसार के देशों को इस बात का अवसर प्रदान करती है कि वह अपने विवाद व समस्याएँ संसार के प्रतिनिधियों के सम्मुख रक्खें तथा लोक मत को अपने पक्ष में जीतने का प्रयत्न करें। यही एक अवसर युद्ध के भय को स्थगित करने में राम बाण का काम देता है। संयुक्त राष्ट्र संघ वह रंगमंच है जहाँ विश्व की शक्तियाँ अपना दृष्टिकोण संसार के संमुख रखती हैं। अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट करने का अवसर प्राप्त करना—यही संसार की शान्ति कायम रखने के लिये सबसे शक्तिशाली उपाय है।

सयुक्त राष्ट्र संघ का भविष्य

संयुक्त राष्ट्र संघ के भविष्य के सम्बन्ध में इसलिए हमें अत्यंत निराशाजनक दृष्टिकोण से विचार नहीं करना चाहिये। यदि हम संसार में विश्वशांति के पक्ष में एक जीवित और जाग्रत लोक मत का निर्माण करने में सफल हो सके, तो कोई कारण नहीं कि संसार में स्थाई शान्ति स्थापित न हो सके।

आज आवश्यकता इस बात है कि संसार के प्रत्येक देश में संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों का प्रचार करने के लिये स्थान-स्थान पर संस्थायें खोली जायँ जनता को युद्ध के भयंकर परिणामों से अवगत कराया जाय तथा उत्कट राष्ट्री-

यता की भावना के स्थान पर संसार की जनता में अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का प्रचार किया जाय।

भारतवर्ष इस दशा में अत्यंत प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। आज हमारे प्रधान मंत्री अपनी समस्त शक्ति के साथ इस संस्था की सफलता के लिये कार्य कर रहे हैं। हमारे देश में अनेक स्थानों पर यू० एन० ओ० एसोसियेशन्स खोल दी गई हैं। शेष स्थानों पर भी ऐसी संस्थाओं का एक जाल सा बिछाने का प्रयत्न किया जा रहा है। समस्त देश की यू० एन० ओ० संस्थाओं के कार्य की देखभाल के लिये एक अखिल भारतीय संस्था बना दी गई है। यदि दूसरे देशों में भी इसी प्रकार का कार्य हो सका तो वह दिन दूर नहीं जब हमारी आनेवाली संततियाँ युद्ध के भय से सदा के लिए छुटकारा पा सकेंगी।

योग्यता प्रश्न

(१) राष्ट्र संघ क्या है ? उसके विभिन्न अंगों का संगठन समझाइये।

(२) भारतवर्ष ने राष्ट्रसंघ के कार्य में क्या योगदान दिया है ?

(३) संयुक्त राष्ट्र संघ ही संसार की दुखी तथा युद्ध से भयभीत जनता की एक मात्र आशा है। इस कथन की सत्यता की परीक्षा कीजिए।

(४) राष्ट्र संघ लीग आफ़ नेशन्स के पथ पर जा रही है ? क्या यह कथन सत्य है ?

(५) राष्ट्र संघ के राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक कार्यक्रम का विवेचन कीजिए।

परिशिष्ट १

अंग्रेज़ी में प्रयोग होने वाले कुछ संविधान संबंधी शब्दों का हिन्दी अनुवाद

Accused	अभियुक्त
Act (n.)	अधिनियम, कानून
Acting (e.g. Chairman)	कार्यकारी
Ad Hoc	तदर्थ
Adjourn	स्थगन, स्थगित करना
Administration	प्रशासन, प्रबन्ध
Adult suffrage	वयस्क मताधिकार
Advise	मन्त्रणा देना
Agreement	करार
Alien	अन्य देशीय, विदेशी
Allocation	बँटवारा
Allotment	बाँट
Amendment	संशोधन
Annual	वार्षिक
Annulment	रद्द करना
Appeal	अपील
Appointment	नियुक्ति
Arbitration	मध्यस्थ-निर्णय
Arbitrator	मध्यस्थ
Article	अनुच्छेद
Assembly	सभा
Assent	अनुमति

Association	संघ
Attach	कुर्की
Audit	लेखा-परीक्षा
Auditor-General	महा-लेखा-परीक्षक
Autonomous	स्वायत्त
Bankruptcy	दिवाला
Bi-cameral	दो घरा, द्विभवनात्मक
Boundary	सीमा
Bye-election	उप-निर्वाचन, उप-चुनाव
Casting Vote	निर्णायक मत
Census	जन-गणना
Certificate	प्रमाण पत्र
Chairman	सभापति
Chief Justice	मुख्य न्यायाधिपति
Chief Minister	मुख्य मन्त्री
Citizenship	नागरिकता
Civil	असैनिकता
Commonwealth	राष्ट्र मंडल
Co-operative	सहयोगात्मक राष्ट्र मंडल
Commerce	वाणिज्य
Committee, select	प्रवर समिति
Concurrent List	समवर्ती सूची
Constituency	निर्वाचन क्षेत्र
Confidence, want of	विश्वास का अभाव
Constituent Assembly.	संविधान सभा
Constitution	संविधान
Contingency Fund	आकस्मिकता निधि
Conviction	दोष सिद्धि

Co-operative Society	सहकारी संस्था
Council of Ministers	मंत्रि परिषद
Council of States	राज्य परिषद
Court, Civil	व्यवहार न्यायालय
Court, Criminal	दंड न्यायालय
Court, District	जिला न्यायालय
Court, High	उच्च न्यायालय
Court, Martial	सेना न्यायालय
Court, Revenue	राजस्व न्यायालय
Court, Supreme	उच्चतम न्यायालय
Declaration	घोषणा
Deputy Chairman	उप-सभापति
Deputy President	उप-राष्ट्रपति
Deputy Speaker	उपाध्यक्ष
Discretion	स्वविवेक
District Board	जिला मंडली
Domicile	अधिवास
Duty, custom	सीमा शुल्क
Duty, death	मरण शुल्क
Duty, estate	संपत्ति शुल्क
Duty, excise	उत्पादन शुल्क
Duty-import	आयात शुल्क
Duty-export	निर्यात शुल्क
Efficiency of adm.	प्रशासन कार्यक्षमता
Election	निर्वाचन, चुनाव
Election, direct	प्रत्यक्ष-निर्वाचन
Election, general	साधारण निर्वाचन, आम चुनाव
Election, indirect	परोक्ष-निर्वाचन अप्रत्यक्ष चुनाव

Electoral, roll	निर्वाचक नामावली
Eligible	पात्र होना
Escheat	राजगामी
Exempt	मुक्त
Ex-officio	पदेन
Expenditure	व्यय
Federal, Court	फेडरल न्यायालय
Gazette	सूचना पत्र
Government	(१) सरकार, (२) शासन
Government of State	राज्य सरकार
Government of India	भारत सरकार
Governor	राज्यपाल
House of People	लोक सभा
Impeachment	महाभियोग, सार्वजनिक दोषारोपण
Judiciary	न्याय-पालिका
Labour	श्रम
Labour Union	श्रमिक संघ
Land Revenue	भू राजस्व
Law	विधि, कानून
Legislative Assembly	विधान सभा, व्यवस्थापिका सभा
Legislative Council	विधान परिषद्, व्यवस्थापक मंडल
Legislature	विधान मंडल
Legalism	कानूनी पन
Lieutenant Governor	उपराज्यपाल
List	सूची
List concurrent	समवर्ती सूची
List-state	राज्य सूची
List, Union	संघ-सूची

Local Government	स्थानीय शासन
Local Self Government	स्थानीय स्वशासन
Lower House	प्रथम सदन, भिन्न भवन
Major	वयस्क
Majority	बहुमत
Minor	अवयस्क
Minority	अल्प संख्यक वर्ग
Motion for consideration	विचारार्थ प्रस्ताव
Municipal area	नगर क्षेत्र
Municipal Committee	नगर समिति
Municipal Corporation	नगर निगम
Municipality	नगरपालिका
Naturalisation	देशीयकरण
Parliament	संसद्
President	राष्ट्रपति
Prison	कारावास
Proclamation	घोषणा
Quorum कोरम	गण पूर्ति
Reading, first	प्रथम पठन
Reading, second	द्वितीय पठन
Reading, third	तृतीय पठन
Resignation	पद त्याग
Rigidity	जकड़ बन्दी
Rule	नियम
Single Transferable Vote	एकल संक्रमनीय मत
Tax, Income	आयकर
Tax, Terminal	सीमा कर
Tax, Export	निर्यात कर

परिशिष्ट २

भारत की जनसंख्या तथा क्षेत्रफल (१९५१ की जनगणना के आधार पर)

भारत क्षेत्रफल—१२,२१,०६४ वर्ग मील

जनसंख्या—३,६१,८२०,०००

भाग अ राज्य

राज्य	क्षेत्रफल (वर्ग मील में)	जनसंख्या
आसाम	५४,०६४	९,१२९,४४२
बिहार	७०,३६८	४०,२१८,९१६
बम्बई	११५,५७०	३५,९४३,५५९
मध्य प्रदेश	१३०,३२३	२१,३२७,८९८
मद्रास	१२७,७६८	५६,९५५,३३२
उड़ीसा	५९,८६९	१४,६४४,२९३
पंजाब	३७,४२८	१२,६३८,६११
उत्तर प्रदेश	११२,५२३	६३,२५४,११८
पश्चिमी बंगाल	२९,४७६	२४,७८६,६८३
कुल योग अ भाग	७३७,४०९	२७८,८९५,८५२

भाग बी राज्य

राज्य	क्षेत्रफल (वर्ग मील में)	जनसंख्या
हैदराबाद	८२,३१३	१८,६५२,९६४
मध्य भारत	४६,७१०	७,९४१,६४२
मैसूर	४९,४५८	९,०७१,६७८
पैप्सू	१०,०९९	३,४६८,६३१
राजस्थान	१२८,४२४	१५,२९७,९७९
सौराष्ट्र	२१,०६२	४,१३६,००५
ट्रावनकोर-कोचीन	९,१५५	९,२६५,१५७
कुल योग बी भाग	३२७,२२१	६७,८३४,०५६

भाग सी राज्य

राज्य	क्षेत्रफल	जनसंख्या
अजमेर	२,४२५	६६२,५०६
भोपाल	६,६२१	८३८,१०७
बिलासपुर	४५३	१२७,५६६
कुर्ग	१,५६३	२२६,२५५
दिल्ली	५७४	१,७४३,६६२
हिमाचल प्रदेश	१०,६००	६८६,४३७
कच्छ	८,४६१	५६७,८२५
मनीपुर	८,६२०	५७६,०५८
त्रिपुरा	४,०४६	६४६,६३०
विन्ध्य प्रदेश	२४,६००	३,५७७,४३१
कुल जोड़ सी राज्य	६८,२६६	६,६६५,१०७

भाग डी राज्य

राज्य	क्षेत्रफल	जनसंख्या
अंडेमान निकोबार	३,१४३	३०,६६३
सिक्किम	२,७४५	१३५,६४६
कुल जोड़ डी राज्य	५,८८८	१६६,६०६

न्यायमूर्ति सव्यसाची मुखर्जी तथ
न्यायमूर्ति एस. रंगानाथनकी खंडपीठने दो
अलग-अलग फैसलोंमें यह मत व्यक्त करत
हुए योजना एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्र
पी. शिव शंकर द्वारा उच्चतम न्यायालय त
इसके न्यायाधीशोंके खिलाफकी गयी कथि
टिप्पणियोंको सही ठहराया। फैसलेमें क

बिलासपुरमें ७ रेल यात्री मरे, १७ घा

बिलासपुर, २० अप्रैल (वा.)। दक्षिण पूर्व रेलवेके विलासपुर डिवीजनमें आज सवेरे बाराद्वार और सक्ती रेलवे स्टेशनके बीच रेल लाइनके पास खड़े एक ट्रकसे बिलासपुर झारसूगुडा पैसेंजर ट्रेनके घिसट जानेसे ७ रेल यात्रियोंकी मृत्यु हो गयी और १७ अन्य घायल हो गये। घायलोंमें १० की हालत गम्भीर बतायी जाती है।

रेलवे सूत्रोंके अनुसार ४ व्यक्तियोंकी मृत्यु घटनास्थलपर ही हो गयी। तीन अन्यकी मृत्यु सक्ती अस्पतालमें हुई। ये सभी व्यक्ति पैसेंजर ट्रेनके फुटबोर्डपर लटककर यात्रा कर रहे थे। यहां प्राप्त समाचारोंके अनुसार ट्रक यहांसे ७६ किलोमीटर दूर रेल लाइनसे सटकर खड़ा हुआ था और उसपरसे सामान उतारा जा रहा था। छः बोगियोंवाली ट्रेन खचाखच भरी हुई थी और कई यात्री फुटबोर्डपर थे या लटके हुए थे। ट्रेन जब ट्रकके पाससे गुजरी
घिसटकर नीचे जा गिरे

बिलासपुरके मंडल रे
एस. ठाकुर, रेलवेके अ
और जिलेके प्रमुख अ
लेकर दुर्घटनास्थलके
रेलवे सूत्रोंके अनुसार स
अस्पतालसे बिलासपुर
जा रही है। ताजा सम
आज तीसरे पहर अपने
हो गयी।

कोलम्बो, २० अ
श्रीलंकाको आश्वासन
शांति सेना उत्तरी
सप्ताहके भीतर स्थि
सरकारी नियंत्रणवाले
आज यह जानकारी

पुलिस जनताके साथ

रनेसे पहले
समर्थकोंकी
निकाले
845619
262848
last five
last four
of last four